र्ति के दर्शन करने से कहीं ऐसा प्रतीत नहीं होता कि उनकी तपस्या का कोई प्रभाव उनके शरीर पर था। इसी प्रकार भगवान महावीर ने १२ वर्ष तपस्या की। आज हमारे लिये यह बहुत महत्वपूर्ण है कि हम यह जाने कि भगवान महावीर ने १२ वर्ष तक क्या किया?

मेरठ निवासियो के सौभाग्य से बाल ब्रह्मचारिणी कु० कौशल जी ने दस वर्ष पश्चात पुन मेरठ सदर मे वर्षायोग की स्थापना की और उन्होंने पहले ही दिन अपने प्रवचन मे कहा कि जिस नगर मे एक भी योगी हो जाता है उस नगर की काया पलट हो जाती है। योग मे महान शक्ति है। बहिन जी ने मेरठ शहर व सदर मे केवल योग और ध्यान पर प्रवचन ही नही किये परन्तु मेरठ शहर मे योग व ध्यान पर ६ नवम्बर १९८० से १९ नवम्बर १९८१ तक एक योग ध्यान आध्यात्मिक शिविर भी लगाया जिसमे लगभग १०१ नर-नारियो ने भाग लिया। अपने प्रवचनो मे कौशल जी ने सजीव योगी पैदा करने की आवश्यकता पर बल दिया ताकि जो तनाव जीवन मे है वह दूर हो सके। आज हर व्यक्ति शान्ति चाहता है उसे पुस्तकें पढ़ने का समय नहीं वह तो शान्ति प्राप्त करने का तरीका जानना चाहता है। यह शान्ति योग व ध्यान से ही सम्भव है।

कौशल जी का योग व ध्यान पर विशेष चिन्तन व अध्ययन है। उनके प्रवचनो मे सभी धर्मावलम्बी बिना किसी हिचकिचाहट के आते थे। अनेक लोगो का जीवन ही बदल गया। उन्होंने जो उपदेश दिये प्रस्तुत ग्रथ उन्ही का सम्पादित सकलन है। इन प्रवचनो का सकलन श्री रामानन्द रटेनो ने बहुत कुशलता पूर्वक किया है। वे इससे पूर्व पूज्य सहजानन्द मनोहर लाल वर्णी जी के प्रवचनो का सकलन किया करते थे। श्री रामानन्द जी ने जिस कुशलता से काम किया है उसके लिये वे बधाई के पात्र हैं। बहिन जी के आदेश से सम्पादन का गुरुतर भार मैंने सम्हाला और मैंने पूरा प्रयत्न किया है कि शब्दो का तारतम्य टूटने न पाये और पढ़ने वाले को ऐसा लगे कि साक्षात कौशल जी ही प्रवचन दे रही हैं। फिर भी यदि कोई अशुद्धि रह गयी है या चूक हो गयी है तो उसके लिये मैं क्षमा चाहूँगा।

ग्रथ मे लगभग ४०० पृष्ठ है। इतने विशाल ग्रथ का प्रकाशन बहुत बडा काम था। परन्तु श्री जैन प्रकाश जैन गैस वालो ने इसके प्रकाशन का व्यय अपनी पूज्य माता जी श्रीमती जैनमती जैन की स्मृति मे वहन करके जो

रणादि पवित्र अविनाशी फल के दाता हैं, तिन करि शरीर सोखने योग्य है, देव-गुरु शास्त्रादि हितकारी हैं, इत्यादि परद्रव्यनि का गुण विचारि अंगीकार करै है। कोई पर द्रव्य को बुरा जानि अनिष्ट श्रद्धे हैं, कोई पर द्रव्य को भला इष्ट श्रद्धे हैं। सो पर द्रव्य विषै इष्ट अनिष्ट श्रद्धान सो मिथ्या है। बहुरि इस ही श्रद्धान तै या के उदासीनता भी द्वेष (राग) बुद्धि रूप होय है।"

इस चिन्तन को थोड़ा आगे बढ़ाये। एक विचार अंकुरित होता है जो कि छहढालाकार ने कहा—"आतम-अनातम के ज्ञानहीन जे जे करनी तन करन छीन।" ज्ञान के बिना जो भी क्रियायें हैं वे शरीर को सुखाने वाली हैं। वे सब शरीर के तप हैं परन्तु आतम शुद्धि का हेतु नही होने से मिथ्या चारित्र कही जाती हैं। आगे और भी कहा है— मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रविक उपजायो। पै निज आतम ज्ञान बिना सुख लेश न पायो। तात्पर्य यह है कि तप आदि से स्वर्ग तो हो जाता है, परन्तु आतम सुख नहीं। ज्ञान के अभाव में तपादि सब व्यर्थ हैं। ज्ञानार्जन करना सार्थक है। दौलतराम जी ने ज्ञान की महिमा में कहा है कि—कोटि जन्म तप तपै ज्ञान बिन कर्म झरे जे, ज्ञानी के छिन माहि, त्रिगुप्ति तै सहज टरैं तें।" अर्थात ज्ञान से ही कर्म की निर्जरा होती है। अतः ज्ञानर्जन ही उद्देश्य है वही मुक्ति का मार्ग है।

इसीलिए फिर ज्ञान की दिशा में खूब पढ़ा—शास्त्र छपे और पाण्डित्य निखरा। बुद्धि का परिष्कार हुआ। तर्क शैली निखरी। परन्तु वहाँ भी अधिकाधिक तत्वपाठियो में खोजा तो जहाँ साधुओं मे कुण्ठा पूर्वक अहं है वहाँ पाठियो में केवल शब्दाडम्बर है। उन्होंने शब्दों को बुद्धि मे सजो लिया है। वे शब्दो के बाल की खाल निकालते हैं। शब्द पर झगड़ते हैं। शब्दो के माध्यम से बौद्धिक कसरत करते हैं। अथवा कल्पनाओ में खोये रहते हैं— परन्तु जीवन शुष्क होते हैं। तनिक सी प्रतिकूलता मे खिन्नता एवं विषयो मे आसक्ति देखी जाती है विरक्ति नही। वे शब्दो के आवरण रूप परिग्रह को धारणकर अपने मे ज्ञानी होने की भ्रान्ति से अहंकारी बन जाते हैं। परन्तु स्मृति जन्य ज्ञान से शब्द कोष का संचय हो सकता है। वक्तृत्वकला निखर सकती है। ऐसा ज्ञान दूसरो के आचरण सम्बन्धी दोषो को निकालने में कानून की पुस्तकवत् काम आ सकता है। विद्वान ने प्रश्न तो हल किये नहीं और

तपादि पवित्र अविनाशी फल के दाता हैं, तिन करि शरीर सोखने योग्य है, देव-गुरु शास्त्रादि हितकारी हैं, इत्यादि परद्रव्यनि का गुण विचारि अंगीकार करै है। कोई पर द्रव्य को बुरा जानि अनिष्ट श्रद्धै है, कोई पर द्रव्य को भला इष्ट श्रद्धै है। सो पर द्रव्य विषै इष्ट अनिष्ट श्रद्धान सो मिथ्या है। बहुरि इस ही श्रद्धान तैं या के उदासीनता भी द्वेष (राग) बुद्धि रूप होय है।"

इस चिन्तन को थोड़ा आगे बढ़ाये। एक विचार अंकुरित होता है जो कि छहढालाकार ने कहा—"आत्म-अनात्म के ज्ञानहीन जे जे करनी तन करन छीन।" ज्ञान के बिना जो भी क्रियायें हैं वे शरीर को सुखाने वाली हैं। वे सब शरीर के तप हैं परन्तु आत्म शुद्धि का हेतु नहीं होने से मिथ्या चारित्र कही जाती है। आगे और भी कहा है— मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो। पै निज आतम ज्ञान बिना सुख लेश न पायो। तात्पर्य यह है कि तप आदि से स्वर्ग तो हो जाता है, परन्तु आत्म सुख नहीं। ज्ञान के अभाव में तपादि सब व्यर्थ है। ज्ञानार्जन करना सार्थक है। दौलतराम जी ने ज्ञान की महिमा में कहा है कि—कोटि जन्म तप तपैं ज्ञान बिन कर्म झरे जे, ज्ञानी के छिन माहि, त्रिगुप्ति तैं सहज टरें ते।" अर्थात ज्ञान से ही कर्म की निर्जरा होती है। अतः ज्ञानार्जन ही उद्देश्य है वही मुक्ति का मार्ग है।

इसीलिए फिर ज्ञान की दिशा में खूब पढ़ा—शास्त्र पढ़े और पांडित्य निखरा। बुद्धि का परिष्कार हुआ। तर्क शैली निखरी। परन्तु यहां भी अधिकाधिक तत्ववादियों में देखा तो जहाँ साधुओं में कुण्ठा पूर्वक तप है वहाँ पण्डितों में केवल शब्दाडम्बर है। उन्होंने शास्त्रों को बुद्धि से पकड़ लिया है। वे शब्दों के बाल की खाल निकालते हैं। शब्द पर झगड़ते हैं। शब्दों के माध्यम से बौद्धिक कसरत करते हैं। अथवा कल्पनाओं में खोये रहते हैं— परन्तु जीवन शुष्क होते हैं। सरित की प्रतिकूलता में खिन्नता एवं विषयों में आसक्ति देखी जाती है विरक्ति नहीं। वे शब्दों के आवरण रूप परिग्रह को धारणकर अपने में ज्ञानी होने की भ्रान्ति से अहंकारी बन जाते हैं। परन्तु स्पर्शि जन्य ज्ञान से शब्द बोध का संचय हो सकता है। वस्तुस्वरूपता निखर सकती है। ऐसा ज्ञान दूसरों के आचरण सम्बन्धी दोषों को निकालने में वकालत की पुस्तकवत् काम आ सकता है। विद्वान ने प्रश्न तो हल किये नहीं और

जलकर मर जाता है। चारित्र के बिना ज्ञान भूखे पेट अन्न का बोझा ढोने वत् है। गणेश प्रसाद वर्णी जी ने एक कथा कही कि सेठ को सेठानी कहती रही कि 'घर मे चोर आ रहे हैं और सेठ बोले, मुझे मालूम है चोर कैसे हैं, कहाँ से आ सकते हैं। क्या क्या चुरा सकते हैं आदि आदि' परन्तु चोरो को भगाया नही। सुबह उठकर देखा कि चोर सब कुछ ले गए थे। ऐसे ही विद्वान को पता है क्या कर्म है, क्या परिणाम है परन्तु कर्मों को काटे नहीं तो आत्मा की सम्पत्ति लुटती रहती है। साँप के स्वरूप को जान लिया हो और फिर भी कोई साँप से खेलता हो—ऐसा जानना ज्ञान नही, भुलावा है। साँप का सम्यग्ज्ञान वह है जो कि विषधर से निवृत्त कर दे। समयसार मे कहा है—

णादूण आसवाणं असुचित्तं च विपरीय भाव च।

दुक्खस्स कारण त्ति य तदो णियत्तिं कुणादि जीवो॥ स सा। ७२॥

अर्थ—आस्रवों (रागादि परिणामों की) अशुचिता एवं विपरीतता तथा वे दुःख के कारण है, ऐसा जानकर जीव उनसे निवृत्ति करता है।

जब आत्मा आस्त्रव और आत्मा के भेद को जानता है उसी समय क्रोध अविरति आदि आस्त्रवो से निवृत्त होता है, क्योंकि उनसे जो निवृत्त नही है उसे आत्मा और आस्त्रवो के पारमार्थिक भेद ज्ञान की सिद्धि ही नही है। स॰ सा। टी। ७२।

तात्पर्य यह है कि ज्ञान वही है जिसके साथ चारित्र भी हो। ज्ञान व चारित्र का समायोजन ऐसा है जैसे अंधा और लगड़ा मिलकर दावाग्नि से बाहर हो जायं। अकेला चारित्र केवल वेश मात्र है, और अकेला ज्ञान केवल शब्दों का आवरण है। एकान्त का अवलम्बन होने से मिथ्यादृष्टि कहे जाते है। परन्तु जब दोनों मिल जाते हैं तो प्रमाण कहे जाते हैं।

सयम और ज्ञान दोनो का आचरण करने से ही मुक्ति है ऐसा समझ कर जब कोई कल्याणेच्छु ससार-शरीर भोगो से निर्विण्ण होकर विषय कषायो से उपरत होता है। अपनी समझ पूर्वक व्रत संयम आदि को आगमानुकूल धारण करता है अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी एवं तत्व चिन्तक रहता है जो भी करणीय है वह सब आत्महित हेतु करता है। उस समय तो वह सम्यक् साधु है? परन्तु *मोक्षमार्ग प्रकाशक मे प॰ टोडरमल जी कहते हैं—निश्चय और* व्यवहार दोनो का अवलम्बन करने वाला भी मिथ्यादृष्टि की बात तो समझ

जाती है। क्योंकि केवल चारित्र तो कोरा शारीरिक क्रियाकाण्ड मात्र है। तथा केवल शास्त्र ज्ञान वाग्-विलास के अतिरिक्त कुछ नहीं। परन्तु निश्चय—व्यवहारावलम्बी भी मिथ्यादृष्टि है यह बात जरा विचित्र सी दिखाई देती है। क्योंकि व्रत और ज्ञान दोनों कर लिये अर्थात् निश्चय और व्यवहार दोनों सम्भाल लिये फिर भी मिथ्या दृष्टि कैसे? यह विचारणीय विषय है। प्रश्न होता है अब आगे क्या किया जाये।

प्रश्न स्वयं अपना उत्तर रखता है। चिन्तन की गहराई में नवनीत निकलता है अगर वास्तव में व्रत व ज्ञान की साधना सही हुई है तो उनके जीवन में निष्कारण पुष्टि और तुष्टि आनी चाहिये। सरलता एवं सहजता तथा सहज मुस्कान आनी चाहिये। उनके आवरण-विकार एवं अन्तराय के रोग नष्ट होने चाहिये। तभी उनका मिथ्यात्व दूर हुआ समझा जायेगा, अगर ऐसा होता नहीं है तो अवश्य कहीं कोई मूल चूक गया है वह भूल कहाँ है? डाक्टर भी देखता है ठीक औषधि दी गयी है फिर भी रोग दूर नहीं हुआ है तो अवश्य कहीं कोई गलती हुई है। इसी प्रकार अध्यात्म योगी भी स्वस्थ (आत्म स्थित) होने तक अपनी त्रुटियों का निरिक्षण एवं उन्मूलन करता है।

इस संदर्भ में पंडित टोडरमल जी स्वयं आगे कहते हैं—
मोक्ष का मार्ग दो प्रकार नहीं। मोक्ष मार्ग का निरूपण दो प्रकार है। शुद्ध आत्मा का अनुभव मोक्षमार्ग है। प्रवृति में नये का प्रयोजन नहीं। व्रत नियमादि को बाह्य सहकारी कारण जानकर उपचार से मोक्षमार्ग कहा है पर ये तो पर द्रव्याश्रित हैं। सच्चा मोक्षमार्ग वीतराग भाव है वह स्वद्रव्याश्रित है। अतः व्रत आदि मोक्ष का कारण है—ऐसा श्रद्धान मिथ्यात्व है। व्रतादि को छोड़ देने से व्यवहार का हेयपना होना नहीं फिर तो अशुभ में ही जायेगा। वीतराग तो होना नहीं।

बहुरि यहु जीव दोऊ नयनि का अंगीकार करने के अर्थ कदाचित आपको शुद्ध समान रागादि रहित केवल ज्ञानादि सहित आत्मा मान सन्तुष्ट होता है। ध्यान मुद्रा धार ऐसे विचार विषैं लगे है। कदाचित वचन द्वारा ऐसा कहे भी पर प्रत्यक्ष ऐसा है नहीं। प्रत्यक्ष जैसा है नहीं वैसा अपने को मानना मिथ्यात्व है सो निश्चय नाम कैसे पावै? (मोक्ष मार्ग प्रकाशक)

तात्पर्य है कि वासनाओं का क्षय नहीं होता उनका दमन करके चारित्र

ओढा जाता है। ज्ञान भीतर से जागृत नही ऊपर से लादा जाता है। चेतना से रूपान्तरण से जो आये वह चरित्र है जहाँ विकार कम नही नष्ट हो जाते है। दमन से कुण्ठा जबकि रूपान्तरण से आनन्द आता है। चरित्र व ज्ञान आत्मा के गुण है वे भीतर से जागृत होते है वे बाहर से ओढे व खरीदे नही जाते। शास्त्र पठन व पदार्थों के त्यागाश्रित नहीं हैं। चरित्र पुष्प में सौरभ वत् वह सुगन्ध है जो साधक के जीवन मे विकसित होती है। बाहर से आया ज्ञान उधार वस्तु है वह छिन सकता है, गोलियो द्वारा अथवा रोग मे मस्तिष्क के यंत्र के विकृत होने पर नष्ट हो सकता है अपना ज्ञान वह है जो हम जन्म से लेकर आते है अर्थात् जानने की क्षमता। शास्त्र उस क्षमता से जाने जाते है पर शास्त्रों व गुरु से वह क्षमता आ नही सकती। उस ज्ञान शक्ति को भीतर से उद्घाटित करना है। चारित्र के मुखौटे धारण कर कोई त्यागी नही हो सकता। चारित्र नाम वीतराग भाव का है। वह भी आत्मा के विकारो के दूर होने पर चेतना के स्वाभाविक अनुभव से व्यवहार मे पल्लवित होता है। चारित्र व ज्ञान को अगर बाहर से सकलित किया गया है तो वह जीवन में बोझ है जिसके नीचे फूल सी चेतना घुट जाती है। अतः वह सब ससार का ही कारण है। ग्यारह अग के पाठी द्रव्य लिंगी साधु ससारी ही बने रह गये-अनुभव बिना।

जिस प्रकार पत्थर मे मूर्ति अव्यक्त छुपी रहती है। कोई कलाकार हथौडी और छैनी से पत्थर का कुछ अंश हटाता है तब मूर्ति प्रगट हो जाती है। इसी प्रकार हमारे भीतर भी वीतराग भाव की सौम्य प्रतिमा रूप चेतना छिपी है, उस पर से कुछ विकृतियो के अश हटाये जायें तो परम शान्त मूर्ति प्रगट होगी। जिस प्रकार धरती मे पानी छिपा है। कुछ कंकड मिट्टी हटाओ तो जल का स्रोत फूट पडता है। इसी प्रकार हमारे भीतर भी ज्ञान का भंडार छिपा है। कुछ विकल्पो के ककड हटाओ तो वह प्रगट हो जायेगा। परन्तु प्रश्न है कि ये विकार हमसे दूर कैसे हो? इस सन्दर्भ मे हम जरा तीर्थंकरो एव महर्षियो के जीवन की ओर दृष्टि करें कि दीक्षा के उपरांत उन्होंने अपने साधना काल मे क्या किया? सही विधि के अभाव मे हमारी साधना एव वीतरागता कोरी किसी काव्य की कल्पना का आनन्द अथवा मात्र आशा की डोर मात्र बन कर न रह जाये। हमे अपनी पर्याय में सत्य का अनुभव हो। तीर्थंकरो ने क्या पाया इसके स्थान पर यह महत्वपूर्ण हमारे लिये

मात्रा बढ़ाता है। इसी प्रकार ज्यों ज्यों विकास होता त्यों-त्यों उसको आगे अधिकाधिक विकास के फार्मूले देते थे। आचार्य शिष्यों को समझाते कि ऐसे स्थिर आसन में बैठो, श्वास को गहरी व समवृत्ति से लेना। इन वर्षों का इस रंग में शरीर के इस केन्द्र पर अमुक ग्रन्थि पर ध्यान करो। साधक वर्षों तक अभ्यास करता रहता। उस एकाग्रता एवं ध्यान के द्वारा उसके विचार व विकल्प गिर जाते, भीतर के अशुभ परमाणुओं की निर्जरा हो जाती, अशुभ वृत्तियां शुभ में बदलतीं तथा शुभ परमाणुओं का संचय होता। साधक रूपान्तरित होता जाता उसका सूक्ष्म शरीर बदल जाता। शरीर की शुभ ग्रन्थियों का विकास होता। जैसे भ्रूमध्य में ध्यान करने से अतीन्द्रिय ज्ञान का विकास होता है। बिना कुछ पढ़े भी दूर की वस्तुयें प्रत्यक्ष दीखने लग जाती हैं। भीतर का ज्ञान प्रगट होता है। चौदह पूर्व एवं बारह अंगों का ज्ञान पढ़ने से नहीं इसी ध्यान से प्रगट होता है। भीतर की अनन्त क्षमताओं को ध्यान की विस्फोटक शक्ति से जाग्रत किया जाता था जो कि प्राणी के शरीर की ग्रन्थियों में बन्द पड़ी है। अभी तो हमारा मस्तिष्क का १/४ भाग ही काम करता है वह भी विशेष प्रतिभावान लोगों में। अगर पूरे मस्तिष्क को सक्रिय किया जा सके तो कितनी शक्ति प्रगट होगी ऐसा अनुमान भी करना कठिन है।

हमारा हृदय भावों का केन्द्र है। मिथ्यात्व के भाव हृदय में उत्पन्न होते हैं। अत मिथ्यात्व के अणु हमारे इसी केन्द्र पर लगे हैं। जब तक इस केन्द्र पर मिथ्यात्व के अणु हैं तब तक बुद्धि द्वारा कितना भी निर्णय कर लें, परन्तु हमारा देहात्म-बोध एवं पदार्थ के प्रति ममत्व नहीं जा सकता। परन्तु अगर हृदय चक्र पर 'अर्ह' का ध्यान किया जाये। पूरी चेतना की शक्ति को वहां केन्द्रित कर दिया जाय तो उस चक्र का भेदन होता है जो शरीर और चेतन का अथवा सूक्ष्म व स्थूल शरीर का मिलन बिन्दु है। तब ही मिथ्यात्व के परमाणुओं का विखण्ड होता है। पहली बार स्थूल शरीर से भिन्न चेतना का अनुभव होता है। तब सहज ही पदार्थवृत्ति शिथिल हो जाती है।

जागरण के अर्थ ध्यान अपेक्षित है। आत्मानुभव के लिए विकल्प नहीं निर्विकल्प होना साधक साधन है। विकल्प मात्र पर द्रव्य का चिन्तन है। निजका चिन्तन नहीं अनुभव होता है। अनुभव निर्विकल्प होता है। यद्यपि अशुभ विकल्पों से बचने के लिये उपयोग को शुभ विचारों में उलझाना अच्छा है अथवा जिस समय उपयोग निर्विकल्पता की ओर न जा पाता हो, उस समय

उसे शुभ विकल्पों की खुराक अथवा बैसाखी देनी उपयोगी है अन्यथा वह अशुभ मे चला जायेगा। विकल्प को सूक्ष्म करने के लिये सालम्बन ध्यान किया जाता है। आलम्बन मे निरालम्बन मे पहुचा जाता है। किसी भी साधक ने जो भी उपलब्धि की है वह सब ध्यान की देन है। निर्विकल्पता से हुई है। पुराणों मे जब-जब भी किसी योगी की साधना का प्रसग आता है-तब वहा ध्यान का वर्णन होता है। परन्तु उसको गौण कर दिया जाता है जबकि वह साधना का प्राण है।

आत्मा स्वय ही मोक्ष है, स्वय मोक्ष-मार्ग है अथवा वही ससार मार्ग भी है। यद्यपि व्यवहार से कहा गया कि सम्यग् दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्ष का मार्ग है। अर्थात् इन तीनों की एकता ही मोक्ष-मार्ग है। परन्तु रत्नत्रय आत्मा को छोडकर अन्यत्र नही पाया जाता, अतः केवल एक आत्मा ही मोक्षमार्ग है।

रयणतय ण वट्टइ,

अप्पाणं मुयत्तु अण्णदवियम्हि।

तम्हा तत्तियमइयो,

होदि हु मोक्खस्स कारणं आदा॥ द्र० सं० ३/४०

जिस प्रकार अग्नि की एक किरण मे प्रकाशकता-दाहकता-पाचकता तीनों होती हैं। इतना अवश्य है कि किसी समय अग्नि का कोई गुण मुख्य होता है किसी समय कोई। जैसे पढ़ते समय प्रकाशकता, भोजन पकाते समय पाचकता इसी प्रकार से जीव के उपयोग की एक किरण मे ही दर्शन-ज्ञान-चारित्र होते हैं। भेद रूप दृष्टि का नाम दर्शन, उस दृष्टि का जानना ज्ञान और निर्विकल्पता चारित्र-ये तीनों एक ही क्षण मे पाये जाते हैं। जिस प्रकार प्रकाश का आना और अंधकार का जाना एक ही क्षण मे होना है। इनमे काल भेद नही है तो भी प्रकाश कारण है, अधकार का जाना कार्य है। इसी प्रकार भेद दर्शन कारण है और ज्ञान व चारित्र कार्य। पर ध्यान रहे ये कथन मे क्रम है पर होने मे काल भेद नही है। अत. रत्नत्रय का प्रारम्भ तो एक साथ होता है अर्थात् जिस क्षण सम्यग्दर्शन होता है उसी क्षण सम्यग्ज्ञान व चारित्र भी होना है परन्तु परिपूर्णता क्रम से होती है।

सम्मद्दसणणाणं एसो

लहदि त्ति णवरि ववदेस।

सव्वणयपक्खरहिदो भणिदो

जो सो समयसारो॥ समयसार॥३-७६-१४४॥

अर्थ—जो समस्त नय पक्षों से रहित कहा गया है। वह समयसार है। इसी को केवल सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान संज्ञा मिलती है नामों के भिन्न होने पर भी वस्तु एक ही है।

आत्मा की प्रगट प्रसिद्धि के लिये पर पदार्थ की सिद्धि की कारणभूत इन्द्रियों द्वारा और मन के द्वारा प्रवर्तमान बुद्धियों को मर्यादा में लेकर जिसने मतिज्ञान तत्व को आत्म सन्मुख किया है। जो नाना प्रकार के नय पक्षों के आलम्बन से होने वाले विकल्पों के द्वारा आकुलता उत्पन्न करने वाली श्रुतज्ञान की (शास्त्रज्ञान की) बुद्धियों को भी मर्यादा में लेकर श्रुतज्ञान तत्व को भी आत्म सन्मुख करता हुआ अत्यन्त निर्विकल्प होकर तत्काल निजरस से प्रगट होकर विज्ञानघन परमात्म रूप समयसार का आत्मा अनुभव करता है—उसी समय आत्मा सम्यक्तया दिखाई देता है और ज्ञात होता है। इसलिये समयसार ही सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है।

आत्मा द्वारा आत्मा का अनुभव करना ध्यान का प्रयोजन है। वह तत्व बुद्धि व इन्द्रियों से अतीत है। अतः इन्द्रिय व मन के आवलम्बन छोड़कर आत्मा से आत्मा का वेदन करें यही परम जागरण है। सब भय व दुःख से मुक्त होने की विधि है।

जीना, जानना बस आनन्द

विभिन्न आचार्यों ने धर्म की अनेक परिभाषायें की हैं। ससार मे ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं कि जो धर्म के विषय मे न जानता हो और किसी विषय मे जाने या न जाने लेकिन धर्म के विषय मे कुछ न कुछ प्रत्येक व्यक्ति जानता है। तो इन धारणाओ मे कुछ एक लक्षण धर्म के किये गये हैं। जो ससार मे दुःख से उठाकर सुख मे रख दे उसको धर्म कहते हैं ऐसा आचार्य समन्तभद्र ने कहा। दया धर्म का मूल है यह बहुत सामान्य सी बात आप सभी जानते हैं। अहिंसा परमो धर्म अर्थात अहिंसा ही श्रेष्ठ धर्म है यह जैन समाज का प्रमुख नारा है। इतने सारे लक्षण धर्म के हैं तो कौन वास्तव मे धर्म है ? अहिंसा धर्म है, दया धर्म है क्या धर्म है ? मन मे बहुत सारे ऐसे विचार उठते हैं। इन सब लक्षणो पर यदि हम विचार करें तो ये सब किसी एक सीमा पर जाते हैं। किसी परिस्थितियो मे किसी एक दृष्टिकोण को अपनाले हैं पर एक लक्षण जो कुन्दकुन्दाचार्य ने किया वह मुझे बहुत अच्छा लगा। उन्होने कहा—वत्थु स्वभावो धम्मो अर्थात वस्तु का स्वभाव धर्म है। यह लक्षण किसी देश किसी जाति किसी धर्म की सीमाओ मे परिवद्ध नहीं है सर्व व्यापक है। जैसे आम का यह स्वभाव है कि उसमे रस झरना, रंग होना, कठोरता होना आदि यह उसका धर्म है। आकाश अपनी सीमाओं मे रहता है यह आकाश का जो रूप है वह उसका धर्म है। हर चीज का जो स्वभाव है वह धर्म है फिर प्रश्न यह पैदा होता है कि स्वभाव किसको कहते हैं ? जो बिना किसी दूसरे कारण के होता हो, जो स्वत. सिद्ध होता हो उसे स्वभाव कहते हैं और जो दूसरे किसी कारण से उत्पन्न होता हो वह स्वभाव नहीं विभाव है।

तो धर्म क्या है ? स्वभाव। जैसे पानी का स्वभाव क्या है ? तरलता। यद्यपि पानी कोई द्रव्य नहीं है पानी भी एक अवस्था है इसमे द्रव्य है पुद्गल परमाणु। पानी उन परमाणुओ का समूह है एक अवस्था है लेकिन फिर भी हम दृष्टान्त देने के लिये अपनी बात को समझाने के लिये पानी का आश्रय

लेते हैं। जैसे पानी एक द्रव्य है और उसका स्वभाव है तरलता, शीतलता। शीतलता लाने के लिये किसी संयोग की आवश्यकता नहीं है उसे संयोग नहीं चाहिये लेकिन पानी गर्म होता हुआ भी देखा गया है। पानी जो गर्म होता है वह अग्नि के संयोग से होता है। गर्म करने के लिये उसे संयोग चाहिये पर ठंडा करने के लिये संयोग को हटा दीजिये। ठंडा वह स्वयं हो जायेगा। पानी का बहना स्वभाव है लेकिन जमाने के लिये फ्रीज चाहिये। कोई संयोग चाहिये। जो बिना कारण से होता है उसे स्वभाव कहते हैं जो किसी कारण से होता है वह विभाव है।

पृथ्वी में गुरुत्वाकर्षण शक्ति है। वह किसी ने बनाई है? नहीं। प्रत्येक परमाणु में आकर्षण और विकर्षण शक्ति है। अपनी शक्ति को समेटे रखना और दूसरों को दूर रखना प्रत्येक परमाणु में ऐसी शक्ति है तो फिर कहें कि न्यूटन ने इसका आविष्कार किया या बना दिया यह गलत है। क्या पहले नहीं थी? थी। गुरुत्वाकर्षण शक्ति पहले से थी। पहले भी कोई फल पेड़ से गिरता था तो जमीन पर आता था। पहले भी लोग जमीन पर चलते थे। तो फिर न्यूटन ने क्या बात की? जो शक्ति काम कर रही थी और अब भी काम कर रही है उसे उसने जान लिया कि यह भी कोई शक्ति है और आप लोगों के सामने प्रगट कर दिया। हम ऐसा समझते हैं जैसे उसने कोई नई बात आविष्कार कर दी। ऐसे ही भगवान ऋषभदेव ने धर्म को पैदा नहीं किया। धर्म न पैदा होता है और न मरता है। वह सदा काल रहता है। भगवान ऋषभदेव ने जो पहले से था उसे जान लिया और हमें उसे बता दिया। होता क्या है कि हम अल्पज्ञ होने के कारण जल्दी भूल जाते हैं और मुनिजन ज्ञानीजन उसको जानकर उसका उद्घाटन कर देते हैं। उसकी ओर हमारा ध्यान दिला देते हैं।

ऐसे ही जीव का भी स्वभाव है। स्वभाव क्या है? शान्ति व आनन्द। यह आनन्द क्या कहीं से पैदा किया जाएगा। अगर पैदा किया गया तो बाहरी चीज होगी और यदि उधार की चीज होगी तो पराश्रित होगा। पराश्रित सपने सुख नाहिं। उधार ली हुई चीज में सुख नहीं होता है उसमें पराधीनता होती है। यदि उस सुख के अन्दर सुख आप मान लें तो क्या होगा? दुख बना रहेगा। जिसने यह सुख दिया वह उसे छीन भी सकता है। यह भय उसे सदा बना रहेगा। तो वह सुख सुख नहीं होगा क्योंकि उसमें आकुलता बनी हुई है। मैंने इसीलिये कहा—आत्मा का स्वभाव क्या है? आनन्द और शान्ति

वह आनन्द पराश्रित नहीं है पर शाश्वत है सदाकाल रहता है। वही आत्मा का स्वभाव है धर्म है। वह दूसरे के कारण से नहीं होता। अगर दूसरे के कारण से होता हो तो दूसरे के आने पर हो जायेगा और उसके चले जाने पर चला जायेगा और ऐसा ही तो हो रहा है जितना हमको भौतिक सुख मिल रहा है वह पर पदार्थों के कारण से होता है पर जब वह पदार्थ आते हैं तो लगता है कि सुख है और जितने समय वह बने रहते हैं तो यह भय बना रहता है कि कहीं यह पर पदार्थ छूट गये तो? सब छीन जाएगा यह भय बना रहता है। इस वैभव मे चोरी का भय बना रहता है इसीलिये भर्तृहरि ने सूत्र बनाया है कि धन मे चोर का भय, स्वास्थ्य मे रोग का भय, यश मे निन्दा का भय और सत्ता मे शत्रु का भय बना रहता है। जो दूसरे से आया सुख होगा उसमें भय अवश्य ही बना रहेगा। तो सुख सुख नहीं। तो क्या चाहिये? सुख किसको कहे?

जो स्वतः होता है वह आनन्द हमारा स्वभाव है वह स्वय सिद्ध है किन्तु हम आकुलता मे हैं। आकुलता किसकी? आकुलता दूसरे के कारण क्यों होती है? आप खोज लीजिये आनन्द तो स्वभाव है, स्वभाव होने हुये भी जब पर का सयोग मिलता है तो आकुलता हो जाती है। आकुलता के लिए कुछ न कुछ संयोग चाहिये। किसी को धन चाहिए, यश चाहिए पुत्र चाहिए, पद चाहिए अथवा मकान चाहिए। कुछ सयोग चाहिए। मै पूछती हूँ कि आप अशान्त क्यों हैं? आप अशान्ति का कारण बतायेंगे कि मैं इस कारण से अशान्त हूँ लेकिन शान्त हो तो क्यो शान्त हो? खोज ले। कुछ कारण भी न हो तो भी शान्त हो सकते हैं और खोजे। क्या क्रोध करने के लिये कोई दूसरा चाहिए। आपको क्रोध क्यों आ रहा है? आपके बेटे ने आज्ञा नही मानी। मान कषाय के कारण से आपको क्रोध आ रहा है। आपको समय पर भोजन नहीं मिला तो आपको क्रोध आ गया। तो क्रोध के लिए किसी सयोग की जरुरत है परन्तु शान्त होने लिए किसी सयोग की आवश्यकता नहीं है।

रास्ते मे कुर्सी पड़ी हो और आप बिना देखे चल रहे हो और ठोकर लग जाये तो आप क्रोधित हो जाते हैं। क्रोध आने के लिए कारण जड़ वस्तु भी हो सकती है। आदमी दुकान से या आफिस से घर आता है। क्रोध तो आफिस

आकर पत्नी पर गुस्सा उतारते हैं और पत्नी बच्चों पर गुस्सा उतारती है और बच्चे बर्तनों पर जूते पर या डण्डे पर गुस्सा उतारते हैं। तो क्रोध करने लिए तो कोई भी कारण या निमित्त बन जाए। हम कभी कभी पाते हैं कि जिस समय आपको क्रोध आता हो उस समय भी आप क्रोध करना नहीं चाहते हो। देखा होगा अपने महिलाओं को लड़ते हुए, क्रोध कर लेती हैं, क्योंकि वे याद लेती हैं और फिर कहती हैं कि बेकार ही परिणाम खराब कर लिया। बैठे बैठे गुस्सा किया किया। तो मन में भी पश्चाताप चलता रहता है और क्रोध भी चलती रहती है।

क्रोध के साथ २४ घण्टे में यदि आप देखें तो बहुत थोड़े होते हैं। लेकिन शान्त आप अधिक समय रहते हैं फिर भी आप क्रोध को नहीं मानते। क्रोध सिर्फ दस बार आया और २४ घण्टे में यदि हम देखें तो पायेंगे कि दो घण्टे से अधिक क्रोध नहीं आया होगा और २२ घण्टे आप शान्त रहे हैं फिर भी आपको दो घण्टे अमर रहे हैं। क्यों? क्योंकि स्वभाव नहीं है। क्रोध जब आता है तब भी अच्छा नहीं लगता और जब चला जाता है तब भी हम उसे अच्छा नहीं समझते।

शान्त रहने के लिये कुछ नहीं चाहिए। सब निमित्त हटा दीजिए। लड़ाई स्वयं बन्द हो जायेगी। शान्ति का काल ज्यादा होता है पर वह काल बीतते हुए पता नहीं लगता है और शान्त रहने के बाद क्या हम पश्चाताप करते हैं? नहीं। बल्कि याद करते हैं कि वह काल बहुत अच्छा था? क्योंकि शान्त हमारा स्वभाव है। वह स्वयं आ जाता है। आकुलता को हम नियन्त्रण देते हैं और निराकुलता स्वयं आती है।

आकुलता किसको प्रिय है। आकुलता एक रोग है जो किसी निमित्त से आ रही है तो यह बीमारी किसको प्रिय है? कौन चाहता है आकुलता को? कोई नहीं चाहता है। सभी निराकुलता चाहते हैं। यह रोग प्रत्येक प्राणी को लगा हुआ है। इस रोग को दूर करने लिये प्रत्येक प्राणी उपचार करता है प्रतिकार करता है औषधि लेता है। औषधि किस प्रकार लेते हैं। एक बच्चे को भी बुखार हो और एक बड़े व्यक्ति को भी बुखार हुआ हो तो डॉक्टर दोनों को एक ही दवाई नहीं देता है। बच्चे को थोड़ी मात्रा में औषधि दी जाती है और बड़े को अधिक मात्रा में औषधि दी जाती है और इसके साथ यह भी देखा जाता है कि किसके शरीर की कैसी अवस्था है। क्या वह दवा पचा

सकता है या नहीं पचा सकता। फिर किसी की प्रकृति उष्ण है और किसी की कफ प्रधान है। किसी की वायु प्रधान है तो दवा हर व्यक्ति की प्रकृति के अनुसार दी जायेगी। पर बीमारी एक ही है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि औषधि ले ली परन्तु आराम नहीं होता है और आप दूसरी औषधि लेते हैं। दूसरी से भी आराम नहीं होता है तो तीसरी औषधि लेते हैं और यदि फिर भी आराम नहीं होता है तो डॉक्टर बदलते हैं और डॉक्टर बदलने से भी आराम नहीं होता है तो आप वैद्य बदलने की सोचते हैं। और तब तक यह बदलाव चलता रहता है जब तक कि आराम नहीं होता है।

इसी प्रकार हमें आकुलता का रोग लगा हुआ है। इसे मिटाने के लिए हम सोचते हैं कि आकुलता शायद इस लिये है कि मेरे पास मकान नहीं है और मकान बना लेते हैं। पर आकुलता और बढ़ जाती है फिर सोचते हैं कि फैक्टरी लगा लें परन्तु फैक्टरी लगाने पर भी आकुलता नहीं मिटती। इस प्रकार आशा के अन्दर लोग जीते रहते हैं परन्तु जब आकुलता नहीं मिटती तो उसकी बेचैनी बढ़ जाती है। कल्पना कीजिये कि एक व्यक्ति को रात में नीन्द नहीं आ रही थी तो उस व्यक्ति ने सोचा कि नींद आ जाएगी। रात के २ बज गये तो उसने २ बजे नींद की गोली खाली। अब उसे नींद आ गयी। अगले दिन उसने पहले से ही नींद की गोली खाली। रात के दस बजे गोली खाने के बाद वह लेट गया परन्तु उसे नींद नहीं आयी और २ बज गये आप समझना उसकी बेचैनी कितनी बढ़ जायेगी। गोली तो वह पहले ही खा चुका है। कल इसे बेचैनी नहीं थी क्योंकि उसे यह आशा थी कि यदि नींद नहीं आयेगी तो गोली खा लूँगा परन्तु आज तो वह गोली पहले ही खा चुका है फिर भी नींद नहीं आ रही है तो उसकी बेचैनी बहुत अधिक बढ़ जायेगी। इसलिए मैं कहूं कि जिन लोगों को वैभव नहीं मिलता है वे गरीब आशा पर जीते रहते हैं शायद मिल जायेगा तो निराकुल हो जाऊंगा। वह प्रमाण करता है उपचार करता है कि अमुक मिल जायेगा तो आकुलता मिट जायगी। मेरा बंगला बन जायेगा तो कष्ट मिट जायेंगे ऐसा वह सोचता रहता है और मृगमरीचिका में जीता रहता है। लेकिन सब कुछ मिल जाने के बाद भी आकुलता नहीं मिटती और बढ़ जाती है। इसकी वेदना को वही जानता है दूसरा नहीं जान सकता। इसलिये निर्धन व्यक्ति तो जीता है बड़े सुख से यही

आशा मे और जो धनिक होता है वह अपनी आकुलता को अपने सुख से वह भी नहीं सकता। क्यो ? दुनिया सुनने के लिए तैयार नहीं है। दुनिया कहती है कि जितना होता उतना रोना। लोगो को पता नहीं है कि होने से पहले आशा मे जो रहा था और होने के बाद पता चला है कि और अभी भी नही आई है। यह आकुलता नहीं मिटी है। उसकी बेचैनी बहुत जबरदस्त होती है इसलिये जो धनाढ्य घर के लोग हैं वह सब कुछ छोड़कर सड़क पर आ गये। तीर्थंकरो का वैभव था उन्होने सब कुछ छोड़ दिया वह छोड़ सके है परन्तु गरीब आदमी नहीं छोड सकता। क्योंकि तीर्थंकरों को यह दिखाई दे गया कि धन वैभव से आकुलता मिटी नहीं है।

जिन लोगो ने छोड़ दिया है इनकी प्रशंसा के गीत जो हम गाते है ? वह कैसे गाते हैं ? हम उनको धन वैभव से ही तोलते हैं। कैसे हमने वैराग्य भावना बनाई है जरा चिन्तन कीजिये। मनोविश्लेषण कीजिये। इसने उसमे कोडा कोडी इतने छोड़े इतनी सेना छोडी इतने प्यादे छोड़े इतना वैभव छोडा यह छोडा वह छोडा। यह कौनसा मन कह रहा है ? जरा सोचो तो सही। वह मन कह रहा है जिसको आशा है कि इसमें सुख मिल जायेगा। वह मन कह रहा है वह तोल रहा है उसमे। अरे वैराग्य को तोलते हो धन से। जो दवाई के प्रति उपेक्षित हो गया है उसे दवाई से तोलते हो। आशावादी मन तोल रहा है कि जिन लोगो को वैभव नहीं था और वह इस बात के लिये छोडकर सडक पर आ गये कि भगवान महावीर ने छोड दिया। तो उनका मन फिर भी धन से तोलता है। वह तोलता है किस बात से कि किस त्यागी ने कितने मन्दिर बनवाये। फिर भी नाम के लिये दौड़ता है क्योंकि उसमे आकर्षण रहता है। इसलिये यदि उसने त्याग भी किया तो भी धन के प्रति उसकी आशा बनी रहती है। जिसने सब कुछ पा लिया था और फिर छोडा है तो उसकी आशारूपी बेल टूट चुकी होती है और उस व्यक्ति का त्याग जिसने कुछ नहीं पाया है और फिर छोडा है उसकी आशारूपी बेल भरी रहती है सजीव रहती है। इन दोनो के त्याग मे मौलिक अन्तर रहता है।

त्याग की बात नही है आशा के टूटने की बात है। जो नींद को भग कर दे ऐसा जागरण चाहिए। आज पश्चिम के लोग भौतिकता की चरम सीमा पर पहुँच कर अब अध्यात्म की ओर आकर्षित हो रहे हैं क्यो ? क्योंकि उन्होंने यह पा लिया है कि इस वैभव मे कोई सुख नहीं है। भगवान महावीर ने एक

बात कही कि जब तक आप यह गोली नहीं लेते तब तक आप उसका आकर्षण नहीं खोते हैं। तो फिर अनोखी बात तो यह है कि फिर हम धन कमाते खूब कमाए, खूब अर्जित करे तभी हमको दिखाई देगा कि सब कुछ तो पा लिया है परन्तु फिर भी वहीं के वहीं हैं। लेकिन जिन्दगी बहुत थोड़ी है। क्या जरूरी है कि अगले भव में भी मनुष्य भव मिले और इस बात का पता नहीं है तो भगवान महावीर ने इसके लिए प्रयोग बताये हैं। वह कौनसे प्रयोग बताये हैं, जातिस्मरण के। समवसरण में जो गन्धकुटी के निकट आ जाता था उसको अपने पीछे के सात भव दिखाई पड़ जाते थे। सात भव दीखने से क्या तात्पर्य होगा? जो तुम पाना चाहते हो वह पहले भवों में पा चुके हो। दिखाई पड़ जाये। जितनी पौराणिक कथायें हैं उन सबको पढ़ो तो आप पायेंगे कि वैराग्य तब हुआ जब पूर्व जन्म बता दिया गया। जब उन्हें यह दिखाई पड़ गया कि जो कुछ तुम पाना चाहते हो वह तो पहले पा चुके हो तो फिर आकर्षण खो जाता है। बहुत पाने के बाद भी निराकुलता हाथ नहीं लगी तब वैराग्य आता है। तो जातिस्मरण के बहुत सारे प्रयोग हैं।

जातिस्मरण ऐसा नहीं होता कि जैसे कोई नाटक देख रहे हो। नाटक में तो हम दूर होते हैं उसमें सम्मिलित नहीं होते। नाटक दूर स्टेज पर होता है लेकिन जाति स्मरण में ऐसा होता है कि जैसे यह अभी आपके साथ घट रहा हो। जैसे हम किसी रास्ते से जा रहे हों और पत्थर सिर पर लग जाए और सिर फूट जाए। यदि हम याद करें तो हमें ऐसा लगता है कि जैसे सर अभी फूटा हो ऐसा महसूस होता है तो जातिस्मरण में भी ऐसा ही लगता है कि अभी घटित हो रहा है। यह प्रयोग है और इसे हम भी कर सकते हैं। लेकिन प्रयोग करना कठिन है। सन्त लोग उसे आपके सम्मुख रख देते हैं। छहढाला में इसीलिये सबसे पहले चतुर्गति के दुख बताये।

इसीलिये कहा कि आप पुराणों से कथाओं को पढ़ लो और यह जान लो कि चारों गति में कहीं भी सुख नहीं है। सुख तो होता है जो निष्कारण होता है और वही आत्मा का स्वभाव है वही धर्म है। अगर सकारण हो तो वह धर्म नहीं है। पुराणों की घटनायें पढ़कर हमें उनसे अरुचि हो और आशा की बेल टूटे ताकि हम दूसरी दवाई ले सकें। दूसरी दवाई है अन्तर्यात्रा।

भारत के पास भौतिकता नहीं है तो वह दौड़ रहा है भौतिकता के पीछे। पश्चिमी देशों के पास वह गोली काफी है उन्हें दिखाई पड़ गया है कि इन

बात पर ध्यान न देना। वे सब बातें तो मेरे और भगवान के बीच हो रही थीं। उनसे आपका कुछ मतलब नहीं।

तो ऐसी ही हमको आप सभी लोग बाहर में बड़े सज्जन दिखते हैं, पर आपके भीतर में कुछ और है, और आपको इलाज करना है भीतर का, बाहर का नहीं। शास्त्र सभा में बैठकर इलाज नहीं होता वहाँ आप भुलाते हैं आने आपको।

आप उसका इलाज सुनो—आप सोजिये कि मेरे भीतर में क्या है और बाहर में क्या है। आप अकेले मे बैठ जायें १०-५ मिनट को। वहाँ सिर्फ आपको अपने साथ होने का साहस करना पड़ेगा। उस १० मिनट में आप सिर्फ यह देखना कि मेरे भीतर में क्या चल रहा है। हिंसा चल रही, कि झूठ चल रही, कि चोरी चल रही, कि कोई भली बात चल रही। आप दिन मे उपवास कर लें लेकिन रात्रि में स्वप्न देखते हैं कि किसी भोज मे गए हैं, क्योंकि वासना है।

इसके लिये मनोवैज्ञानिक ने कहा था कि आप क्या हैं, आप का व्यक्तित्व क्या है उसे मैं आपको बता सकता हू, पहले मैं आपको बता दूँ कि आपके स्वप्न कैसे चलते हैं। स्वप्न मे जैसा आप देखते हैं आप वैसे हैं। स्वप्न यदि आपको अच्छा दिखता है तो आप अच्छे हैं और अगर खराब दिखता है तो आप खराब हैं।

आपकी तस्वीर लोगों की निगाह मे अच्छी हो सकती है लेकिन भीतर से निरोग होना अलग बात है। आपकी तस्वीर आपके स्वप्न मे प्रकट होती है।

यह स्वप्न क्या चीज है? मानलो आपने दिन मे किसी को गाली दी हो या मन मे वह गाली रोक ली हो तो वह आपको स्वप्न मे दिखाई देगी और दिन मे गाली देने का मन था और स्वप्न मे देखा कि उसे गाली देने के साथ-साथ घूंसा भी मारा है, दिन मे जो गाली देने का मन था तो सिर्फ एक गाली देने का मन था और रात्रि को वह गाली बड़े रूप में पैदा हो गई थी इसलिए स्वप्न में आप उसे मारने लगते हैं। दिन मे आप अगर रुखी रोटी खाते हैं तो रात्रि को भोज मे जाने का स्वप्न दिखेगा।

पदार्थ सामने आ रहे हैं, बाहर से रोक है तब स्वप्न मे सब प्रकट होता है कि आप ऐसा-ऐसा सोचते है। जो जो कुछ आप बाहर मे रोक लेते हैं वह सब आपको स्वप्न मे प्रकट होता है क्योंकि वहाँ कुछ ब्रेक नही है। बाहर मे हमने सभ्यता के, संस्कृति के ब्रेक लगाये हैं।

आप सड़क पर चले जा रहे हो और कोई स्त्री आपको ऐसी दिख जाये जो आपको बहुत पसन्द आ जाये तो वहाँ आप मुख से तो कुछ नही कह पाते लेकिन आपके मन मे कुछ न कुछ विचार तो आ ही जाते हैं। वहाँ आप आँख बचा लेते कि कहीं कोई देख तो नहीं रहा, कहीं वह महिला कुछ मेरे मन की बात भाँप न जाये, तो आप उसको ब्रेक लगा देते हैं, वही सब आपको स्वप्न मे दिखाई देता है।

यहाँ मैं यह कहना चाहती हूँ कि आप देखें। अगर आप यह न देखेंगे कि मेरे मे क्या बीमारी है तो फिर आप उसका इलाज नहीं कर सकते। आप अधिक नहीं तो १० मिनट तो बैठकर देखें कि हमारे अन्दर क्या बीमारी चल रही है। अगर आप हिंसा कर रहे हैं तो आप उमसे दूर होने का इलाज कर सकते हैं और अगर आप मे क्रोध चल रहा है तो आप उसके दूर करने का साहस बना सकते हैं।

तो यह पहला चरण हो गया मन का निरीक्षण। यह मन का निरीक्षण आपको १० मिनट भी करना कठिन होगा। आप अगर उस समय कोई पाठ करने लगे तो यह भी उसका इलाज नहीं है। आपने उस पर धूल डाल दिया। आप अगर उस बीमारी से दूर भाग गये तो बीमारी दब जायेगी लेकिन निकलेगी नहीं। कुछ प्रार्थना करने लगते हैं, पूजा करने लगते हैं, क्लब मे चले जाते हैं लेकिन उससे बीमारी मे कुछ असर न आयेगा। हम ६० साल अगर पूजा करें और कोई परिवर्तन न आये, ६० साल औषधि खायें और रोग मे कोई अन्तर न आये ऐसा कैसे हो सकता है?

इसलिये पहली साधना यह है कि हम अपने साथ जियें। अपने मन का निरीक्षण करें। पहले देखें कि मन में क्या है? अगर बुरा है तो उस बुरे से भी डरो मत। अपने साथ जीने का साहस एक बडा साहस है।

आपने देखा होगा कि जब कभी आप अकेले में भगवान का अभिषेक, पूजा पाठ, स्तुति करते हैं तो उस समय आप यों ही साधारण ढंग से कर लेते हैं क्योंकि उस समय आपको कोई दूसरा देख नहीं रहा होता और जब आप किसी बडे समूह में बोली बोलकर अभिषेक करते हैं तो वहाँ आप बडे भाव से, बडे लय के साथ, बडे अच्छे ढंग से करते हैं क्योंकि वहा हजारों लोगो की निगाह आपके ऊपर लगी होती है।

आपके मन में वहाँ यह रहता है कि इन सब लोगों की निगाह में मैं बड़ा अच्छा कहलाऊँ, बड़ा धर्मात्मा कहलाऊँ, बड़ा दानी कहलाऊँ। लोग समझ जायें कि जितने में इन्होंने बोली थी है उससे ६५ प्रतिशत अधिक तो अभी इनके पास है ही, लोग अधिक धनिक समझकर हमसे व्यापार का सौदा करेंगे, लोग हमारे घर को सम्पन्न धार्मिक घराना समझकर अपनी लड़कियों का विवाह मेरे घर करेंगे......ये सब बातें उसके मन में रहती हैं तभी तो वह वहाँ बोली बोलकर बड़े अच्छे ढंग से भगवान का अभिषेक करता है।

एक राजा था वह प्रतिदिन अपने किसी एकान्त के कोठे में एक घण्टे के लिये जाता था। एक बार सब लोगों को इस बात की उत्सुकता हुई कि छुप छिपाकर देखना चाहिए कि एक घण्टे तक वह राजा अपने उस एकान्त के कोठे में क्या करता है।

लोगों ने रानी से कह सुनकर उसके कमरे की दीवाल में एक सूराख करवा लिया। उस सूराख से राजा को जो भी देखे वहीं देखकर हट जाय। कोई किसी से कुछ बताये ही नहीं। तो बात वहाँ क्या थी कि वह राजा अपने सारे वस्त्र उतार कर बिल्कुल नग्न मुद्रा में बैठकर कुछ ध्यान किया करता था। उस दृश्य को देखकर लोगों की समझ में आया कि यह राजा पागल हो गया है।

आखिर एक बार लोग उस राजा से पूछ ही बैठे कि आप अपने एकान्त कमरे में सब कपड़े उतार कर एक घण्टे बैठकर क्या करते हैं? तो वहाँ राजा ने बताया कि देखो जब मैं दरबार में होता हूँ तो जैसे तुम सब लोग होते हो उनके अनुसार मैं होता हूँ। जब मैं कपड़े पहने रहता हूँ तो मैं क्या हूँ इसका पता नहीं पड़ता। तो मैं क्या हूँ? इसके जानने के लिये मैं प्रतिदिन एक घण्टे के लिये कपड़े उतारकर रख देता हूँ।

आप यही देख लीजिये—यदि किसी बच्चे को राजसी वस्त्र पहना दिये जायें तो वह अपने को राजा अनुभव करता है, वह फिर सिंहासन पर बैठना पसन्द करता है और अगर उसे किसी सेठ के वस्त्र पहना दिये जायें तो वह गद्दी पर बैठना पसन्द करता है, सिंहासन पर नहीं। उसे यदि किसी सैनिक के वस्त्र पहना दिये जायें तो वह अकड़कर सैनिक की भाँति चलने लगता है, और अगर किसी मुनीम के वस्त्र पहना दिये जायें तो वह अपने को मुनीम जैसा अनुभव करके उस तरह से अपनी चेष्टायें करता है। ये सब अनुभव वस्त्रों के

आधार से बनते हैं लेकिन मैं क्या हूं इसका अनुभव इन वस्त्रों से नहीं हो पाता।

तो मैं क्या हूं इसके अनुभव के लिये कोई दूसरी चीज साथ में बिल्कुल न हो। मैं जो हूं उसकी असलियत सामने आये।

आज का मनुष्य अपने रोग को दबाये बैठा है, लेकिन उस रोग से घबडाकर भागने की जरूरत नहीं, रोग कितना ही भयकर हो, कितना ही कष्ट देता हो लेकिन उसे जानना होगा, उसके साथ जीना होगा। इसलिये १० मिनट को आप बिल्कुल एकान्त में बैठ जायें। यह सब सम्यता, यह सब संस्कृति उतार कर रख दें। इस संस्कृति ने हमको दबाव सिखाया। आपका मन होता है कि लेट जायें लेकिन संस्कृति सिखाती है कि पैर समेट लो।

हम अपनी भावनायें, वासनायें दबाते हैं और दबाते दबाते भीतर मे जहर पैदा हो गया। वह दबाते दबाते बडा भयंकर हो गया है और वह टूटने के करीब है।

आप के मस्तिष्क में एक बडा बोझ है। आपने अपने आपको बड़ा कुण्ठित बना लिया है और अपने मस्तिष्क मे बडा तनाव उत्पन्न कर लिया है इसलिये आप मे बडी बीमारियाँ बढ गई हैं। हमारे ख्याल से इस पृथ्वी पर आजकल ८० प्रतिशत लोग ऐसे हैं जिनको दिल की बीमारी है। यह किस कारण से है ? सिर्फ उन भावनाओ को दबाने के कारण।

धर्म दबाने के नही रहता। धर्म कहता है कि आपके मन में जो है उसे बाहर निकालो। लेकिन निकालने से पहले उसे समझना होगा। समझना आँखो से न होगा, भीतरी चक्षु से देखना होगा और उसके लिये बडी एकाग्रता चाहिये।

आपमें क्रोध चलता है तो आप उसे रोकें नहीं, आपके भीतर किसी की हिंसा करने का विचार होता है तो उसे भी आप देख लें। उसे किसी से कहने की जरूरत नहीं है। देखना इसलिये है कि कम से कम अपनी बीमारी का पता तो हो जाय। जब आपको पता ही न होगा कि हमारे अन्दर किसी की हिंसा करने के भाव आये तो आप तो दूसरों को अहिंसक दिखाने की कोशिश करेंगे और हैं आप भीतर में हिंसक।

तो सबसे पहले आप अपने अन्दर चल रहे महाभारत युद्ध को तो समझें ताकि आप उसे बन्द करने का कुछ उपाय बना सकें और यदि आपको

इसका पता ही न लगा तो फिर आप उसके बन्द करने का उपाय ही क्यों बनायेंगे ?

देखिये आप लोग शास्त्र-सभा में जाते हैं तो वहाँ जाना कुछ बुरा नहीं है। वहाँ भी आप को जीवन में चलने की विधि सिखाई जाती है, पर उस विधि को अपनाना एकान्त में ही पड़ेगा। जितने भी आवरण हैं, जितना हमारा बाहर की तरफ भागना है उन सबसे दूर हो जायें। इसीलिये तो कहा है कि पूजा ऐसी जगह में हो जहाँ कुछ न हो, खुली दिशायें हों।

जैसे कोई फकीर दिन भर भिक्षा मांगता है और सब कुछ अपनी झोली में डालता जाता है। जब शाम को वह अपने घर लौटने लगता है तो वह उस झोले में देखता है कि कहीं कोई खराब चीज ने किसी अच्छी चीज को खराब तो नहीं कर दिया। ऐसे ही दिन भर हमने जो कुछ किया है दुकान पर गए, घर में गये, मित्रों में गये, जहाँ जो भी किया हो वह सब करने से हमारे ऊपर कहीं धूल तो नहीं इकट्ठा हो गई। किसी से प्रेम वार्ता भी हुआ है, किसी से झगड़ा भी हुआ है, कहीं-कहीं लोभ भी आया है, बहुत सी चीजें दिन भर आयी हैं उन सबकी जो धूल रह गई है उन सबका निरीक्षण शाम को करें। उसका नाम है प्रतिक्रमण।

प्रतिक्रमण का पाठ तो जो चाहे बैठे-बैठे बोल लेता है ग्रामोफोन रिकार्ड की तरह लेकिन यह कोई सही ढंग का प्रतिक्रमण नहीं है। प्रतिक्रमण का अर्थ है कि अपनी आत्मा के प्रति भला बुरा जो कुछ भी हो गया है उसका लेखा जोखा करना। बताओ क्या आप लोग ऐसा करते हैं ? नहीं करते। अगर नहीं करते हैं तो आपके भीतर जो बुरे विचार आ गये हैं उनसे अच्छे विचार भी दूषित हो जाते हैं।

इसलिये रात दिन के २४ घण्टों के अन्दर रात्रि में जो कुछ विश्राम लेने का समय है उस में कुछ समय दिन भर की अपनी करतूत का निरीक्षण करने में लगाये। निरीक्षण ऐसा है कि जो हमारे दोषों को दूर निकालना है। जब हम बीमारी को देखेंगे ही नहीं तो फिर वह बिमारी कैसे निकलेगी।

तो पहली चीज है देखना। अपने विचारों को, अपने भावों को देखना, यह १० मिनट का प्रयोग है, आप ऐसा करके देख लीजिये। बिल्कुल एकान्त में बैठ जाइये। यहाँ पर यह नहीं कहा जा रहा कि आप कौन सा आसन लगाकर बैठें। किसी भी आसन में आप एकान्त में बैठ जायें और जो भी आपके

विचार चलते रहे हो उन्हें देखिये। सिर्फ उन्हें देखना है। कम से कम पता तो लगे कि हमारे अन्दर कैसी भावनायें आती हैं। यह पहला चरण है हमारी मनोस्थिति कैसी है, उस सब को देखना है।

तो हम भीतर मे कुछ और हैं बाहर मे कुछ और। भीतर की अपनी बीमारी को १० मिनट के प्रयोग से जानें तो हम जान सकेंगे और जब उसे जान सकेंगे तब ही हम उसे निकालने मे समर्थ हो सकेंगे। आज तो आइये। इस निरीक्षण के द्वारा हम अपने आत्मा का जागरण करें।

जागरण की विधि

यह मनुष्य दुनिया को बनाने के लिये इस पृथ्वी पर भी रेखायें डाल देता है। भूमि के ये सब बटवारे किसने किये? इस मनुष्य ने। दुनिया को बनाने के लिये इस मनुष्य ने दुनिया को ही तोड़ डाला। लेकिन क्या कभी पक्षियों को इस प्रकार के भेद करते हुये देखा? एक चिड़िया हिन्दुस्तान की बाऊन्डरी से उड़कर पाकिस्तान चली जाती है, उसे पासपोर्ट बनवाने की जरूरत नहीं होती। हवा भी सब जगह निर्बाध रूप से बहती रहती है। उसे भी पासपोर्ट लेने की जरूरत नहीं होती। लेकिन किसी आदमी को अगर हिन्दुस्तान से पाकिस्तान जाना हो तो उसे पासपोर्ट बनवानी होगी और उसमें भी टाइम लगेगा। लेकिन चिड़ियों को पासपोर्ट की कोई जरूरत नहीं होती वे सब जगह उड़कर जा सकती हैं। उनके ऊपर कोई बंधन नहीं है, जब कि उन चिड़ियों ने दुनिया को बनाने का कोई ठेका नहीं लिया और इस आदमी ने दुनिया को सुधारने की जिम्मेदारी ली है।

आदमी ने इस पृथ्वी पर स्वर्ग या नरक बनाया हो ऐसा कुछ नहीं है। उसने तो देशों का विभाजन किया है यह मेरा देश और यह दूसरों का देश। और इस आदमी ने सिर्फ इतना ही नहीं किया, सिर्फ भूमि का बटवारा भर ही नहीं किया किन्तु आदमी-आदमी में भी विभाजन कर दिया। इसने धर्म और जाति के आधार पर बटवारा कर डाला।

सब मनुष्यों के अन्दर, आप देख लीजिये, हड्डी खून, मांस, मज्जा वगैरह सब एक जैसे हैं, उनमें कुछ फर्क नहीं है। जब कोई बच्चा पैदा होता है तो चाहे वह हिन्दू का बच्चा हो या मुसलमान का बच्चा हो, या सिक्ख का बच्चा हो या ईसाई का बच्चा हो, सब का जन्म एक जैसा ही होता है, सब एक जैसे मनुष्य है पैदा होते समय, लेकिन जब वह बड़ा हो जाता है तो अब वह मनुष्य नहीं रहता। वह जिस मुल्क में, जिस जाति में, जिस धर्म में पैदा होता है वह उसका बन जाता है। रहता मनुष्य की तरह है पर पढ़ता

है हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि अपने धर्म की तरह। और फिर वह भारतीय, जापानी, अमेरिकन आदिक अनेक रूपों में जीता है।

पशु पक्षियों में ये कोई भेद नहीं होते। गाय कभी यह नहीं सोचती कि यह हिन्दुस्तानी है इसलिये इसे दूध दूं और यह पाकिस्तानी है इसे दूध न दूं। गाय के मन में इस प्रकार का कोई भेद नहीं होता। भेद होता है आदमी में।

तो दुनिया को कुरूप बनाने में आदमी का हाथ है। एक इस जगह में यह मनुष्य भेद पैदा कर लेता है। प्रकृति से पैदा होता है मनुष्य की तरह, लेकिन इसने धर्म, इसने समाज, इसने जाति और इसने देश के भेद ये सब किसने बनाये? मनुष्य ने। और इस मनुष्य ने इन्हें बनाया अहंकार से।

आश्चर्य की बात यह है कि सभी धर्म यह सिखाते हैं कि मनुष्य की तरह रहो। सब यह कहते हैं कि मनुष्य को बचा लो और फिर हम मनुष्य की तरह न रहकर मनुष्य को विनाश करने के लिये तैयार रहें तो यह क्या कोई भली बात है?

धर्म की आड़ में रहकर धर्मग्रन्थों को पढ़कर देख लीजिये। सभी धर्म मनुष्य की रक्षा की बात सिखाते हैं पर वे उस बात पर अमल नहीं करते, मात्र ग्रामोफोन के रिकार्ड की तरह पाठ पढ़ लेते हैं लेकिन करते वही हैं जो हमारा अहंकार कराता है।

वाशिंगटन के पास एक व्यक्ति की शिकायत आयी। लोगों ने शिकायत की कि हम लोग युद्धभूमि में जिन सैनिकों को घायल करते हैं वह व्यक्ति उन सैनिकों को पानी पिलाता है, उनको जीवनदान देता है, यह महा देशद्रोही है।" तो वाशिंगटन ने उस व्यक्ति को अपने पास बुलाया और पूछा कि क्या तुम हमारे घायल शत्रुओं को पानी पिलाकर उनको जीवन देते हो? तो वह व्यक्ति बोला—मैं पानी जरूर पिलाता हूं पर अफसोस मुझे यह है कि मुझे यह ही नहीं दिखाई देता कि कौन मेरा शत्रु है और कौन मेरा मित्र है। मुझे तो सब मनुष्य एक जैसे दिखाई देते हैं। तो वाशिंगटन उसका उत्तर सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ और एक मरहम की डिबिया देकर बोला कि तुम उनको पानी पिलाकर जीवनदान देते हो तो उनके घाव पर यह मरहम भी लगा दिया करो।

वास्तव में आदमी वही है जो आदमी को आदमी समझता है। जो प्राण

पहला चरण जागृति का कैसा हो ? विवेक का।

देखिये ये तीन चीजें हैं—(१) मन, (२) वचन (३) काय। इनमें सबसे स्थूल चीज है शरीर। उसके बाद स्थूल है वचन और उसके बाद है मन। शरीर और वचन का स्थूल रूप है और मन का सूक्ष्म रूप है। तो हम यहां शरीर से जागृति की बात शुरू करते हैं—जहां आप खड़े हो वहीं से यात्रा करना है और जहां आपको पहुँचना है वहां से यात्रा नहीं होती। वह तो मंजिल है। तब फिर आप जहाँ खड़े हो वहीं से अपनी यात्रा शुरू कीजिये।

तो पहला चरण यह है कि आप जो शरीर से क्रियायें करते हैं खाना पीना, चलना फिरना, उठना बैठना आदिक, उनका जागरण हो। यह जागरण आपको बहुत जरूरी है।

अगर अक्सर कहीं कोई पेपर पड़ा हो, चाहे वह धर्म का ही क्यों न हो उसे उठाकर गर्मी में, पंखा झलने लगते हैं। चाहे उसमें भगवान का चित्र ही बना हो, और बच्चे लोग तो धर्म के पेपरों को अपने मुंह में भी रख लेते हैं। कभी-कभी तो उन पर टट्टी तक कर देते हैं। उन्हें उन बच्चों की मातायें कूड़ा फेंकने वाली टोकनी में उठाकर कूड़ाखाने में फेंक देती हैं। यह किसकी बात है ? बेहोशी की। मैं आपसे आत्मा में जाने की बात पहले कैसे कहूं ? अगर आप व्यवहार की बात नहीं सीखते तो आत्मा में जा नहीं सकते। यह पहली सीढ़ी है।

तो पहला चरण है कि आप बाहरी चीजों के साथ अपना व्यवहार सीखें। आपको धर्म की किताबें कहाँ रखनी हैं कैसे रखनी हैं इसका व्यवहार सीखें। जब आप किताबों को उठायें तो बड़े होश से उठायें और जब धरें तो तो बड़े होश से धरें। अगर आप तेजी से उठाते धरते हैं तो आपके भीतर तनाव रहता है और अगर आप सावधानी से उठाते धरते हैं तो वह तनाव नहीं रहता। अगर आप तनाव के साथ तेजी के साथ पुस्तकों को धरते उठाते हैं तो वह आपमें हिंसा को जन्म देगा और अगर आप सावधानी से उठाते धरते हैं तो वह आपमें अहिंसा को जन्म देगा। उससे आपके अन्दर शान्ति आयेगी।

बहुत सी महिलायें झाड़ू लगाती हैं तो उस समय अनेक चीजों को उठा उठाकर बाहर पटक देती हैं। उनके धरने उठाने में सावधानी नहीं रहती है।

तो वहाँ बात यह है कि उनके मन में बेहोशी है। चीजों का करना उठाना पाप नहीं, बेहोशी पाप है।

यह आपके चित्त की बात है, धर्म चित्त से आता है। बाहरी क्रियाओं से नहीं। तो पहला चरण है, शरीर का जागरण, वस्तुओं के साथ व्यवहार।

दूसरा चरण है कि आप शरीर से जो भी क्रियायें करते हैं उठते हैं, बैठते हैं, चलते हैं तो उनमें आप सावधानी रखें। आप कपड़े उठाकर अगर यों ही पहिन लेंगे तो हो सकता है कि उनमें कोई कांटा चुभी हो या बिच्छू बैठा हो तो वह आपको काट सकता है इसलिये उन्हें देखभाल कर सावधानी से पहनना। तो शरीर की जो क्रियायें हो रही हों उन्हें होश से देखना।

पहले उपयोग का जो धागा होता है उसे शरीर पर लाना और शरीर से फिर मन में लाना और फिर चेतना में आना, शरीर की हर हरकत को देखना चलना फिरना, उठना बैठना, खाना-पीना आदिक सारी क्रियायों को होश से देखना।

यदि आप बुरा भोजन कर रहे हो, तो उसका भी होश से स्वाद लेना और अच्छा भोजन कर रहे हों तो उसका भी होश से स्वाद लेना। यह होश की बात है। और शरीर का तीसरा चरण यह है कि जब भी आप बैठे हों तो चाहे किसी भी आसन में बैठे हों, उसी आसन में १० मिनट को आप शरीर का भी ख्याल छोड़ दें। फिर आप देखें कि शरीर की क्या हालत होती है। अगर आप किसी भगवान की स्तुति कर रहे हों तो आपने अपने उपयोग को उल्टा दिया है। वहाँ भी अपने आत्मा को आपने दूर भेजा है। और वहाँ बोलने की कुछ बात नहीं है, सिर्फ जागरण की बात है। उत्सव में बेहोशी है और जागृत रहना यह जागरण है क्योंकि उत्सव से मन बाहर भटकेगा।

आप से कहें कि देखो तुम भगवान के भजन-कीर्तन में बैठो तो उसमें तुम्हारा मन लग जायेगा लेकिन आप से कहें कि आप ध्यान के लिये १० मिनट बैठें तो वहाँ आपको बैठना कठिन हो जायेगा। जिस समय आप शरीर की क्रियायें देखेंगे उस समय आपका मन न होगा, सिर्फ देखना होगा, सिर्फ चक्षुइन्द्रिय का काम होगा, अगर सर्दी लग रही हो तो वहाँ भी सिर्फ देख लेना।

इसके बाद शरीर का जो चौथा चरण है उसका नाम है कायनिरीक्षण।

हिसाब का मिलान करने बैठ गया था। इसी बीच में वह राजपुरोहित आया और फिर कुछ सिक्के चुराने के लिये हाथ बढ़ाया। तो ज्यों ही उस ने सिक्के चुराने के लिये अपना हाथ बढ़ाया त्यों ही कोषाध्यक्ष ने उसका हाथ पकड़ लिया और समझ गया कि यह चोर है और इसीने पहले के दोनो सिक्के चुराये हैं। अब वह कोषाध्यक्ष के द्वारा पकड़ लिया गया था। तुरन्त सब जगह यह खबर फैल गई कि राजपुरोहित ने राष्ट्रीय कोष से चोरी की है।

आखिर वह राजपुरोहित राजा के सामने हाजिर किया गया। उस दृश्य को देखने के लिये बड़ी जनता उमड़ पड़ी थी और सभी राजपुरोहित की ऐसी करतूत पर थूक रहे थे, उसे धिक्कार रहे थे। राजा ने जब उस पुरोहित से कहा—अरे तुम तो सबकी निगाह में बड़े धर्मात्मा थे, तुम्हें कमी भी कुछ न थी; हमे अफसोस है। तुमने चोरी क्यों की? तो वहाँ राजपुरोहित बोला—राजन मुझे चोरी करने की आवश्यकता तो कुछ न थी पर चोरी क्यों की सो सुनो—मेरे मन में सहसा ही यह प्रश्न उठ गया कि सभी लोग मेरे सामने श्रद्धा से झुक जाते हैं, मेरा बड़ा आदर करते हैं तो यह क्यों करते हैं, किस बात से करते हैं। इस प्रश्न के समाधान के लिये मैंने यह तरकीब निकाली थी।

जब मैंने चोरी की है तो मैं यह देख रहा हूं कि लोग मेरी ओर देखना भी नहीं चाहते, सब थूक रहे हैं और जब मैं भला था, अच्छा था याने मेरा आचरण अच्छा था तो सभी लोग मेरा सम्मान करते थे। तो अब मुझे इस तरकीब के द्वारा अपने मन में उठे हुये, प्रश्न का समाधान मिल गया कि सम्मान लोग मेरे शरीर का नहीं करते थे, आदर लोग मेरे शरीर का नहीं करते थे, किन्तु मेरे आचरण का आदर करते थे। पूजा चारित्र की होती है शरीर की नहीं।

तो दुनिया मे चारित्र पूजा जाता है व्यक्ति नहीं। चारित्र को सम्मान मिलता है, चारित्र से श्रद्धा होती है और चारित्र लोक मे शिरोमणि की तरह सुशोभित होता है। संयम के बिना यह मनुष्यभाव अशोभनीय है। जैसे कोई राजा हो, शिरोमणि हो और उसके मस्तक पर मुकुट न बंधा हो तो वह शोभा को प्राप्त नहीं होता इसी प्रकार कोई मनुष्यभव मे पैदा हुआ हो और उसमें संयम न हो तो वह शोभा को प्राप्त नही होता।

शोभा संयम में है, चारित्र में है व्यक्तित्व मे नहीं। भगवान मे और हम आप संसारी प्राणियों मे एक इस चारित्र का ही तो अन्तर है। सब मनुष्य एक जैसे ही पैदा होते हैं, पैदा होने में कुछ अन्तर नहीं होता, बड़े होने पर चारित्र

मे अन्तर हो जाता है। जिसका जितना-जितना चारित्र उत्तम होता जाता है उतना वह सम्मान का पात्र बनता जाता है, आखिर भगवान पूज्य क्यो बने ? उन्होने अपने चारित्र को उतम बनाया। ज्यों-ज्यो उनका आचरण उत्तम होता गया त्यो-त्यों उनके प्रति लोगों की श्रद्धा बढती गई। तो पूजा व्यक्ति की नहीं होती, चारित्र की पूजा होती है।

अब आप स्वतन्त्रता की बात पर आइये। आज कल हम आप लोग अपने को स्वतन्त्र समझ रहे तो वह स्वतन्त्रता किसकी है इस पर विचार कीजिए। सैनिक रूप से हम जरूर आजकल स्वतन्त्र हुए है लेकिन मानसिक रूप से स्वतन्त्र नही है और जब तक मानसिक स्वतन्त्रता नहीं आती तब तक आध्यात्मिक स्वतन्त्रता भी नहीं आती। उस आध्यात्मिक स्वतन्त्रता के आये बिना चाहे कोई कितना ही अपने को स्वतन्त्र कहे पर वह स्वतन्त्र नही है। वह तो परतन्त्र ही है।

अब कोई कहे कि कैसे हम स्वतन्त्र नही हैं। आजकल तो हमारा भारत देश बिल्कुल स्वतन्त्र है, महात्मा गाँधी ने देश को स्वतन्त्र किया था, कैसे हम स्वतन्त्र नही; सो ठीक है आपका भरत देश इन दिनो स्वतन्त्र जरूर है पर आप जरा अपनी स्वतन्त्रता पर भी तो कुछ विचार कीजिए। क्या आप अपने परिवार से कुटम्ब से, देश से बँधे नहीं हैं, क्या आप इनका बंधन समझ नही रहे हैं ? यदि आप बँधन न मानते तो इनके पीछे आप रात दिन चिन्तित क्यों रहते ? आप अपने को शान्त तो नहीं अनुभव कर पा रहे ? भले ही कोई बाहर से शान्त होने की मुद्रा दिखाये पर वह तो भीतर में बडा अशान्त है। तो वह अशान्त है तो इसका अर्थ यही है कि वह मानसिक स्वतन्त्रता नही प्राप्त कर पाया है।

मानसिक स्वतन्त्रता बिना बाहरी स्वतन्त्रता कोई स्वतन्त्रता नही है। जिसने आध्यात्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त करली हो उसके लिए बाहरी परतन्त्रता भी परतन्त्रता नही प्रतीत होती। जैसे किसी योगी को कोई लोग किसी नरमेध यज्ञ मे बलि देने के लिए पकड़े लिए जा रहे थे। तो उसका कोई शिष्य उन लोगों से झगड़ रहा था कि मेरे मालिक को आप इस तरह से जबरदस्ती पकड़कर बलि देने के लिये क्यों लिये जा रहे ? इन्हें आप बंदी क्यो बनाये हुए हैं ? इनका बँधन आप खोल दीजिए। यों अपने गुरु का बँधन बरदास्त न होने पर उसका शिष्य वहाँ झगड़ रहा था पर उस आध्यात्म योगी ने यही कहा कि यह बँधन मेरे

लिए कोई बंधन नहीं है। यह तो बाहरी बंधन है, शरीर का बंधन है। मेरे आत्मा को ये कोई बंधन बांध नहीं सकते। मैं आत्मा तो सर्व बंधनों से रहित हूँ। तो अब आप देखिये आध्यात्मिक स्वतन्त्रता ही वास्तविक स्वतन्त्रता है। उसकी प्राप्ति हमें हो यह सबसे पहली चीज है।

एक जमाना था जब कि लोग राजा के आश्रित रहते थे। एक राजा होता था और उसकी जो आवाज होती थी यह सबको माननी होती थी इसीलिए कहते हैं कि यथा राजा तथा प्रजा याने जैसा राजा का चारित्र होता है वैसा ही प्रजा का होता है। प्रजा का आचार विचार राजा के ऊपर निर्भर होता है।

तो पहले जमाने में तो आचरण पर भी एक बंधन जैसा था पर आजकल तो ऐसी कुछ बात है नहीं, बल्कि इसकी उल्टी बात समझलो। पहले तो यह था कि जैसा राजा वैसी प्रजा पर अब है जैसी प्रजा वैसा राजा, याने जैसा प्रजा चाहती है वैसा राजा को करना होता है।

अब तो जनतन्त्र है। जनता जिसे चाहे उसे चुन ले, तो आपके आचरण की बात तो अब आपके ऊपर निर्भर है, किसी प्रकार का आचरण सम्बन्धी आप पर बंधन नहीं है, फिर क्यों न अपना आचरण अच्छा बना लें।

यहाँ स्वराज्य की बात चल रही। मनालो आजकल भारत देश स्वतन्त्र है। आप लोग स्वतन्त्रता पूर्वक सड़कों पर घूमते फिरते तो क्या इसका अर्थ है कि आप इतने स्वतन्त्र हो गए कि सड़क पर जहाँ चाहे कूड़ा करकट जमा कर दें, कोई बंधन नहीं। और यदि कोई ऐसा करने लगे तो वह तो उस स्वतन्त्रता का दुरुपयोग कहलायगा। ठीक है आप आराम से सड़कों पर फिरें पर वहाँ आपका कर्त्तव्य है कि उनकी सफाई का भी ध्यान रखें।

एक सड़क की ही बात नहीं, यही बात है सब जगह है। हर काम में उस स्वतन्त्रता के साथ-साथ आप अपने कर्तव्य का भी ध्यान रखें। जब कभी आप परिवार के बीच हैं तो वहाँ आप परिवार के सुधार की बात ध्यान में रखें। यही आपके आचरण की बात है। आप व्यवहार में अपना आचरण ठीक रखें। अब यदि कोई ऐसा सोचे कि हम दूसरों का तो सुधार करते फिरें और अपना कुछ सुधार न करें तो इस तरह से वह दूसरों का सुधार भी तो नहीं कर सकता। दूसरों का सुधार करने के लिये पहले खुद का भी सुधार होना चाहिये। देश का हर व्यक्ति यदि अपने-अपने सुधार की बात सोचले तो इस

तरह से सारे देश का सुधार हो सकता है।

जब कोई पहले अपना सुधार करके फिर अपने घर मे सुधार करले फिर समाज मे सुधार करले और फिर देश का भी सुधार करले, तो इस तरह से वह देश का भी सुधार कर सकता है। इसलिये सबसे पहले जरूरी है अपना सुधार। अपना आचरण अच्छा बनाना।

कुछ लोग किसी नाव मे बैठकर यात्रा कर रहे थे, उस नाव मे कोई एक कुर्सी रखी हुई थी। उस कुर्सी पर कोई सज्जन बैठना चाहता था, पर उससे बैठने से पूर्व ही उस पर कोई दूसरा व्यक्ति आ कर बैठ गया तो जो बैठना चाहता था वह उसके पास जाकर झगड़ने लगा कि यह तो मेरी कुर्सी है, इस पर मैं बैठूंगा, तो वह दूसरा व्यक्ति भी उससे झगड़ गया। उस झगड़े के प्रसंग मे ही वे दोनो उस नदी में गिर गये। उस नदी में रहता था कोई मगर मच्छ सो उस मगर मच्छ ने उन दोनो को खा लिया। इस दृश्य को देखकर लोगों ने झट उस मगरमच्छ को पकड़ लिया और उन दोनो व्यक्तियों को बचाने के उद्देश्य से मगरमच्छ का पेट फाड़कर उन्हें जीवित निकालना चाहा तो उन्होंने क्या देखा कि वे दोनो पेट के अन्दर भी झगड रहे थे।

तो इस कुर्सी के पीछे भी यही झगडा लोगों का चलता रहता है। अरे उस कुर्सी का मतलब तो था देश का सुधार करना पर एक बहुत बड़ा झगडा खड़ा कर लेते हैं। अब उनका यह झगड़ा कैसे मिटे, वे देश का सुधार कैसे कर सकें तो यह उनके आचरण पर निर्भर है। पहले अपना सुधार करें, फिर घर का, फिर समाज का और फिर देश का।

देखिये स्वतन्त्रता सभी को प्रिय है। कोई यह नहीं चाहता कि मैं परतत्र रहूं, किसी के आश्रित रहूँ, अभी आप एक बच्चे को ही देख लो, जब आपके घर कोई मेहमान आ जाता है और आप सभी लोग उसके पास बैठकर कुछ बातचीत करने लगते हैं तो आप का कोई बच्चा अगर भूखा हो तो वह वहाँ शान्त होकर बंधकर नहीं बैठना चाहता, वह खाना खाने के लिये बड़ा उपद्रव करता है, अपनी माँ से झगड़ता है, वह भी वहाँ कुछ अपना महत्व समझता है वह छोटा सा बच्चा भी बन्धन नहीं चाहता।

बन्धन किसी को भी प्रिय नहीं, परतंत्रता किसी को भी प्रिय नहीं, यह एक मनोवैज्ञानिक बात है। उस चार साल के बच्चे को जिसे अभी कोई खास ज्ञान नहीं है उसे तो कुछ समझा बुझाकर चुप भी किया जा सकता है। उसे

[illegible]
[illegible] सकता है [illegible]
[illegible] हो गई [illegible]
[illegible] कि [illegible]
[illegible] भी [illegible]
स्वीकार करेंगे। इसी को स्वतन्त्रता लिए है।

लोगों के अन्दर आचरण सम्बन्धी बीमारियाँ घर गई हैं बचपन से, ज्यों ही [illegible] है। बड़ी को उसका इलाज किया नहीं गया। अब यदि वही अवस्था ही जाने पर उसका इलाज किया जाय तो वह [illegible] बड़ी देर की क्योंकि वह तो असाध्य रोग जैसा पड़ गया, उसका दूर होना अब बड़ा कठिन है। बचपन से ही अगर हमारे आचरण सम्बन्धी बीमारी का इलाज हो गया होता तो आज बड़ी अवस्था हो जाने पर यह बीमारी रह ही नहीं सकती थी।

अब हमारी इस आचरण सम्बन्धी बीमारी को कौन दूर करे? खुद को ही दूर करनी पड़ेगी। जैसे देश की स्वतन्त्रता लाने के लिये महात्मा गांधी ने या पं० जवाहरलाल जी ने एक क्रान्ति की अब चाहे सामाजिक क्रान्ति की हो या देश की, पर उनको क्रान्ति खुद से ही लानी पड़ी तब वे देश की स्वतन्त्रता को प्राप्त करने में सफल हुए, तब ही अपनी भी अपने आचरण सम्बन्धी सुधार के लिए एक खुद से ही क्रान्ति लानी पड़ेगी तभी समाज का देश का सुधार कर सकेंगे।

जैसे आप अपने घर के बच्चों को चाहते हैं कि वे बड़े अच्छे बन जायें, तो आपको भी पहले अच्छा बनना पड़ेगा तब वे अच्छे बन पायेंगे और यदि आप चाहें कि हम तो ज्यों के त्यों बने रहें हम से कुछ न बने न आवे और वे बच्चे अच्छे बन जायें तो भला बताओ यह बात कैसे हो सकती है?

जो बच्चे रात दिन माता पिता का आचरण देखते हैं, आखिर वे पाठ तो वही सीखेंगे। बच्चों के भविष्य का निर्माण उनके माता पिता के आचरण पर निर्भर करता है। जैसा माता पिता का आचरण होगा वैसा ही घर के बच्चों का आचरण होगा।

एक बार कोई सेठ अपना कर्ज वसूल करने के लिये एक व्यक्ति के पास पहुँचा। वह पहले भी कई बार उसके घर तगादे के लिये जा चुका था। तगादे के लिये ही उस दिन भी पहुँचा। तो जब उस व्यक्ति ने उस सेठ को अपने

घर की ओर आते देखा तो समझ लिया कि सेठ तगादे के लिये आ रहा है सो अपने बच्चे को सिखा दिया कि देखो बेटा वह सेठ आ रहा है। मैं तो घर के भीतर रहूंगा, और अगर वह सेठ मुझे पूछें कि कहाँ है तो बता देना कि आज बाबू जी घर पर नहीं हैं बाहर गये हैं। तो बच्चे ने कहा ठीक है। अब वह व्यक्ति तो घर के अन्दर बैठा रहा उधर वह सेठ आया और उस बच्चे से पूछा-बेटा तुम्हारे बाबू जी कहाँ हैं? तो वह बच्चा बोला-बाबू जी आज बाहर गये हैं घर पर नहीं हैं। फिर सेठ पूछ बैठा बाहर कहाँ गये? तो वह बच्चा बोला-अच्छा ठहरो यह भी बाबूजी से पूछकर बताते हैं। आखिर सेठ सब बात समझ गया।

अब भला बताओ जो बच्चे माता पिता का इस तरह का गंदा व्यवहार देखेंगे वे क्या कोई भली बात सीखेंगे? वे भी वैसा ही अपना व्यवहार करने लगेंगे।

आपने देखा होगा कि बहुत से माता पिता ऐसे होते हैं जोकि अपने बच्चों के सामने ही गन्दे व्यवहार करते हैं तो क्या उससे वे बच्चे कोई भली बात सीखेंगे? आप चोरा-चोरी घर मे लुक छिप कर काम करते हैं और आपके बच्चे आपके उन कामों को देखते हैं तो क्या वे वैसे काम नही करेंगे? वे भी वैसा ही करेंगे? तो अपने घर के सुधार के लिये, अपने बाल बच्चों के सुधार के लिये पहले आपका खुदका सुधार आवश्यक है।

खुद के सुधार का अर्थ है खुद का आचरण अच्छा हो। जब खुद का आचरण अच्छा होगा तभी आप का परिवार भी अच्छा बन सकता है। और जब आप अपने परिवार को अच्छा बना सकते हैं तभी आप समाज और देश को अच्छा बना सकते हैं नहीं तो वे केवल एक स्वप्न जैसी बातें रह जायेंगी। आप देश का सुधार न कर सकेंगे।

अपने सुधार के लिये आवश्यक है कि आप अपनी इन्द्रियों को अपने वश में रखें। इन्द्रियों के वश होकर कोई अटपट व्यवहार न करें। अगर आप अटपट व्यवहार करेंगे तो आपके बच्चे भी वही अटपट व्यवहार करने लगेंगे।

आजकल देखने मे यही आता है कि नीचे से लेकर ऊपर तक सब लोगो की नियत खराब है, यही कारण है कि समाज का, देश का सुधार नहीं हो पाता। यहाँ प्रकरणवश इस सम्बन्ध मे एक घटना याद आयी एक राजा के

घर कोई बड़ा अच्छा घोड़ा था। उसकी सेवा के लिये राजा ने एक नौकर डाल दिया था। राजा की आज्ञा थी कि इस घोड़े को प्रतिदिन ५ सेर गाय भैंस का दूध पिलाया जाय। तो वह नौकर एक ग्वाले के घर से प्रतिदिन ५ सेर दूध लाता था।

अब देखिये उधर वह ठाकुर पहले से ही ४ सेर दूध मे एक सेर पानी मिलाकर ५ सेर दूध पूरा कर दिया करता था। यही से दूध मे पानी मिलाना शुरू हो गया, अब आप आगे भी यही बात देखते जाना। उस ग्वाले के घर भी एक नौकर था जो वह दूध राजा के यहाँ पहुंचा देता था सो वह भी उस दूध मे से एक सेर दूध निकाल कर उसमे एक सेर पानी डाल दिया करता था।

वही दूध जब राजा के यहाँ पहुँचाता तो राजा का नौकर भी उस दूध मे से एक सेर दूध निकालकर एक सेर पानी मिला दिया करता था। आखिर एक दिन राजा को इस बात का पता चला और किसी डॉक्टर के द्वारा उसकी निगरानी कराया तो सारा भेद खुल गया।

तो जैसे नीचे से ऊपर तक दूध मे पानी मिलाने की बात कही गई ऐसे ही सभी जगह आप लगा लीजिये। छोटे से लेकर बड़े तक हर एक की नियत खराब है, तो फिर भला बताओ ऐसी हालत मे किसी भी समाज का या देश का सुधार कैसे हो सकता है ? जब तक हमारा आचारण नहीं सही होगा तब तक इस देश का सुधार भी नहीं हो सकता।

आजकल भी अधिकार चाहते हैं कर्त्तव्य नहीं करना चाहते। जैसे लोग जब रेल गाड़ी मे बैठ जाते हैं तो उस पर अपना अधिकार जमाने लगते हैं पर वे यह नही समझते कि उसके प्रति हमारा कर्त्तव्य क्या है, ऐसे ही लोग कुर्सी का अधिकार चाहते हैं पर अपने कर्त्तव्य का कुछ ध्यान नहीं रखते, पर मालूम है ना, जैसे कहते हैं कि कोई साधु अगर अपने आचारण मे कुछ कमी कर दे तो उसके लिये यह बड़ा अपराध है और अगर कोई साधारण व्यक्ति आचारण सम्बन्धी कुछ अपराध करता है तो वह उसका हल्का अपराध है तो ऐसे ही कोई समाज या देश का कर्णधार यदि कुछ छोटा भी अपराध करता है तो वह भी एक महान माना जाता है, तो देश के सुधार के लिये उसके कर्णधार का आचरण बहुत अच्छा होना चाहिये।

जैन समाज में एक बात लोग कहा करते है कि अगर कोई जैन समाज

का साधु हो तो वह समाज को कुछ दे, याने समाज को उससे कुछ धर्म लाभ हो तब तो उस साधु का समाज के बीच रहना जीना भी शोभा देता है नहीं तो वह समाज के लिये भार रूप है इसी प्रकार देश का कर्णधार भी देश के लिये समाज के लिये तभी सम्मान का पात्र है यदि वह देश के लिये, समाज के लिये कुछ दे याने देश का जिससे सुधार हो वह कर्तव्य करे।

मोक्ष शास्त्र में एक जगह कहा है कि "परस्परोप ग्रह जीवानाम—एक दूसरे पर उपकार करना यह मनुष्य का जीव का कर्तव्य है। स्वयं जीना और दूसरों के जीने में सहयोगी होना, स्वयं खाना और दूसरों को खिलाना स्वयं अच्छे बनना और दूसरों को भी अच्छा बनाना, स्वयं का सुधार करना और दूसरों का भी सुधार करना यह इस मनुष्य का कर्तव्य है।

जो स्वयं सुरक्षित होगा वही दूसरों की सुरक्षा कर सकता है और जो स्वयं सुरक्षित नहीं वह दूसरों की भी रक्षा नहीं कर सकता। यह एक सामाजिक धर्म है और यह सामाजिक धर्म आध्यात्मिक धर्म में सहयोगी है इसलिये कहा है कि अपनी आध्यात्मिक स्वतन्त्रता, मानसिक स्वतन्त्रता पाने के लिये सर्वप्रथम यह आवश्यक है कि हम अपना जागरण करें, अपना आचरण अच्छा बनावें।

आचरण से ही इस मनुष्य भव की शोभा है व्यक्ति की कोई शोभा नहीं। पूजा आचरण की है, सम्मान आचरण का है, व्यक्तित्व का कोई सम्मान नहीं, कोई पूजा नहीं।

एक शिष्य ने अपने गुरु से पूछा कि आपको इतना समय साधना करते हो गया पर आपने अब तक पाया क्या? कुछ तो पाया होगा? वे जो उपलब्धियां हैं तो क्या हैं? तो गुरु ने कहा अरे शिष्य तुम पाने की बात करते हो। पाने की कोई चीज हो तो यह पायी जाये। मैंने पाया कुछ नहीं मैंने तो सब कुछ खोया है। तो खोने की बात सुनकर शिष्य को बड़ा आश्चर्य हुआ। सोचा कि दुनिया तो कहती है कि मैंने आत्मा को पाया, परमात्मा को पाया, सुख पाया, आनन्द पाया पर ये कह रहे कि मैंने पाया कुछ नहीं, बल्कि खोया है। तो वहां शिष्य खोने की बात सुन कर बोल तो कुछ न सका पर आश्चर्य भरी मुद्रा मे गुरू के चेहरे की तरफ देखता रह गया।

गुरु ने पूछा—बेटे तुम मेरी ओर आश्चर्य से देखते क्यों रह गये? क्या अभी तुम हमारी बात समझे नहीं? तो शिष्य बोला—हां महाराज अभी तो

हम आपकी बात नहीं समझे। गुरु ने कहा — अच्छा तो सुनो—जो पाया हुआ है उस पर पाना क्या? और जो पाया हुआ है, जो आता है वह चला जाता है और जो आता है वह चला जाता है। मैं न आता हूं न जाता हूं। शरीर आता है और चला जाता है। तो तुम पाने की बात करते हो, मैंने पाया कुछ नहीं, मैंने तो सब कुछ खो दिया।

जैसे एक कारीगर पत्थर की मूर्ति बनाता है तो वह उस मूर्ति पर आवरण करने वाले पत्थरों को हटाता जाता है, घटाता जाता है, सिर्फ हटाने का काम करता है, पाने का काम नहीं करता, तो क्या होता कि मूर्ति ज्यों की त्यों प्रकट हो जाती है ऐसे ही भीतर से क्योंकि वह मूर्ति उसके अन्दर पहले से ही थी।

तो गुरु ने कहा कि मैंने तो सब खोया है पाया कुछ नहीं है। तो वहां शिष्य ने पूछा—महाराज आपने खोया क्या है सो तो बताइये? तो गुरु ने बोला—मैंने खोया है क्रोध मान, माया, लोभ आदि बीमारियां। इन सब बीमारियों को मैंने अपने पास से भगा दिया है मेरा जो स्वभाव है वह प्रकट हो गया है। इतनी ही तो बात है।

हम जो पाने का प्रयत्न करते हैं तो हमको बाहर-बाहर में भटकना पड़ेगा। पाने के लिये हम धर्म की तरफ दौड़ते हैं, यश की तरफ दौड़ते हैं, धन वैभव की तरफ दौड़ते हैं। पाने के लिये ही तो लोग भटकते हैं लेकिन हमारी भावना ये कुछ पाने की नहीं है। हमारी भावना है ये सब खोने की।

खोने के लिये तो ये जरूरी है कि जो हो उसे निकाल दिया जाये। जैसे किसी स्वर्ण के आभूषण को तपाकर उसका मैल निकाल दिया जाय, मात्र शुद्ध स्वर्ण रह जाय। ऐसे ही आप में जो भी विकार इकट्ठे हो गये थे, उन्हें खो दें, मात्र आप उस समय जो हैं सो ही ठहर जायें तो आप वहां देखेंगे कि मेरा भीतर में जो कुछ भी स्वभाव है वह प्रकट हो जाता है।

स्वभाव कभी खोता नहीं है और न उसके खोने की कोई विधि है, स्वभाव केवल ढक जाता है। जैसे पानी का स्वभाव तो जो है सो ही है शीतलता आदिक, पर उसमें कोई नमक, मिर्च, मीठा, खटाई, जीरा आदि डाल दें तो उससे नाना रूप बन जाते हैं। पानी का स्वभाव कहीं जाता नहीं है किन्तु ढक जाता है। खटाई, मिठाई वगैरह के नीचे पानी का वह स्वभाव

दब जाता है पर खोता नहीं है।

अब उन नमक, मिर्च, खटाई, मिठाई वगैरह नाना प्रकार की चीजों के मिश्रण से पानी का जो रूप बन गया उसके विषय में अगर पूछें कि बताओ पानी का स्वभाव कैसा है ? तो कोई कुछ कहेगा कोई कुछ, अनेक नाम लोग गिना देंगे। कोई कहेगा कि पानी तो ठंडा है, कोई कहेगा खट्टा है, कोई कहेगा कि पानी मीठा है, कोई कहेगा कि पानी तीखा है यों उनके नाना रूप बन जाते हैं। ये सब कुछ बता चुकने के बाद भी हम पूछें कि बताओ उस पानी में अभी भी कुछ है कि नहीं ? तो आप तो कह सकते कि कुछ नहीं है पर पानी तो है ना ? पानी का अपना खुद का स्वभाव तो है ना ?

आप तो उसमें जो खटाई, मिठाई, जीरा वगैरह मिले होंगे उन्हें तो गिना देंगे लेकिन पानी को आप नहीं गिना रहे जो कि पानी की असली चीज है। पानी को तो आप चूक गये और ये नाना प्रकार की चीजें आपके लिये महत्वपूर्ण हो गईं। यदि आप मीठा, खटाई वगैरह उन सभी बाहरी चीजों को हटाओ तो वह पानी प्रकट हो जायेगा।

तो ऐसी ही बात यहाँ है। आत्मा और परमात्मा जिसको आप कहते हैं उसका स्वाद आपको निरन्तर आ रहा है, वह आनन्द भी आ रहा है, कहीं से लाना नहीं है। वह इस समय भी आ रहा लेकिन बात क्या हुई कि आपने क्रोध, मान, माया, लोभ आदिक की खटाई मिर्च वगैरह मिला दी इसलिये बात खो गई।

आपको जब लगता कि मुझे गुस्सा आ रहा तो उस समय आपको पता पड़ता कि मुझे क्रोध का स्वाद आ रहा, यों ही जब भी आप जो कषाय करते तब ही उसके स्वाद का आपको पता पड़ जाता लेकिन आपके अन्दर जो आत्मा रूपी जल है उसकी शीतलता का आपको कुछ पता नहीं है। वह तो खोया हुआ है। वह कहीं बाहर गया नहीं है किन्तु नीचे दब गया है। जैसे पानी में नमक मिर्च वगैरह कम अधिक होते तो उनका पता लगता है पर स्थायी पानी के स्वाद का कुछ पता नहीं लगता। यदि मिर्च, खटाई, जीरा वगैरह को हटा दें तो फिर वहाँ सिर्फ पानी का पानी रह जायेगा। इसीलिये कहा कि पाना कुछ नहीं है बल्कि जो पाया है उसको खो देना है उसे हटा देना है।

क्रोध, मान, माया, लोभ, ईर्ष्या, द्वेष आदि कितनी ही ऐसी चीजें हैं जो

हमारे स्वभाव से नहीं आती, इतनी बात है और कुछ बात नहीं। जैसे कोई शुद्ध देसी घी हो और उसमें डालडा वगैरह मिला दिया जाय तो वह घी का शुद्ध तो न कहलायेगा। बल्कि दोनों ही अशुद्ध हो जायेंगे। उसमें न तो शुद्ध घी ही रहा और न शुद्ध डालडा ही, ऐसे ही हम आप में कुछ पुण्य भाव भी है, कुछ क्रोधादि भी होते हैं तो वहाँ मिली जुली स्थिति में होने से वे दोनों ही अशुद्ध हो जायेंगे। अशुद्ध क्रोध भी होता है और शुद्ध क्रोध भी। यहाँ शुद्ध क्रोध का मतलब है खालिस क्रोध। अब उस खालिस क्रोध में अगर दूसरी चीज मिल गई तो फिर वह शुद्ध कहां रहा? वह तो अशुद्ध हो गया।

कोई क्रोध भी करता जाये और कहे कि हम तो भाई न्याय की बात कह रहे तो बताओ वहाँ शुद्ध क्रोध कहा रहा।

एक तो आप धन के लिये लोभ करते और एक आप इसमें लोभ करते कि देखो मैंने कितना उपवास कर लिया तो चाहे कितना ही शुद्ध लोभ हो पर लोभ तो लोभ ही है। जैसे डालडा तो डालडा ही है वह अगर घी में भी मिल गया तो भी अशुद्ध कहा जायेगा। उसमें जो डालडा का शुद्ध स्वभाव है वह कहाँ रहा?

आप कभी किसी को शान्त करने की कोशिश करें और बीच-बीच क्रोध भी करते जायें तो उस समय आपका वह क्रोध शुद्ध क्रोध न कहलायेगा। यहाँ शुद्ध का अर्थ है खालिस। जब कभी आप किसी मन्दिर में बैठे हो और वहाँ पूजा पाठ करते हुये भी बीच बीच क्रोध करते हों तो वह आपका शुद्ध क्रोध न कहलायेगा। वह क्रोध तो अशुद्ध हो गया।

तो ऐसे ही हमारा जो मिश्रण था वह मिश्रण हमारा अनुभव विकृत किये जा रहा है। जो चीज कभी आयी हो और कभी चली जाय तब पता होता है और जो चीज न कभी आती हो और न कभी जाती हो तो उसका पता नहीं लगता।

जैसे कोई बादल आते हैं और फिर गरज घुमड़कर बरस जाते हैं, आकाश फिर ज्यों का त्यों निर्मल हो जाता है तो वहाँ पता लग जाता कि बादल एकदम से आये और फिर ऐसे गए तो ऐसे ही जब किसी को क्रोध आता है और उभर कर शून्य बरस जाता है तो पता लगता है कि क्रोध आया था लेकिन जिस आधार पर वह आता है उसका पता नहीं लगता क्योंकि वह सदा अकेला रहता है।

इसे यों समझ लीजिए कि जैसे कोई मछली सदा पानी में रहती है, वह पानी से बाहर नहीं आती इसलिए उसे पानी का पता नहीं लगता और वही मछली अगर कभी पानी से बाहर हो जाय तो फिर वह तड़फती रहती है, उसे उस पानी की कीमत का तब पता पड़ता है।

तो अभाव उस चीज की उपयोगिता बताने में कारण बनता है और जिस चीज का अभाव न बनता हो तो उसके उपयोग का पता नहीं लगता। ठीक यह ही बात आपके ज्ञान में स्वभाव में सदा रहती है। जन्मे उसी में हैं, मर उसी में जाते हैं तो उसकी उपयोगिता का पता नहीं पड़ता, पर किसी समय यदि हम उस ज्ञान में खो जायें तो पता पड़ता है कि ज्ञान की क्या उपयोगिता है।

तो जो मुझ में आया नहीं उसे बतायें क्या ? और जो मुझ में आया है उसे बता दें। हम यह ही तो बताते हैं कि जिसकी छाती पर बादल आते हैं, जिसकी छाती पर गरजते हैं और जिसकी छाती पर बरस जाते हैं वह आकाश है ऐसे ही जिस आत्मा के आकाश में क्रोध रूपी बादल आते हैं, आकर गरज और बरस जाते हैं फिर भी जो रहता है वह चैतन्य आत्मा है।

अब क्रोध, मान, माया, लोभ आदिक कषायों का स्वरूप जान लीजिए। ये कषायें आती हैं और आत्मा को कसती हैं। जो आत्मा को कसें उन्हें कषाय कहते हैं। ये कषायें कभी आती हैं कभी चली जाती हैं, ये हमारा स्वभाव नहीं है। हमारा स्वभाव तो वह है जो हम में प्रकट हो।

तो ये हमारी बीमारियाँ जो हैं वे दो तरह की है—एक तो यह कि जो बीमारियाँ हमें प्रिय लगें, जैसे किसी चीज का लोभ करें और वह लोभ हमें प्रिय लगे उसे हम छोड़ना न चाहें, एक तो यह बीमारी है। मान लो क्रोध आता है तो उस क्रोध को हम छोड़ नहीं पाते। यद्यपि जानते हैं कि यह क्रोध बुरा है लेकिन वह क्रोध छूटता नहीं, ऐसी आदत पड़ी है। जैसे किसी को गाली देना कोई भली बात तो नहीं है लेकिन कुछ ऐसी आदत पड़ी है कि गाली मुख से निकल ही पड़ती है, तो एक बीमारी तो यह कि कुछ कषायें करना आप को प्रिय लगता है और कुछ कषायों की बीमारियाँ ऐसी हैं कि जिनको करना चाहते तो नहीं फिर भी आदत ऐसी बन गयी है कि बिना वह कषाय किए रह नहीं पाते।

ये दो प्रकार की बीमारियाँ प्रत्येक मनुष्य में लगी हुई हैं। एक तो यह

दूर हो ही जायेगा। और यदि बीमारी को बीमारी -समझकर भी उसे कोई अपनाना चाहे तो फिर वह उस बीमारी से बच नहीं सकता है।

इन क्रोधादिक बीमारियों को दूर करने का उपाय विवेकी गृहस्थ भी करता और साधु भी। गृहस्थ के सामने, चूँकि गृहस्थी के सम्बन्ध के अनेक प्रसंग होते हैं इसलिये वह अपनी साधना मे धीरे-धीरे बढ़ता है और साधु को अपनी साधना मे बढ़ने का बड़ा मौका मिलता है इसलिये वह तेजी से बढ़ता है। इस साधना के बीच यदि साधु अपराध करे तो उसे अधिक अपराधी कहा गया है और अगर गृहस्थ अपराध करे तो उसे कम अपराधी कहा गया है। जैसे कोई छोटा बच्चा अग्नि मे हाथ दे दे तो उसे कम अपराधी कहा गया है अगर कोई समझदार व्यक्ति अग्नि में हाथ दे दे तो उसे अधिक अपराधी कहा गया है।

आपने देखा होगा कि कोई छोटा बच्चा अगर कोई छोटा सा भी गीत भजन बोल देता है तो लोग उसकी बड़ी प्रशंसा करते हैं, कदाचित उससे कोई चूक हो जाय उस गीत भजन के बोलने मे पर लोग उसकी गल्ती पर विशेष ध्यान नहीं देते। यदि वही गीत यदि कोई बड़ा गायक बोलता हो और वह बोलने में कुछ गल्ती कर जाये तो लोग उसकी वह छोटी गल्ती भी बड़ी गल्ती समझते हैं।

तो ऐसे ही समझिये कि अपनी साधना के बीच यदि कोई साधारण विवेकी गृहस्थ कुछ गल्ती करता है तो उसकी गल्ती इतनी बड़ी नहीं मानी जाती जितनी की साधु की मानी जाती है।

तो आपको चाहिये कि अपने अन्दर जो विकार बन गए हैं उन विकारों को विकार समझकर उन्हें दूर करने का निरन्तर ध्यान रखें, अपना आचरण विशुद्ध बनाने का प्रयत्न करते रहें। इस जीवन मे अपने आचरण को अधिक महत्व दें।

सब प्रकार के प्रयत्न करते हुये भी कदाचित चरित्र मे कमी आती है तो इसे एक सिद्धान्त में कहा है—चारित्र मोहनीय कर्म का उदय। जब जिस कर्म का उदय होगा उसके अनुसार उस कषाय का उदय होगा ही। और जैसे-जैसे इन कर्मों का शमन होने लगता है वैसे ही वैसे ये कषायें भी समाप्त होने लगती हैं।

हम जो भी कषाय करें चाहे गृहस्थ हो चाहे साधु, जिसको जितना अज्ञान होता है उतना ही अधिक कर्मबंध होता है। अब यह हो सकता है कि किसी

को कम डिग्री की कषाय हो किसी को अधिक डिग्री की। मानलो किसी को ५०० डिग्री की कषाय है तो किसी को ४०० डिग्री की ही हो। यह तो फर्क हो सकता है मगर कर्म बन्ध दोनों को ही होगा।

एक जगह श्वेताम्बर आमनाय में कहा है कि भगवान महावीर जब निर्वाण को प्राप्त होने लगे तो उन्होंने कहा कि गौतम कहाँ है अब गौतम को तो था तेज मान कषाय, सो किसी से कहलवा दिया कि गौतम से कह देना कि वह जिस नाव के किनारे बैठा है वह डूब रही है, उसे मजबूती से पकड़ ले। ताकि वह डूबने न पावे। अब इस बात को जब गौतम ने सुना तो वह बड़े आश्चर्य में पड़ गया। बड़े चिन्तन में पड़ गया कि कौन सी नाव और किसे पकड़ना? खैर गौतम ने उस बात को खूब गहराई से सोचा और समाधान मिला कि मैंने घर द्वार छोड़ा मद छोड़ा, शिष्य समूह छोड़ा, सब कुछ छोड़ा आत्मशान्ति के लिये पर मुझे महावीर से मोह हो गया है उसका संकेत महावीर ने दिया है।

इतनी बात से ही गौतम का हृदय परिवर्तित हो गया। उसके अन्दर कषायों की डिग्री में महान फर्क होता गया। ज्यों-ज्यों उसका ज्ञान विकसित होता गया त्यों त्यों उसकी कषायों का शमन होता गया और कषायों के शमन होने से उसका कर्म बन्धन भी कटता गया।

तो कहने का तात्पर्य यह है कि चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से कदाचित आचरण में कुछ कमी रहती है तो रहे पर विवेक अपना जागृत रखें। विवेक के जागरण में कमी न आने दें। अपने इस मानव जीवन में आचरण को अधिकाधिक महत्व दें।

चारों प्रहरों का आधार गृहस्थी

एक बार एक चित्रकार ने परमात्मा का चित्र बनाया था और परमात्मा यह परमात्मा को खोजने निकल पड़ा। यह कहां मिलेगा ? उसे खोजा और एक बड़े भोले बच्चे का चित्र बनाया। उस चित्र की सब जगह बड़ी प्रसिद्धि हुई। लोगों ने उसे बड़ा पसन्द किया और उस चित्रकार को उस चित्र के लिये बड़ा सम्मान मिला।

एक दिन उसके मन में आया कि मैंने भगवान का चित्र तो बनाया अब एक चित्र शैतान का भी बनायें। यदि शैतान न हो तो फिर भगवान ही क्यों रहेगा ? संसार न हो तो मोक्ष किसे कहेंगे ? संसार के बाद ही तो मोक्ष होता है। इसीलिये मुझे शैतान का भी चित्र बनाना चाहिये।

शैतान कौन है यह सोचने पर उसने सोचा कि शैतान तो मिलेगा जेल में, तो उसने बड़ी-बड़ी जेलों में भी शैतान खोजा पर उसे कहीं न मिला। अन्त में उसने सोचा कि दुनिया में वास्तव में यह आदमी ही शैतान है, सो वह एक कैदी आदमी के चाल ढाल हाव भाव उस प्रकार के देखकर सोचने लगा कि हम इस आदमी का चित्र बनायें। जब वह चित्र बनाने बैठा तो उस कैदी ने उस व्यक्ति से पूछा—अरे तुम यह क्या करते हो ? पहले मुझसे जरा बात करलो फिर यह काम करो। तो वह व्यक्ति बोला भाई मैं चित्र बना रहा हूं। ··· किसका चित्र बनाते हो ? ··· शैतान का।

यह बात सुनकर उस कैदी के आँखों से अश्रुधारा बह उठी। तो चित्रकार ने पूछा—भाई तुम क्यों रोते हो ? तुम्हारे रोने का रहस्य क्या है ? तो वह कैदी बोला—भाई मैं इस बात से दुःखी हो गया कि एक चित्र तुमने मेरा पहले भी बनाया था तो वह चित्र दुनिया में बहुत प्रसिद्ध हुआ था, वह भगवान का चित्र था और आज जो तुम शैतान का चित्र बना रहे वह भी हो सकता कि दुनिया में सम्मानित हो लेकिन दुनिया देखेगी और कहेगी कि यह भगवान है और यह शैतान।

हम जन्म से जो पैदा होते हैं वह तटस्थ शक्तियों को लेकर पैदा होते हैं

और उसके बाद उन शक्तियों का उपयोग हमारे हाथ मे है। हम उसका उपयोग जैसा चाहे कर लें। जैसे कोई पत्थर खान से निकलता है तो सिर्फ पत्थर होता है लेकिन उसमे जो मूर्ति प्रकट होती है वह अपनी ही कला का मूर्त रूप होता है। दो मूर्तियां हो सकती हैं। किसी भगवान की भी मूर्ति उसमे प्रकट की जा सकती है और किसी डाकू बदमाश शैतान की भी मूर्ति उसमे प्रकट की जा सकती है। यह तो उस चित्रकार की कला पर निर्भर है। पत्थर कुछ विरोध नहीं कर सकता कि मैं अमुक मूर्ति रूप नहीं बनूँगा। पत्थर तो पत्थर ही है और उसमे मूर्ति प्रकट करना यह कला का काम है। जैसे अब कोई कुशल खिलाड़ी किसी खेल को खेलता है तो भले ही उसके हाथ खराब पत्ते आ जायें या खराब बाजी आ जाये फिर भी अपनी कला कुशलता से वह बाजी जीत ही लेता है और यदि खिलाड़ी कुशल नहीं है तो भले ही वह जीती बाजी मे हो फिर भी वह बाजी हार जाता है। तो जैसे बाजी का हारना जीतना खिलाड़ी की योग्यता पर निर्भर करता है इसी प्रकार हम आप भी अपनी योग्यतानुसार अपने भविष्य का निर्माण करते हैं।

मैंने एक चित्र बनवाया था तो उसमे क्या था? पत्थर। बिखरे हुए पत्थर तो पत्थर हैं। कोई अगर उन पत्थरों के बीच चलता है तो ठोकर खाता है और अगर वही पत्थर ढंग से कहीं चुन दिये जायें तो वह सीढ़ी बन सकता है।

तो बात यह है कि पत्थर अच्छा बुरा नहीं होता। पत्थर तो पत्थर ही है। अब उसके उपयोग की बात है। उन्हीं पत्थरों की आप सीढ़ी बनाकर मंजिल पर चढ़ सकते और उन्हीं पत्थरों को बिखेर कर अपने पैरों मे ठोकर मार सकते, तो ऐसे ही हम आप अपनी पाई हुई शक्तियों का सदुपयोग भी कर सकते और दुरुपयोग भी कर सकते। यह तो अपनी अपनी योग्यता की बात है।

जैसे आजकल आपको बिजली की शक्ति मिली हुई है तो यह बिजली आपके प्राण भी ले सकती और आपके प्राणो की रक्षा भी कर सकती। एक ही जहर हो तो उसको जहर रूप मे यदि खाया जाय तो वह प्राण भी ले लेता है और यदि उसे किसी औषधि मे मिलाकर खाया जाये तो वह बड़े-बड़े रोगो को भी नष्ट करती है। कहते हैं न कि औषधि मे जहर भी अमृत बन जाता है और सामान्य रूप से वह जहर प्राण ले लेता है।

तो बताओ जहर अच्छा कि बुरा ? तो अच्छा बुरा कुछ नहीं कह सकते। वह तो हमारे उपयोग पर निर्भर है। जैसे एक चाकू डाक्टर के हाथ में हो तो वह उससे जीवन की रक्षा करता है और यदि वही चाकू किसी दुश्मन के हाथ में हो तो वह प्राणघात करने का काम करता है।

संसार में जितनी भी चीजें हैं वे स्वयं अच्छी या बुरी नहीं होतीं। वे तो अच्छी बुरी हमारे उपयोग पर निर्भर करती हैं। मान लो कहीं कोई कूड़ा-करकट गन्दगी पड़ी है तो बताओ वह अच्छी कि बुरी ? अरे आप उसे बुरी कहते हैं पर जब वह खाद के रूप में खेतों में डाल दी जाती है तो वह फसल के लिये अच्छी मानी जाती है।

दुनिया की कोई भी चीज हो, खराब से खराब भी हो परन्तु वह कलाकार के हाथ में पड़ जाने पर उपयोगी बन जाती है और अगर अच्छी भी चीज हो और वह किसी अनाड़ी के हाथ में पड़ जाये तो वही नुकसान देय हो जाती है।

एक जमाना ऐसा था कि जब इस बिजली का प्रचार नहीं था। जब कभी बादलों में बिजली चमक जाती थी तो लोग भयभीत होकर अपनी आँखें बन्द कर लेते थे, वह उनके लिये भयकारक थी और वही बिजली आजकल सबको सुख प्रदान करती है। तो यह तो अपनी अपनी योग्यता की बात है। किसी भी चीज को हम अच्छी या बुरी नहीं कह सकते।

कोई भी जन्म से अच्छे या बुरे नहीं पैदा होते। एक शक्ति को लेकर पैदा होते हैं। यह मनुष्य जीवन एक अवसर है, दाँव है उन शक्तियों के उपयोग का। ये पशु पक्षी जो पैदा होते हैं उनको कोई अधिकार नहीं कि वे उनका स्वेच्छा से उपयोग करें, इस लिये कहा कि पशुओं को कर्मफल चेतना होती है लेकिन मनुष्यों को जहाँ शक्तियाँ मिलती हैं तो वहाँ इतनी बुद्धि भी मिलती है कि वे उनका उपयोग सही ढंग से कर लें।

एक बिच्छू है, ततैया है उसमें काटने की प्रवृत्ति है और आत्म रक्षा की भी प्रवृत्ति है। अगर वह दब जाये तो काटती है। किस लिये ? अपने प्राणों की रक्षा के लिये, लेकिन उसमें इतनी अधिक योग्यता नहीं है जितनी कि मनुष्य की।

मनुष्य में इतना ज्ञ [illegible] कि जैसे [illegible] प्राण प्यारे हैं ऐसे ही दूसरों को भी, मनुष्य यह सोच [illegible] का कर्तव्य है कि वे अपना

बचाव करें तो दूसरों का भी करे।

खटमलों को यह पता नहीं होता कि हम जिनके शरीर का खून चूसते उनमें भी प्राण हैं पर मनुष्य यह सब सोच सकते इसलिये मनुष्य की जिम्मेदारी बढ़ जाती है।

पशु संस्कार रहित होते हैं और मनुष्यों में इतनी समझ है कि वे संस्कार से प्रेरित होकर चलें। अपनी शक्तियों का परिस्कार भी करें और परिस्कार करते करते वह मनुष्य देवत्व मे पहुंच जाये, यह भी हो सकता है।

दो तरह के मनुष्य होते हैं संसार मे। एक वे होते हैं जिनको अपना ही सुखप्रिय होता है, वे दूसरों का नुकसान करके अपना सुख चाहते हैं। ऐसे लोग पशु पक्षी समान गिने जाते हैं, और एक वे होते हैं जो अपना भी सुख चाहते और दूसरों का भी। दूसरों का दुख वे नहीं देखना चाहते। वे जानते हैं कि जैसे मुझे प्राण प्यारे हैं ऐसे ही सब जीवों को अपने-अपने प्राण प्यारे हैं।

यदि इतनी समझ है तो वह उस मनुष्य की योग्यता है। खुद भी जीना चाहता और दूसरों को भी जीने मे सहयोगी होता है, और इससे ऊपर के सामान्य लोग वे होते हैं जो अपने को दुख मे रखकर भी दूसरों का सुख चाहते हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि दुख क्या है।

साधुओं मे दुख सहने की क्षमता बढती है तो ये अपने सुख का परित्याग करके भी दूसरों को सुखी करना चाहते हैं। ऐसी जिनकी भावना होती है वे इन मनुष्यों से भी ऊपर उठ गए, उनका नाम देव है।

तो हम देव बनें यह तो आगे की बात है पहले हम मनुष्य ही बन लें। कहते हैं न कि नर से नारायण हो सकते हैं लेकिन अगर हम मनुष्य ही नहीं बन पाये तो फिर देव कैसे बनेंगे? तो पहले हम मनुष्य बन जायें। और मनुष्य बनने के लिये कुछ विशेष काम नहीं करना है।

आचार्यों ने सद्गृहस्थ बनने के लिये ६ आवश्यक कर्त्तव्य बताये हैं—(१) देव पूजा, (२) गुरूपासना, (३) स्वाध्याय, (४) संयम, (५) दान (६) तप आदि। अब यदि इन क्रियाओं को जानता हुआ भी कोई करे नहीं तो फिर उस ज्ञान से लाभ क्या है? आकृति जरूर उनकी मनुष्य की कहलायगी पर वे दानव हैं।

अपने विवेक को जितना-जितना छिपाने की कोशिश करेंगे उतना ही

भी नही चल सकता। हाँ यह बात जरुर है कि आज कल श्रद्धा का रूप कुछ बदल गया है।

पहले जमाने मे जब कोई कहता था कि यह बात सच है अमुक ऋषि ने कहा है, तो लोग झट मान लेते थे, आज कल लोग उस बात को मानने के लिये तैयार नहीं होते। यदि कहे कि यह बात न्यूटन ने कही, तो लोग बात मान लेते हैं। आज विज्ञान का युग है तर्क का युग है।

धर्म बुद्धि से आता है, बुद्धि श्रद्धा से आती है। बुद्धि से आप यह पढ़ लेते हैं कि यह मकान न तो मेरा है और न कभी मेरा होगा, लेकिन हृदय मे हाथ रखकर देख लो तो श्रद्धा मे यह बात खूब बैठी हुई है कि यह मकान तो मेरा ही है। जब श्रद्धा मे ही इस प्रकार की बात बसी है तो धर्म बुद्धि वहाँ धरी रह जाती है।

तो धर्म को हम हृदय से (श्रद्धा) से समझें, बुद्धि से नही। हृदय सोच करता है और बुद्धि तर्क। इसलिये मेरे ख्याल से तो आज के जमाने मे यह कोरा ज्ञान सफल न होगा, सफल होगा ध्यान आज के जमाने मे लोग ध्यान तो खूब करते हैं लेकिन उन पदार्थों में करते हैं जिनमे उनकी रुचि है। उन बाह्य पदार्थों का ध्यान होने से बनते हैं विकल्प और वहाँ अशान्ति प्रकट होती है।

देखिये ध्यान की दो विधियाँ होती हैं—(१) एक तो यह कि आप मालम्बन मे ध्यान करते हैं और (२) दूसरी विधि यह कि आप उसका निरीक्षण करते हैं। अब कोई कहे कि आजकल गृहस्थ लोग ध्यान नही कर सकते सो ऐसी कोई बात नही। गृहस्थ लोग भी ध्यान कर सकते हैं, ध्यान बिना सफलता भी नही मिल सकती और ध्यान हर समय कुछ न कुछ करते ही रहते हैं। ध्यान से ही मुक्ति भी प्राप्ति होगी। अब यह ध्यान आर्तध्यान, रौद्र ध्यान रूप न हो, विशुद्ध ध्यान हो जो अन्तः विशुद्ध ज्ञान प्रकाश उत्पन्न करा सके और हमारा कल्याण करा सके।

मनुष्य एक यंत्र है

एक [illegible] हुआ, उसने लोगों को बड़ी-बड़ी उपाधियाँ देकर राज्य चलाने की आज्ञा दी। किसी व्यक्ति को खुश करके, धन देकर उपाधि भी आ सकती है। सेठ साहूकार, राजा महाराजा आदि के सब बनना आसान है, कोई कठिन बात नहीं है और किसी गुरु के पास पहुँचकर अपनी स्मृति के बल को तीव्र बनाकर कुछ स्मृतियों को बटोरकर विद्वान भी बना जा सकता है यह भी कोई कठिन बात नहीं है लेकिन प्रसन्नता खरीदी नहीं जा सकती।

प्रसन्नता न तो धन देकर खरीदी जा सकती है और न कुछ पाठ याद करके, स्मृतियों को संजोकर आती है। प्रसन्नता, शान्ति कोई ऊपर से लादी जाने वाली, आरोपित की जाने वाली चीज नहीं है। वह तो भीतर से प्रकट होती है। इसके लिये व्यक्ति को स्वयं पुरुषार्थ करना होता है। किसी दूसरे की प्रसन्नता और शान्ति से भीतर में कुछ इसकी झलक जरूर मिल सकती है पर पूरे तौर से नहीं मिलती।

जैसे दूसरे के कुएँ से उधार पानी लेकर कुछ समय के लिये प्यास बुझाई जा सकती लेकिन उस जल से पूर्ण रूपेण प्यास बुझती नहीं है ऐसे ही किसी योगी के सान्निध्य में पहुँचकर उसके आनन्द की थोड़ी सी झलक तो आ सकती है पर पूर्ण रूपेण शान्ति व आनन्द की प्राप्ति उससे नहीं हो सकती।

तो आपको अपना कुआँ अपने ही घर के भीतर खोदना पड़ेगा। शान्ति व आनन्द तो अपने भीतर की चीज है। उसको अपने ही भीतर खोजना है। उसके लिये किसी दूसरे के पास सहयोग के लिये नहीं जाना है। बिल्कुल निपट अकेले को ही यह काम करना है। उस काम के लिये कोई दूसरा संगी साथी नहीं चाहिये, खुद को अकेले आना है। तो यहाँ आने के लिये चाहिये क्या? ध्यान। आज के संदर्भ में ध्यान की बात बताने से पहले कुछ बातें ऐसी सुनो जो कि योग जगत की प्राण हैं।

हमारी चेतना इस शरीर में बंद है। जैसे कोई चीज डिब्बे के अन्दर बंद

हो जाती है मान लो विजली पावर हाऊस मे डिब्बे के अन्दर बन्द होती है उसमें तो हजारों वोल्टेज होते हैं लेकिन वही बिजली जब आप लोगों के घर तक सप्लाई की जाती है तारो के माध्यम से, तो क्या वे सारे वोल्टेज आप अपने काम मे ले रहे हैं ? अरे उनमें से कोई दो ढाई सौ वोल्टेज आप काम में ले पाते होगे।

जब आप टेपरिकार्ड चलाते होगे या अपना ग्रामोफोन बजाते होगे तो उस समय आप सिर्फ ६ या १२ वोल्टेज तक बिजली जलाते होगें। यदि इससे अधिक पावर की बिजली जला दी जाय तो मशीन का कोई पुर्जा ही बिगड़ जाय। तो ऐसे ही समझ लीजिये कि इस शरीर के अन्दर आपकी चेतना बन्द है वह शरीर के विभिन्न भागो में भिन्न-भिन्न वोल्टेज के अनुसार अपना काम कर रही है।

देखिये इस शरीर के अन्दर बहुत बडी मशीनरी है इसको आप पहले समझ लें। जिस घर मे हम रहते हैं उसका समझना बहुत जरूरी है। जितनी ये इन्द्रियाँ दिख रही हैं नाक, आँख, कान, वगैरह इन सब मे ट्रांजिस्टर जैसे फिट हैं। ये भी कोई ६ वोल्टेज से चलते हैं तो कोई १२ वोल्टेज से चलते हैं। आप अपने मस्तिष्क के विषय मे सोच लीजिये वह कितने वोल्टेज से चल रहा है, यों ही आँख कान वगैरह के विषय मे भी सोच लीजिये। सभी इन्द्रियों के अन्दर आप यह वोल्टेज वाली बात पायेंगे। आपका हृदय पम्पिंग का काम करता हैं धमनी काम करती है और गुर्दा काम करता है। पैरों मे गति होती है जो कि चलने का काम करते हैं।

यों कितने ही यन्त्र हैं इस शरीर के अन्दर। एक काम नहीं है शरीर के अन्दर, एक बहुत बड़ी फैक्ट्री चल रही है इस शरीर मे। इस शरीर की मशीनरी के माध्यम से ही तो सारी मशीनरी बनी है। इसीलिये वैदिक दर्शन मे कहा है यथापिण्ड तथा ब्रह्माण्ड। याने जो शरीर मे है वही बाहर के ब्रह्माण्ड मे है।

आज की जितनी भी मैकेनिकल फैक्ट्री हैं वे सब इस शरीर के रिसर्च से बनी हुई हैं। शरीर अध्ययन करके हुई है। आपका जो आकाश का टेलिविजन बना है वह भी शरीर के आधार पर ही तो बना है आप उस

टेलिविजन में चित्र देखते हैं आँखों से तो एक बार देख लेने के बाद फिर आँखें बन्द करके भी तो देख लेते हैं। तो इसका अर्थ क्या हुआ? इसका अर्थ यह हुआ कि वह चित्र स्थायी रह सकता है।

जो चित्र स्थायी है उसमें गति नहीं है। स्थायी बनी रहती है। जैसे कोई बढ़िया कैमरे से खींचे तो उसकी स्थायी आकृति बन जाती है ऐसे ही टेलीविजन पर भी चित्र की आकृति आती है।

तो ये सब मशीनरी की चीजें इस शरीर के ही आधार पर ही तो बनी हैं। इस शरीर के अन्दर कितने ही यन्त्र काम कर रहे हैं। अब आप पता लगाइये कि इसमें कितनी बिजली खर्च होती है। वह बिजली भी इस शरीर में ही पैदा होती रहती है।

जो भोजन आपके पेट में जाता है उसका पेट में मथन होता है। उस मंथन से ऊर्जा पैदा होती है। देखिये रक्त अलग चीज है ऊर्जा अलग। ऊर्जा विद्युत रूप में है और रक्त एक भौतिक चीज है।

इस शरीर के अन्दर बिजली के प्रवाह के लिए बहुत सूक्ष्म स्नायु का जाल फैला हुआ है। जैसे सारे देश में स्थान-स्थान पर बिजली के पावर हाउस बने होते हैं और सब जगह बिजली के तार फैले हुए हैं। ऐसे ही इस शरीर के अन्दर जगह-जगह कितने ही ऐसे सूक्ष्म स्थल फैले हुये हैं जो कि सब अपनी-अपनी जगह पर अपना-अपना काम कर रहे हैं और वे सब एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। उनमें अगर बिजली फेल हो जाय तो फिर यह शरीर भी फेल हो जाय। फिर तो यह मस्तिष्क भी बिचारा कुछ काम न करे। और अगर यह मस्तिष्क फेल हो जाय, मस्तिष्क में ऊर्जा न पहुंचे तब तो फिर मस्तिष्क फेल हो जाय, और अगर मस्तिष्क फेल हो जाय तब तो फिर यह शरीर ही फेल हो जाय।

इस शरीर में कुछ ऐसे भी अंग हैं कि जिनके बिना भी यह शरीर की फैक्टरी चल रही है—जैसे पैर। अगर नहीं हों तो भी इस शरीर की फैक्टरी चलती रहती है। इस शरीर में कोई ऐसे भी विभाग होते हैं कि जिनके बिना शरीर नहीं चलता और कोई ऐसे भी होते हैं कि जिनके बिना यह शरीर चल सकता है।

अभी बिजली के पावर हाउस की बात कही गई थी। इस शरीर में भी बिजली का पावर हाउस बैठा है, देखो पैर हैं नीचे और मस्तिष्क है ऊपर, मस्तिष्क में है सोमचक्र हृदय में सभी है और उसका प्रवाह नीचे की ओर होता है वृक्षों में मूलाधार होता है नीचे की ओर और उसका प्रवाह ऊपर की ओर होता है। सभी तो वेदों में कहा है ऊर्ध्वमूल अधोशाखा। जैसे आप वाटिकाओं में देखते हैं वृक्षों में तो मूल नीचे होता है पर उसकी शाखायें ऊपर होती हैं पर मनुष्यों का मूल तो ऊपर होता है ऊर्ध्वमूल, अधोशाखा और शाखायें नीचे को फैली हुई होती हैं। दृष्टान्त तो वृक्ष का दिया लेकिन उसको मिला दें बिजली के पावर से, 'बिजली' तो मस्तिष्क में है और बह जा रही है नीचे की तरफ।

जब आप ऊपर से आ रहे हैं तो फिर आपकी यात्रा भी ऊपर को है परमात्मा ऊपर है तो नीचे से हम ऊपर को जाता है, ऊपर है मूल आधार उस मूल आधार का अर्थ है अखिल पावर हाउस। रेलवे के हिसाब से यों समझो कि जैसे कोई एक बड़ा जंक्शन होता है और उससे अनेकों स्टेशन अलग-अलग होते हैं, उन दूसरे स्टेशनों को नीचे की ओर समझिये और उस मूल जंक्शन को ऊपर की ओर, तो ऐसी ही बात मनुष्य के मस्तिष्क को ऊपर की ओर का मूल आधार समझिये। और पैरों को नीचे की ओर का समझिये।

यहाँ नीचे की ओर से उसकी चर्चा शुरू करते हैं। इस शरीर के अन्दर ३०६ नाड़ी होती हैं, उनमें से तीन नाड़ी प्रमुख हैं, मध्यम रूप से १० नाड़ी कही जाती हैं जिनका हमारे मूल द्वार से सम्बन्ध है। दो नाक, दो कान, दो आँख वगैरह से सम्बन्ध है, ये १० नाड़ी कही जाती हैं तीन प्रमुख नाड़ी बतायी उनमें एक है मेरुदण्ड, जो नीचे से आती हैं उसका नाम है सुषुम्ना। इसी प्रकार शेष दो और नाड़ियाँ हैं ईड़ा और पिंगला।

तो अन्तिम छोर में आकर एक त्रिकोण बनता है, उस त्रिकोण में जो दाईं तरफ का कोण है वह हमारे दायें स्वर तक आता है और जो बायें तरफ का कोण है वह हमारे बायें स्वर तक आता है, उसका नाम है ईड़ा और जो मध्यम में है उसका नाम है पिंगला और जो सबसे नीचे आती है उसका नाम है सुषुम्ना।

जो यह कहा है कि मेरुदण्ड के निचले भाग में एक चक्र बना है तो उसे हम तो अपने शब्दो मे ट्रांसफार्मर कहते हैं ऊर्जा तो अनन्त वोल्ट के हैं लेकिन वे ट्रांसफार्मर मे आकर ६ वोल्ट मे काम करते हैं।

कहीं-कहीं पर कमल की बात आती है। चार दल के कमल, कमल के भी चक्र बने हैं और जो ट्रांसफार्मर है वह भी चक्र बनता है। तो सामान्य शब्द है वह चक्र। वे चक्र ६ हैं। घुमाव पाकर उनमे वोल्ट कम हो जाते है, और कमल का मतलब भी चक्रात्मक ही होता है। तो चार दल का कमल बना और उससे ऊर्जा क्या हुई कि जैसे बन्द करते हुए किसी बटन को ऊर्जा आ रही है उसको बन्द करते हुए अन्त न आये, तीन चक्र देकर उसको मुख मे लपेटे हुए है उसका नाम योग में कहा है कुण्डलीनी। तो वह कुण्डलीनी क्या है? जैसे कोई सर्प अपने मुख में अपनी पूँछ दे दे और उसका मुखद्वार बन्द हो जाये, ऐसा यह चक्र है।

पहला चक्र है मूलाधार, इसका सम्बन्ध मस्तिष्क से है और अंतिम छोर सेक्स से होता है क्योंकि हमारी ऊर्जा एक केन्द्र पर है।

देखिये वीर्य अलग चीज है और ऊर्जा अलग चीज है, यदि वीर्य अलग हो जाये तो वहाँ ऊर्जा रहती है लेकिन ऊर्जा निर्जीव नही होती है। चाहे कोई सामान्य व्यक्ति हो या कोई ब्रह्मचारी हो, उसके वीर्य भी होना है और ऊर्जा भी लेकिन ब्रह्मचारी की ऊर्जा ऊर्ध्वमुखी होती है, जहाँ ऊर्जा है वह केन्द्र सक्रिय कहलाता है।

हमारी ऊर्जा अधोमुखी है, मूल केन्द्र मे है इसलिए हमारे मन के अन्दर सक्रियता बराबर होती है। जब तक अधोमुखी ऊर्जा रहती है तब तक कामवासना नही जाती है, इस पहले चक्र का नाम है मूलाधार। इसके बाद दूसरा चक्र (पावर हाउस) होता है। वह कहा है सेक्स के ऊपर, उस चक्र का नाम कहा है मणिपुर, ये सब मेरुदण्ड के भीतर होते है बाहर नहीं, तीसरा चक्र होता है स्वाधिष्टान जो नाभि केन्द्र पर होता है, और चौथा चक्र होता है हृदय स्थान पर, उसका नाम है अनाहत। हृदय मे जो मन है उसके पीछे कमल होना है।

जो पहला चक्र है वह ४ दल वाला कमल कहा और जो उसके बाद का

द दल वाला कमल कहा है, और जो नाभि में होता है वह ...
हा और जो चक्र हृदय स्थान पर होता है वह १६ दल वाला
है, और ५वाँ चक्र होता है कंठस्थान पर उसका नाम विशुद्ध चक्र
र छठा चक्र होता है मध्य में, इसका नाम आज्ञाचक्र कहा गया
दल का कमल होता है और अंतिम ७वाँ चक्र कपाल के बीच कहा
का नाम है सहस्रार।

ई बच्चा पैदा होता है तो वह कपाल का कोमल होता है। उसके
वह नहीं होते, उसको कहा गया है सहस्र दल कमल। तो इन
दर हमारी ऊर्जा बन्द होकर रह गई है।

ो जो ये दिखने वाली ५ इन्द्रियाँ हैं उनमें भी ऊर्जा के बन्द हो
न भी बन्द हो जाता है, जैसे बिजली के जो तार लगे हैं उनमें कुछ
जाये तो उससे सम्बन्धित जितने भी काम होते हैं वे सब ठप्प
ऐसे ही शरीर में ऊर्जा बन्द हो जाये तो सारा शरीर बिगड़

मे जो सूई लगाने वाले इन्जेक्शन चले सो वहाँ से चले सो सुनो—
सी व्यक्ति को बड़े जोर का सिर दर्द हुआ। उसे उस समय ऐसा
कि मानो सिर पर बहुत बड़ा बोझ रखा हो। उस बेचारे को
दर्द बढ़ गया कि वह उससे परेशान होकर अपनी आत्महत्या तक
ारू हो गया। लेकिन कहते हैं ना—"जा को राखे साइयाँ मार
।" एक बार क्या हुआ कि वह व्यक्ति कहीं लेटा हुआ था उसके
ही किसी शत्रु ने मारने के उद्देश्य से तीर चला दिया। वह तीर
ऐसी जगह लग गया जहाँ कि कोई जख्म था। जिसके कारण
ा सिर दर्द था। परिणाम क्या हुआ कि उस तीर के
जगह का खराब रक्त निकल गया और वह व्यक्ति ठीक ही
ी से यह इन्जेक्शन लगाने की बात चली।

शरीर में कितने ही ऐसे अंग हैं कि जिनमें किसी अंग के फ्यूज
र किसी का शरीर तो चल सकता है और किसी का शरीर
सकता है। कितने ही महा-युद्धों के अन्दर यह बात देखने में

अब आप कर्णेन्द्रिय से सम्बन्धित एक बात पर विचार कीजिये—आप सभी लोग ट्रांजिस्टर खूब सुनते हैं, जब किसी रेडियो स्टेशन से कोई गीत प्रसारित किये जा रहे हों तो वही आप सारी रात भिन्न-भिन्न आवाजों में टेप रिकॉर्ड के गीत सुनते रहें। उस कर्णेन्द्रिय में प्रकृति की ओर से ही कुछ ऐसी व्यवस्था है कि टेप जैसी सब प्रकार की आवाजों को उसमें सुना जा सकता है, अब रेडियो में तो स्विच के अप डाउन करने की व्यवस्था है, कानों में तो ऐसी व्यवस्था नहीं दिखती मगर उन कानों में भी इस प्रकार की व्यवस्था है कि सब कुछ बड़े आराम से सुनते रहते हैं। यदि ऐसी व्यवस्था न होती तो आप सुनते-सुनते हैरान हो जाते क्योंकि चारों ओर की आवाजें आपके कानों में आती ही रहती।

यहाँ चक्र की बात चल रही थी। ६ प्रकार के चक्र बताये थे, उन सभी चक्रों के अलग-अलग काम हैं, नाभि का काम भाव का है। हृदय का काम विश्राम का है, ऐसे ही सभी चक्रों के भिन्न-भिन्न काम हैं।......अब यहाँ बताना है मिथ्यात्व और सम्यक्त्व की बात। ये मिथ्यात्व और सम्यक्त्व हृदय से प्रकट होते हैं, मगर जब चेतना बन्द है तो ये भी ज्यों के त्यों बन्द से पड़े हैं।

ये सब काम तो इस शरीर के यन्त्रों के माध्यम से करने होंगे। हम कानों से ही सुन सकते, आँखों से ही देख सकते, और कोई उपाय तो नहीं है। हाँ ये जो चक्र बताये गये ये अगर खुल जाते हैं और पूरी ऊर्जा प्रकट होती है तो आप उसमें सीधा सा देख सकते हैं, उसका नाम दिव्यनेत्र ज्ञाननेत्र या तीसरा नेत्र कहा है। इन चक्रों के खुलने पर ही बड़ी-बड़ी ऋद्धियाँ प्राप्त होती हैं जैसे अवधि ज्ञान प्रकट हो जाना मन पर्यय ज्ञान प्रकट हो जाना आदि।

चक्र ६ प्रकार के कहे गये थे जो कि हमारी ऋद्धियों के पैदा करने में सहयोगी भी होते हैं। अब इसमें दो बातें हैं—एक तो कोई ऋद्धि पैदा करता है अपनी आध्यात्मिक साधना के लिये और कोई ऋद्धि पैदा करता है अपनी ख्याति के लिये, मौज के लिये। तो अब इन दोनों में ऐसा अन्तर समझ लीजिये कि आध्यात्मिक साधना के लिये तो इन ऋद्धियों का प्रकट होना ठीक है पर अपनी ख्याति आराम मौज आदि के लिये इन ऋद्धियों की प्राप्ति के लिये अपना यह दुर्लभ मानव जीवन खोना महा मूर्खता होगी।

तो इन ऋद्धियों को प्राप्त करके कोई उनका दुरुपयोग करे तो यह उसकी मूर्खता है। आध्यात्मिक साधना के लिये इन ऋद्धियों का प्रयोग करना बुद्धिमानी है।

बताया जाता है देखने में आता कि दीवारें भी बिजली की तरह करेंट मारती हैं कहीं तो यह भी देखने में आता कि कोई उसको करेंट मारते थे, यह हो भी तो सकता है चमत्कार तो ऐसे ऐसे हो गये कि कहो सबको अलग रखकर दिखायें, कहो आकाश में उड़कर दिखा दें मगर इन चमत्कारों का आध्यात्मिक साधना करने के बारे लिये कोई सम्बन्ध नहीं बल्कि इन चमत्कारों में जो उलझ जाता है वह बड़ा नुकसान आता है, वह फिर आगे बढ़ नहीं पाता, इसलिये जैन शासन में इन ऋद्धियों के बहुत-बहुत नाम तो दिखा कर आध्यात्मिक साधना की बात बताया, क्योंकि ये सब भौतिक चमत्कार हैं, उनका आध्यात्मिक साधना से कोई ताल्लुक नहीं।

अब आप फिर ऊर्जा की बात पर आ जाइये। यह ऊर्जा अंतिम छोर में है, यह ऊर्जा मानो अपना कुछ काम ही नहीं कर रहा, क्योंकि जिधर का ध्यान रहता है उधर का अंग काम करने लगता है, जिधर का ध्यान नहीं रहता वह काम नहीं करता। जैसे मीटर में बिजली का तार जब टूट जाता है तो मीटर अपना काम बन्द कर देता है और बिजली का तार जब जोड़कर ठीक कर दिया जाता है तो मीटर ज्यों का त्यों अपना काम करने लगता है ऐसे ही किसी ऋद्धिधारी के जब तक ऊर्जा नहीं जगी तब तक तो उसकी वासना सम्बन्धी इन्द्रियाँ दबी रहेंगी पर ऊर्जा के जग जाने पर वासना सम्बन्धी उसकी सारी इन्द्रियाँ उमड़ पड़ेंगी। इसलिये इन ऋद्धियों को पाकर उनका उपयोग आध्यात्मिक साधना के लिये करना बुद्धिमानी है।

आध्यात्मिक साधना के लिये ध्यान की अनेक विधियाँ बतायी। उन सब विधियों में अगर आप आज्ञाचक्र में ध्यान करते हैं तो थोड़ा मस्तिष्क में तनाव आता है, इसलिये कहा कि आप नाभि में ध्यान करो, नाभि में अपने उपयोग को एकाग्र करो। नाभि में एकाग्रता आने पर ऊर्जा ऊर्ध्वमुखी भी होती रहती है। जब सब ऊर्जा सहस्राधार में पहुँच जाये तो उसका नाम ब्रह्मचर्य कहलाता है।

जब कभी कोई व्यक्ति विषय सम्भोग करता है तो उसे सम्भोग करने से पूर्व वह वस्तु बड़ी आकर्षक प्रतीत होती है और जब वह सम्भोग कर चुकता है तो वही वस्तु उसे अरुचिकर प्रतीत होने लगती है, जो सम्भोग जवानी में अच्छे लगते हैं वे बुढ़ापे में अरुचिकर लगते हैं, उसमें कारण क्या है? तो कारण यही है कि बुढ़ापे मे ऊर्जा क्षीण हो जाती है ऊर्जा के क्षीण होने से सम्भोग वाली वस्तु मे उतना आकर्षण नही रहता।

आकर्षण वस्तु मे नही होता किन्तु वासना मे होता है, इसलिये ऐसा उपाय करें कि जिसमें वासना ही न पैदा हो।

देखिये ऊर्जा मे और वीर्य मे फर्क होता है। जिसमे ऊर्जा का अपमर्दन होता है उसे कहते हैं वीर्य जैसे आपने देखा भी होगा कि जिनकी ऊर्जा दबी हुई होती है ऐसे नग्न पुरुषो के समक्ष कोई भी पहुचे पर उन्हें देखकर उनमें विकार नही पैदा होता उन्हे वासना सम्बन्धी सारी बातें फीकी लगती है।

मान लो कोई ब्रह्मचर्य का नियम ले ले तो अब उसे वासना सम्बन्धी बातो मे आकर्षण नही होता। वह बड़े व्रत तप उपवास आदि करके रह रहा, सब लोग उसे ब्रह्मचारी समझ रहे परन्तु उसे कभी जरा सी शक्ति मिले उसमें ऊर्जा बढे तो उसमे अब्रह्म की भावना पैदा हो सकती है। इसीलिये कह रहे कि ध्यान के मार्ग मे बढने के लिये अपनी नाभि पर ख्याल करो। तो नाभिको सिर्फ देखना है। इस साधना की बात बता रही भगवान की नासाग्रदृष्टि।

भगवान की प्रतिमा देख लीजिये, उसमे नासाग्र दृष्टि है। नासाग्र दृष्टि का अर्थ है अपने उपयोग का नाभि पर केन्द्रित हो जाना। सिर्फ ख्याल करना और विचार न करना, देखिये ख्याल और विचार मे अन्तर है। जिसके सिर मे दर्द न हो वह दूसरे के दर्द का विचार कर सकता है ख्याल नही और जिसके सिर दर्द है वह उस दर्द का ख्याल कर सकता है, उसे महसूस कर सकता है। विचार मन से होता है और ख्याल मन को पैदा करता है। तो ख्याल और मन मे फर्क है।

बहुत से लोग नाभि पर भी चन्दन लगाते हैं तो उसमे बात क्या है?

है। कुछ ध्यान के बादल आये, बरसे और उस सब धूल को धो दिया। अब
हाँ कुछ नहीं रह गया, सिर्फ चेतना रह गयी।

ध्यानार्थी इस प्रकार की एक रूप रेखा बता दी गई। अब इसके आगे क्या
वह साधक वही पिक्चर देखता रहे ? अरे अब वह उस सारे पिक्चर को भी
विदा कर दे, बिल्कुल एकाग्र हो जाय और मन भी रुक जाय, बाद मे उसे भी
विदा करदे, यह विधि ध्यान करने की बतायी है।

आपने अनुभव करके देखा होगा कि जब कभी आप कुछ ध्यान करने
बैठते है तो बीच-बीच आप के मन मे घर की दूकान की या अन्य-अन्य कितनी
ही बातें ध्यान मे आती रहती है, अब वे कोई बातें ध्यान मे न आयें इसके लिए
सबसे पहले पिण्डस्थ ध्यान बताया है।

ध्यान करने की दूसरी विधि पदस्थ ध्यान बतायी है। पद अर्थात् मन्त्र।
मन्त्र का अर्थ यह नही कि जप करो। जप मे मन काम करता है। विचार
कार्य करता है। जप मे ध्यान की बात है। कहा गया है कि एक कल्पना करो
कि नाभि पर एक कमल है और उसमे अष्टदल है। सहस्त्रदल की भी कल्पना
कर सकते। आखिर कल्पना ही तो करनी पडती है। कोई अष्टदल वाले कमल
की कल्पना करता कोई चार दल वाले कमल की तो कोई १६ दल वाले कमल की
कल्पना करता जो जितने दल वाले कमल की कल्पना करता वह उतने अक्षर
उसमे स्थापित करता, जैसे चार दल वाले मे अ र ह त ये चार अक्षर स्थापित
करता, अष्टदल वाले मे अ सि आ उ सा ऊँ, ह्री आदिक अक्षरो को स्थापित
करता, १६ दल वाले कमल मे अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधु ये १६
अक्षर स्थापित करता। और ३५ अक्षर का पूर्ण नमोकार मन्त्र कहा। सो कोई
भी आप कल्पना कर सकते और उसका ख्याल कर सकते। और यदि आप यह
ध्यान नही करना चाहते, इसको करने मे कुछ कठिन लगती हो तो तीसरा कहा
है रूपस्थ ध्यान।

इस ध्यान मे अरहन्त सिद्ध भगवान की प्रतिमा है उसका ख्याल भर करना
है। उनकी नाभि पर पंच परमेष्ठियो मे किसी की भी आप कल्पना करलें। ये
सब कल्पनायें करने के लिए आप नाभि पर कल्पना करें। इसके लिए पहले
आप को बाहरी अभ्यास करना होगा। बाहर मे जो अरहन्त भगवान की मूर्ति
है उसमे कुछ मिनट आप टकटकी लगाकर देखने लगें, उनकी स्तुति न करें
विचार न करें, सिर्फ देखते भर रहे तो यह भी विचारों को रोकने की ए

[illegible]

एक बार वही (अकम्पन) आचार्य मुनिसंघ विहार करता हुआ हस्तिनापुर नगरी पहुँचा। उस मुनिसंघ को देखकर मन्त्री बलि को क्रोध आया और उस मुनिसंघ पर उपद्रव करने का मन में ठान लिया। पहले राजा पद्मराय से निवेदन किया कि मेरा जो वचन आपके पास है वह दे दिजिये। राजा पद्मराय ने कहा—बलि जो क्या मांगते हो ? तो बलि बोला मुझे सिर्फ ७ दिन का राज्य चाहिये। तो राजा पद्मराय ने अपना वचन पूरा किया।

अब ७ दिन का राज्य पाकर राजा बलि ने क्या किया कि उस मुनि संघ के चारों ओर घास फूस कचरा लकड़ी इकट्ठा किया। गुरु अकम्पनाचार्य सब समझ गए कि इस मुनिसंघ पर कोई उपसर्ग होने वाला है तो क्या किया कि सारे संघ को कायोत्सर्ग करके बैठने का आदेश दे दिया। वहाँ सभी शिष्य ध्यानस्थ हो गए, साम्य भाव धारण करके बैठ गये। उधर राजा बलि ने चारों ओर से मुनिसंघ पर आग लगवा दी। यह सब घोर हिंसात्मक दृश्य देखकर सारे नगर में बड़ा शोक छा गया।

उधर मिथला नगरी में एक आचार्य ध्यान कर रहे थे। ध्यान करते हुए उन्होंने क्या देखा कि श्रवण नक्षत्र बहुत जोर से कांप रहा था। उसे कांपता हुआ देखकर वे घबड़ा गए। और उन्होंने अपने ज्ञाननेत्र से (अवधि ज्ञान से) देखा कि हस्तिनापुर के अन्दर मुनि संघ पर घोर उपसर्ग आ गया है, तो उस समय के आचार्य देव सहसा चीख पड़े। बोले—अहो बचाओ। पास उनके शिष्य पुष्पदन्त बैठे हुए थे वे भी आचार्य देव की चीख सुनकर घबड़ा गए और पूछ बैठे—महाराज आपको चीख आने का कारण क्या है ? तो आचार्य देव ने बताया कि इस समय हस्तिनापुर नगरी में मुनिसंघ पर घोर [illegible] (उपसर्ग) आया हुआ है, वहाँ मुनियों को अग्नि में होमा जा रहा है। फिर शिष्य ने पूछा—महाराज क्या उन्हें बचाने का कोई उपाय भी है ?

तो मुनिराज बोले—हाँ उपाय है और तुम यह कार्य कर भी सकते हो। शिष्य ने पूछा कैसे ? तो बताया कि तुम्हारे मे आकाश मे उड़ने की क्षमता पैदा हुई है, आकाश मार्ग से उड़कर वहाँ पहुंचकर तुम यह काम कर सकते हो। तो शिष्य ने पूछा—बोलो कहाँ जाऊं, किसके पास जाऊं और कैसे इस घोर उपसर्ग को बचाऊं ? तो आचार्य देव ने बताया कि अमुक जगह विष्णुकुमार मुनि रहते हैं, उनको विक्रिया ऋद्धि हुई है, वे अपने शरीर को छोटा बड़ा बना सकते हैं। उनके पास पहुंचकर सारा हाल बताओ। वही यह काम कर सकते हैं। आखिर वह शिष्य विष्णुकुमार मुनि के पास पहुंचा और सारा हाल कह सुनाया।

उधर विष्णुकुमार मुनि को विक्रिया ऋद्धि सिद्ध थी मगर उन्हे इसका भी पता न था। आखिर उन्होंने जब अपना हाथ उठाया तो वह सागर तक फैल गया। समझ गए कि वास्तव मे हमे विक्रिया ऋद्धि सिद्धि है।

अपना बावना रूप धारण कर विष्णुकुमार मुनि शीघ्र ही हस्तिनापुर नगरी पहुंचे। उस समय राजा बलि खुशी खुशी मे किमिच्छक दान दे रहा था। जब विष्णुकुमार मुनि बावने रूप मे पहुंचे तो राजा बलि ने उनका बड़ा स्वागत किया और कहा माँगो क्या माँगते हो ? तो विष्णु कुमार ने पूछा—क्या मैं जो चाहूं सो आप दे सकते हो ? तो राजा बलि ने कहा हाँ तुम जो माँगोगे सो मैं दे दूंगा। वह जानता था कि कोई आखिर माँगेगा तो सारा राज्य तक माँग सकता है, इससे अधिक क्या माँगेगा सो वह शान से बोला—हाँ तुम जो चाहो माँग सकते हो। आखिर तीन बार संकल्प करवाकर विष्णु कुमार बोले—मुझे तीन कदम भूमि चाहिए। तो यह बात सुनकर राजा बलि हँस पडा और बोला—अरे यह क्या छोटी सी चीज माँग रहे ? एक तो तुम वैसे ही बावने शरीर के दूसरे तुम अपने ही पैरों से नापकर तीन कदम भूमि माँग रहे तो यह तो तुम बहुत छोटी चीज माँग रहे। तो विष्णु कुमार बोले—नहीं नहीं मुझे इससे अधिक आप से कुछ न चाहिए। तो राजा बलि ने कहा—अच्छा तुम जहाँ चाहो नाप लो तीन कदम भूमि। तो वहाँ विष्णु कुमार मुनि ने क्या किया कि विक्रिया ऋद्धि से अपना शरीर बहुत लम्बा बना दिया और अपने पैर से एक कदम मे पूरा अधोलोक नाप लिया, दूसरे कदम मे पूरा मध्य लोक नाप लिया, अब तीसरा कदम रखने को उन्हें जगह ही न मिली। यह सब दृश्य देखकर राजा बलि के होश उड गये, सारा अभिमान चूर हो गया,

उसका मान गल गया और घबड़ाकर बोला—अब तो मेरे पास सिर्फ मेरी पीठ बची है, इसी पर अपना तीसरा कदम नाप लो। तो ज्यों ही विष्णुकुमार ने राजा बलि की पीठ पर पैर रखा नापने के लिये त्यों ही उसका होश-हवास ठिकाने हो गया। उसका अहंकार चूर हो गया और राजा बलि ने विष्णुकुमार मुनि से क्षमा मांगी और मुनिसंघ पर किए गए उपद्रव को दूर किया।

अब उपसर्ग तो दूर हो गया मगर उस समय उन साधुओं के कण्ठ झुलस गये थे। सबने भक्तिभाव से उन सारे साधुओं को आहार दान दिया। लेकिन वह आहार कैसा होना चाहिये था? इस पर भी तो विचार करो। क्या उन्हें नमक मिरच की बनी पकौड़ी खिलाना ठीक था? अरे वे तो उन झुलसे हुए कंठों को और भी जला देते। इसलिये उनको उस समय सिवइयाँ खिलाई गईं। तभी तो इस पर्व में सिवइयाँ बनाने की प्रथा चली।

उन सिवइयों का उपयोगी आहार पाकर उन सब साधुओं ने एक नया जीवन पाया। उसके बाद बहुत से भक्तजन जो बच गए वे आचार्य के पास गए और आचार्य देव ने वहाँ सबसे कहा कि तुम लोग जिस भाव से गये थे वह पूरा हुआ। अब तुम लोग अपने अपने घरों में भी साधुओं के लिए उपयोगी भोजन बनावो, पवित्र भावना से उन्हें भोजन करावो और स्वयं भी करो। ऐसी भावना से तुम भगवान का भी भोग लगा सकते। इस प्रकार यह सब उन साधुवों के उपसर्ग की, उनकी सरलता की और उनके ज्ञान की एक शृंखला चली।

अब आजके दिन हम इसका स्मरण करके अपने अन्दर के द्वेषभाव को निकाल दें, कम से कम इतना तो संकल्प करें। अब आज के बाद भादो का महीना आ रहा है कम से कम इस भादो के महीने भर के लिये ही एक इस नियम का सकल्प कर लें कि हमे किसी से द्वेष नहीं करना है, मन से, वचन से, काय से यह द्वेषभाव दूर करने का एक दृढ़ सकल्प कर लें। इन्हे तीन कच्चे धागे समझकर बाँध लीजिये।

———

'छुवो मत, देखो'

एक रमण महा ऋषि हुए, जिन्होंने शास्त्रीय ज्ञान से प्रेम नहीं किया। १६ वर्ष की अवस्था में घर छोड़कर चल दिए। बस चिन्तन ही उनका एक सहारा था, और कोई विशेष अध्ययन उनको न था। और वह चिन्तन भी कैसा ? खुली आँखों से देखना। उनकी विचारधारा सिर्फ एक बात की रही कि जिस शरीर को हम देखते हैं, जिसको अपना मानते हैं वह शरीर देखते देखते ही छूट जाता है, सो यह दिखने वाला शरीर मैं नहीं हूं। जन्म से पहले भी यह शरीर मेरा न था और मृत्यु के बाद भी यह शरीर मेरा नहीं रहता।

तो यह शरीर मैं नहीं हूं एक बात। दूसरी बात क्या है कि जब मेरा ध्यान किसी दूसरी ओर होता है तो शरीर का बोध वहाँ नहीं रहता। जैसे किसी दूकान के काम मे या आफिस के काम में लगे हों तो उस समय उस काम मे इतनी तल्लीनता (एकाग्रता) होती है कि वहाँ फिर अपने शरीर तक का भी कुछ ख्याल नहीं रहता है। यह एकाग्रता की बात है।

देखते ही हैं कि जब कोई ड्राइवर गाड़ी चलाता है तो वह बीच-बीच में लोगों से बातें भी करता जाता है फिर भी वह इतना सजग रहता है कि उसकी आँखें, उसका दिमाग, उसकी निगाह सड़क पर रहती है। यदि वह सजग न रहे, जरा भी चूक जाय तो एक्सीडेण्ट हो सकता है। उस ड्राइवर मे इतनी सजगता रहती है, दिल दिमाग की इतनी एकाग्रता रहती है कि उसे शरीर तक का भी बोध नहीं रहता।

कोई किसी कला मे व्यस्त हो तो उसे अपने पेट मे लगी हुई भूख तक का भी ख्याल नहीं करता। कोई बच्चा जब किसी खेल में मस्त हो जाता है तो उसके चोट लग जाये, खून भी आ जाय फिर भी उसका पता नहीं पडता। क्यों पता नहीं पडता ? इसलिये कि उसका उपयोग दूसरी ओर लगा है। कितने ही लोग तो ऐसे भी होते हैं जिनके शरीर की हड्डी तक टूट जाती है फिर भी उन्हे उसका कुछ ख्याल नहीं रहता। यह मन के उपयोग की ही

तो बात है। और उपयोग दूसरी तरफ होना वह सकल्प पर आधारित है।

जैसे कि जब कभी आपके पास दूकान पर खूब ग्राहक होते हैं, दूकान अच्छी चलती है तो उस समय आपको भूख, प्यास, सर्दी-गर्मी का कुछ ख्याल नहीं रहता। तो यह शरीर मैं नही हू। अगर यह शरीर मैं होता तो सारी घटनाओं के बीच भी इस शरीर का बराबर ध्यान रहता। पर ऐसा तो नहीं होता, इसलिये समझ मे आया कि यह शरीर मैं नहीं हूं।

इस शरीर के बाद नम्बर आता है विचार का। लोग कहते हैं कि जब कोई घटनायें आती हैं तो उस समय मेरे मन मे बडे बडे विचार उठते हैं, मन मे चिन्तन होता है, कुछ सुख दुख का अनुभव होता है, क्योंकि जब मन लग जाता है तो उसका रस आने लगता है। यह मन अगर भगवान की भक्ति मे लगता है तो भक्ति का रस आता है, दूकान धन्धे मे लगे तो दूकान धन्धे का रस आता है, पेंटिंग मे लगे तो पेंटिंग का रस आता है।

ये सब चिन्तन उन ऋषि को आये। यह सब सोचकर उन्होंने कहा कि मैं वह हो सकता हू जो कभी मेरे से विदा न हो। जो विदा हो सके वह मैं नहीं हूं। जैसे मन मे क्रोध आता है तो बताओ उस क्रोध से पहले भी मैं था कि नहीं था ? क्रोध से पहले भी मैं था और जब क्रोध आया तब भी मैं था और जब क्रोध चला गया तब भी मैं था। इन तीनों अवस्थाओ से पहले मैं कोई और था।

यह क्रोध और कोई चीज है और मैं कोई और चीज हू। तो पहले की मान्यता कह रही कि जो याद आता है, मन मे जो विचार उठते हैं वह भी मैं नहीं हू। मन का काम क्या है ? मन का काम है भाव और विचार करना। राग द्वेषादिक भाव और प्रेम स्नेह श्रद्धा आस्तिक भाव ये सब किसके है ? मन में जो विचार उठते हैं कि ये मेरे अमुक हैं—ये अमुक है, सो ये आने वाले विचार पैदा भी होते है और नष्ट भी हो जाते हैं। विचार भी ऐसे हैं कि जैसे सागर मे लहरें पैदा होती है, जिस सागर मे लहर पैदा हुई उसी मे विलीन हो जाती है। वह सागर पहले भी था, जब लहर पैदा हुई तब भी था और लहर विलीन हो गई फिर भी सागर वहीं का वहीं है। तो ऐसे ही मन मे कोई विचार पैदा हुआ और फिर नष्ट हो गया, तो वह विचार कोई स्थाई चीज तो नहीं रहा। तब फिर मैं ये विचार भी नहीं हू, शरीर भी नहीं हू फिर मैं क्या हू ?

जैसे समुद्र में जो लहरें पैदा होती हैं वे समुद्र की छाती में ही पैदा होती हैं, समुद्र के भीतर ही पैदा होती हैं और वह समुद्र तो बिल्कुल शान्त होता है ऐसे ही ये विचार विकल्प इस चेतना की छाती के ऊपर ही पैदा होते हैं। इस चेतना में ही मन की ये लहरें पैदा होती हैं, फिर भी वह चेतना भीतर में बिल्कुल शान्त है।

एक विचार से दूसरे विचार को जोड़ने वाला जो सूत्र है, जो पहले को भी जानता है, अब को भी जानता है, वह कौन है? स्थायित्व, उसमें कोई हलचल नहीं, वह मैं हूं। जैसे ऊपर से किसी चीज का छिलका उतार दिया जाता है मानो प्याज है और उसके ऊपर से सब छिलके उतारते जायें, एक छिलका उतरा, फिर दूसरा उतरा, फिर तीसरा तो बाद में क्या बचेगा? शून्य। तो वह शून्य एक विदात्मक है, शान्त है, ऐसे ही शरीर, वचन और मन के ऊपरी छिलके उतारते जायें तो अब बाद में क्या बचेगा? जो बचेगा उसके बताने की भी कोई जरूरत नहीं होती। लेकिन जैसे हम इन भावनाओं से जुड़े रहते हैं कि यह शरीर मैं हूं ऐसी ही भावनायें उस मन में भी जुड़ गईं। सभी कहते हैं कि मेरे मन में इस प्रकार का विचार है, जैसा कि विचार अपने मन में धना बैठते हैं वैसा विचार सभी कहते हैं। आप लोग स्वयं वे विचार बन बैठते हैं।

आप रात को जो स्वप्न देखते हैं उन स्वप्न में भी पूरा पिक्चर सामने आ जाता है। आज के जमाने में तो उन स्वप्न में देखे गये पिक्चर को भी टेलीविजन से दिखा सकते हैं। जब किसी को स्वप्न आता है तो उसकी आंखों की पुतलियाँ थोड़ा ऊपर नीचे चलती हैं और यदि स्वप्न नहीं देख रहा तो उसकी पुतलियाँ शान्त हो जाती हैं। जब वह स्वप्न देख रहा हो उस समय यदि कोई टेलीविजन का यन्त्र उसके सिर के ऊपर लगा दिया जाये तो वह स्वप्न के सारे पिक्चर को खींचकर दिखा सकता है। क्योंकि टेलीविजन में जो पिक्चर आते हैं वह एक तरंग ही तो आती है।

तो आप स्वप्न के अन्दर केवल उस पिक्चर को देखते हैं लेकिन आश्चर्य की बात यह है कि जब आप स्वप्न में कोई पिक्चर देखते हैं तो उसमें आप सम्मिलित हो जाते हैं। अरे वहाँ स्वप्न में सम्मिलित होने की क्या जरूरत? सिर्फ पिक्चर देखते भी रहो। लेकिन ऐसा हो कहाँ पाता है?

एक बार राजा जनक ने एक स्वप्न में देखा था कि वे अपने आराम के

कमरे मे सो रहे थे। सोते हुये मे उन्हे स्वप्न आया कि मेरे किसी शत्रु ने अचानक ही मुझ पर चढ़ाई कर दी। राजा जनक हार गए सो अपने प्राण बचाने के लिये वहाँ से भागकर एक जगल मे पहुँच गये। यह ऐसा भयानक जगल था कि जिसके बीच क्षुधा तृषा मिटाने का भी कोई साधन नहीं था। ऐसे भयानक जगल मे वे बहुत घबडाये, भूखे प्यासे रहते हुये कई दिन व्यतीत हो गये।

(देखिये—ये सब स्वप्न की बातें कहीं जा रही हैं) राजा जनक पड़े तो थे अपने आराम के कमरे मे। वहाँ सब प्रकार के आराम के साधन थे, कोई बात का कष्ट न था पर राजा जनक उस स्वप्न के आ जाने पर बहुत दुखी हो रहे थे। क्यों दुःखी हो रहे थे? इसलिये कि वे उस स्वप्न मे सम्मिलित हो गये। यदि मात्र उसे एक चित्तर सा समझते तो वहाँ दुःख किस बात का था? आखिर पड़े तो आराम के कमरे मे थे ना? अच्छा अब आगे स्वप्न की बात फिर सुनिये—राजा जनक भूख प्यास से पीड़ित होकर उस जगल मे से निकल कर किसी गाँव की ओर जा रहे थे। उनके शरीर मे उस समय राजसी वस्त्र भी नहीं थे। शरीर से खूब पसीना बह रहा था, बड़े घबडाये हुये से थे, थक गये थे। चलते हुये मे उन्हें कोई एक गाव मिला। वहां पहुच कर उन्हे कुछ प्राण बचने की आशा की किरण दिखाई दी।

(यह सब उस स्वप्न की चर्चा चल रही है) राजा जनक ने देखा कि एक जगह कोई व्यक्ति खिचडी पका रहा था सो क्षुधा मिटाने की आशा से उसके निकट पहुचे। उस व्यक्ति ने राजा जनक के चेहरे को देखकर समझ लिया कि यह व्यक्ति इस समय क्षुधा से बहुत पीड़ित है। पर वह क्या करे उसके पास सिर्फ शेष बची हुई जली खिचडी का खरोचन बच रहा था, बाकी खिचडी समाप्त हो गई थी। सो राजा जनक ने अपनी क्षुधा मिटाने के लिये उसे लेने के लिये हाथ फैलाया। उधर देने वाला बड़ा निराश हुआ कि इस बेचारे को अब मैं कैसे भर पेट खिलाऊँ क्योंकि अब कुछ बचा ही नहीं। उधर राजा जनक आठ दिन के भूखे थे। उनको इतनी तेज भूख थी कि उसे ही पाकर वे बड़े खुश हो रहे थे। आखिर खुद के प्राणों की रक्षा का वहाँ सवाल था।

राजा जनक ने ज्यों ही उस खिचडी के खरोचन को अपने हाथ मे लिया और खाना चाहा त्यो ही एक घटना फिर ऐसी सामने घट गई कि वे उसे

खाने से वंचित रहे। क्या घटना घटी कि सहसा ही दो बैल आपस में झगड़ते हुये वहाँ आ गये और फिर उन दोनों बैलों ने राजा जनक की ओर अपनी सींगों को मारा। उस समय राजा जनक और भी घबड़ाये। घबड़ाये हुये तो पहले से ही थे, पर उस समय और भी घबड़ा गये।

देखिये जब किसी व्यक्ति को कोई भय हो जाता है तो फिर उसे बुरी ही बात दिखाई देती है। जैसे किसी घर का कोई आदमी परदेश गया हुआ हो और उसने घर आने का समय दे रखा हो और उसके घर पहुचने में कुछ विलम्ब हो जाये तो उसके माता पिता शका करने लगते है कि पता नहीं कहीं एक्सीडेन्ट तो नहीं हो गया। और ऐक्सीडेन्ट की भी बात क्या, मानों हो ही गया हो, सामने सामने खूब खून बह रहा हो, ऐसा भय उन माता पिता को हो जाता है। भय हो जाने पर सबको ऐसा ही दिखता है।

तो राजा जनक ने स्वप्न मे जब दो झगड़ते हुये बैलो को सामने देखा तो वे और भी घबडा गये। उनके हाथ से वह खिचड़ी छूटकर नाली मे गिर गई और वे एक चबूतरे के नीचे घुसने लगे। इस घटना के समय तो वे घबडा कर चौंक पड़े और उसी प्रसंग मे उनकी नींद भी खुल गई, उस स्वप्न का भग हो गया। स्वप्न भग होने पर राजा जनक ने देखा कि वहाँ कहीं कुछ न था। वे सब स्वप्न की बातें थीं पर उस समय वे बड़े विचार मे पड गये और सोचने लगे कि पता नही, वह स्वप्न की बात सच थी या यह सच है जो अब स्वप्न के बाद दिख रही है।

आखिर उन्होंने बड़े-बड़े विद्वानों को बुलवाकर उस मन मे उठे हुये प्रश्न का निर्णय कराया। निर्णय ठीक न होने पर सबको जेल मे डलवा दिया। सिर्फ एक बचे अष्टावक्र। अष्टावक्र ने बताया कि न तो वह सच है और न यह सच है। सामने जो कुछ स्वप्न मे देखा था वह भी सच नहीं और जो कुछ अब स्वप्न के बाद दीख रहा यह भी सच नहीं। वह भी जड था और यह भी जड है। फिर अष्टावक्र ने बताया कि तुम जिसमे अपना तादात्म्य बना लेते हो उसे सच मानते हो, और फिर दूसरा सामने आ जाता तो असमजस मे पड जाते। तो वास्तव मे सच दोनों ही नहीं।

स्वप्न अनेकों आते हैं, पर उन सबको जोड़ने वाला एक ही है, दो नही जब हम उस स्वप्न के साथ जुड जाते हैं, उसमे तादात्म्य हो जाते हैं तो सुख दुःख का अनुभव करते हैं। लेकिन जब उससे तादात्म्य टूट जाता है तो हम

गधे के सींग तो नहीं होते पर यह भी विचार बना डालते कि मैं गधा जैसा बन गया और मेरे दो सींग लगे हैं। दुनिया में गधे भी होते और सींग भी होते। तो कल्पना से गधे के सींग भी देख सकते। कल्पना में ऊट-पटांग भी देख सकते। आप कह सकते कि हमने तो ऐसा गधा आंखों से नहीं देखा जिसके सींग लगे हों लेकिन कल्पना में तो इसे जोड़ा जा सकता है, कल्पना में जिस चाहे के ये सींग जोड़े जा सकते हैं। और कभी ऐसा भी देखा होगा कि कोई आदमी गधे की तरह हाथ नीचे रखकर चल रहा तो वहाँ आपने शक्ल तो आदमी की देखी और चलना फिरना गधे जैसा देखा, आखिर कल्पना की ही तो बात है।

काल्पनिक चित्रों को भी बनाया जा सकता है, धड़ तो हो आदमी की तरह और उसका मुख हो गधे की तरह, शेर की तरह हो ऐसे भी चित्र तो बनाये जा सकते हैं। जिसे आपने दुनिया में आंखों देखा हो उसे आप स्वप्न में अन्यथा भी तो देख सकते। स्वप्न में तो आप ऐसा भी देख सकते कि ताजमहल आपके सिर पर ही बना हो। दुनिया में तो नहीं मिलेगा कोई ऐसा ताजमहल जो आदमी के सिर पर बना हो, लेकिन दुनिया में चूंकि ताजमहल भी है और आदमी भी है तो कल्पना से इन दोनों को जोड़ा जा सकता है। इसे नयकी दृष्टि से कहा है नैगमनय, याने जो नहीं है उसकी भी कल्पना की जा सकती है। संसार में गधे की सींग वाले आदमी न मिलेंगे लेकिन ज्ञान में हो सकते है, तो ज्ञान तो बहुत व्यापक है और यह संसार बहुत छोटा है।

यहाँ यह बताया जा रहा था कि हम कभी खाली नहीं बैठते, कहीं दो चार आदमी बैठते हैं तो वे अपनी और तरह की चर्चा करते हैं और जब कभी कुछ महिलायें बैठती हैं तो वे और तरह की चर्चा करती हैं। कहीं पूछती है कि इस बहू की सास इसे पूछती है कि नहीं, यह बहू अपने मायके से कुछ लेकर आयी थी कि नहीं, यो कहीं कुछ चर्चा करेंगी कहीं कुछ। खाने-पीने के सम्बन्ध की भी तमाम चर्चायें करती हैं, पुरुष लोग जब कोई चर्चा करते तो व्यापार धन्धा, खेती-बाड़ी आदिक की खूब चर्चा करते।

तो यह सब व्यर्थ का कबाड़ा आपके मस्तिष्क में भरा हुआ है। आखिर यह कबाड़ा (गन्दगी) ही तो है, मलिनता ही तो है, और कुछ नहीं, ये सब इधर-उधर की बातें हैं जिनसे हमारा कुछ प्रयोजन नहीं, ये सब बातें आपके पेट में पचती नहीं, तभी तो किसी से जाकर कहते देखो किसी की लड़की भाग

गई, किसी का अमुक हो गया······यों एक बड़ी बेचैनी बढ़ जाती तो आप चुप नहीं बैठ सकते।

एक बात और है, आप से अगर कहा जाय कि अमुक व्यक्ति बड़ा सज्जन है, दयालु है, दानी है तो उसे सुनकर आप अपने मन मे यही कहेंगे कि होगा दानी। हमने ऐसे दानी बहुत देख लिये और अगर कहा जाय अमुक बहुत शराबी है तो फिर उसके प्रति आपको कोई खोज करने की आवश्यकता नही रहती, आप सोच लेते कि हाँ ऐसा जरूर होगा। वहाँ एकदम मान लेंगे और अगर कोई सज्जन है तो उसे हम मानते नही हैं, उसे खोजना चाहते हैं कि होगा। कहा है और कहा होगा, इतना बड़ा फर्क समझते हैं।

आजकल के जमाने मे भी कितने ही लोग सज्जन हैं पर अहङ्कारवश उन्हें कोई सज्जन नहीं स्वीकार करता, उन्हें अच्छा नही देखना चाहते, बल्कि ऐसी टोहमे रहते हैं कि यह मेरे सामने लोगो की निगाह मे नीचा दिखाई दे। सज्जन पुरुषों के प्रति भी हम वैसा ही समझ लेते हैं जैसे कि दुर्जन। पर बात यह है कि जो कुछ उस सज्जन के प्रति सुना वह भी गलत होता है और जो कुछ उनमें आखो देखा हो वह भी गलत हो सकता है।

कोई एक नवयुवक किसी नदी के किनारे रेत मे लेटा हुआ था, उसके हाथ मे एक बोतल थी, और पास ही एक स्त्री लेटी थी, तो वह नवयुवक उस बोतल को कभी अपने मुख मे लगाता और कभी उस स्त्री के मुख मे, इतने मे ही उधर से कोई महात्मा जा रहे थे उन्होंने वह दृश्य देखा, उस दृश्य को देखकर सोचने लगे कि देखो यह जिन्दगी भी क्या जिन्दगी है, यह पुरुष खूब शराब पी रहा और इस स्त्री को भी पिला रहा दुराचार करने के लिये।

इतने मे क्या हुआ कि पास ही जो नदी बह रही थी उसमे एक नाव चल रही थी। उस नाव मे १० आदमी बैठे हुए थे। और उनके देखते-देखते ही वह नाव डूबने लगी। अब उस नाव को डूबने देखकर वह नवयुवक शीघ्र ही उठा और उस नाव में से ६ आदमियों को अपनी बुद्धिबल से बचा लिया। बाद मे वह पुरुष उस महात्मा से बोला भाई आप तो धर्मात्मा है, अब उस १० वें व्यक्ति को आप बचालो। तो वह महात्मा उस १० वें व्यक्ति को बचा न सके। उस पुरुष का मुह ताकते रह गये। उस पुरुष ने उस नदी मे घुसकर उस १०वें व्यक्ति को भी डूबने से बचा लिया।

अन्त में उस युवक ने महात्मा से कहा क्या आप नहीं जानते कि इस बोतल में क्या था ? मैंने इसमें था इस नदी का जल और गंगा में जो कभी नहीं भी कर देती थी । यह स्मरण से नहीं रहते भी गये मैं उसे नाली दिखा रहा था, उसकी बात सुनकर महात्मा बड़े लज्जित हुए ।

तो आँखों देखी बात भी गलत हो सकती है, लेकिन हमारे मन में इतना अहंकार है कि हम किसी की भलाई नहीं देखना चाहते, बल्कि उसके बुराई देखना चाहते हैं । ऐसे गन्दे विचार हमारे भीतर क्यों आ गये ? अहंकार से ।

जिस चीज की आदमी में कमी होती है वही वह दूसरे में देखता है, एक बच्चा किसी स्त्री को देखकर उसे बुरी निगाह से नहीं देखता पर जिसके मन में वासना होती वह जरूर बुरी दृष्टि से देखेगा । जिसकी जैसी दृष्टि होती है वैसी ही सृष्टि दिखती है, हमारी दृष्टि विशुद्ध हो तो हमें सर्वत्र विशुद्ध दिखाई देता है । चोर को सब जगह चोर ही दिखाई देते हैं ।

तो हमारी जिन्दगी में यह हो रहा है कि हम रात दिन अहंकार में रहकर विचारों के मन्थन करते हैं और उन विचारों में किसी आदमी के सम्बन्ध में अगर कोई बुराई हो तो वह दुनिया में ढिंढोरा पीटता है और भलाई हो तो उसकी बात भी नहीं करते । उसकी बात तो भूल भी जाते हैं, ख्याल में भी नहीं आता कि किसकी क्या प्रशंसा की बात कही थी ।

आज इस प्रकार से मैं यह बताना चाहती हूँ कि हमारे मन में जो वि संग्रह करने की प्रवृत्ति है वह हमारे मन में एक बोझ है । और यह ऐसा है कि जैसे सूर्य पर कोहरा छाया हो तो निकलता हुआ प्रात कालीन दिखाई नहीं देता ऐसे ही इन विचारों के बोझ से, विचारों के कोहरे से ह आत्मा दिखाई नहीं पड़ता । सिर्फ हम उसका अनुभव करते हैं । तो विचारों के कोहरे को हमें हटाना है । इन विचारों को जब हम जानते तन्मय होकर जानते हैं । ये विचार ये विकल्प मेरे ज्ञान में प्रतिबिम्बित हैं लेकिन ये विचार मैं नहीं हूँ ।

देखिये एक दर्पण हो तो उसके ऊपर पड़ने वाले मोर के प्रतिबिम्ब हम दो ढंगों से देख सकते हैं । एक तो यह कि उस दर्पण में हम मोर को लें और एक यह कि दर्पण को छोड़कर हम सिर्फ मोर को देख लें । दर्पण में देखेंगे तो मोर को देखेंगे तो केवल मोर दिखाई देगा । यह ठीक है ना ? मोर को देखने पर ध्यान चूँकि उस मोर पर है तो केवल

दिखाई देगा और अगर ध्यान दर्पण पर है तो दर्पण और मोर दोनो दिखाई गे। दर्पण प्रत्यक्ष दिखाई देगा और मोर गौण रूप से। ठीक ऐसे ही जब हम किसी दर्पण के अन्दर अपना चेहरा देखते हैं। तो वहाँ दर्पण देखते हुये भी दिखता नही है किन्तु चेहरे की आकृति दिख जाती है और जब सिर्फ दर्पण को देखा तो वहाँ अपनी आकृति गौण हो जाती है और दर्पण दिखता है।

जब कोई महिला दर्पण खरीदने बाजार जाती है अपने छोटे-छोटे बच्चों को लेकर तो वहाँ वह महिला उस दर्पण की स्वच्छता देखती है, उसकी लम्बाई चौड़ाई देखती है, पर कोई बच्चा उस दर्पण को देखता है तो वह उसमे प्रतिबिम्बित होने वाले मोटर, ताँगा, रिक्शा वगैरह के चित्रण देखता है। उनको देखकर वह बच्चा बडा खुश होता है और अपनी माँ से कहता है कि माँ मुझे भी ये मोटर, हाथी घोडा आदिक खिलौने खरीद दो। यदि वह माँ उस दर्पण मे प्रतिबिम्बित होने वाली चीजें नही खरीदती तो वह बच्चा बड़ा दुखी होता है।

तो यह ही बात यहाँ है। हमारा ज्ञान भी एक दर्पण की तरह है, उस ज्ञान दर्पण मे ससार के विकल्प, विचार, पदार्थ आदिक के प्रतिबिम्ब पड़ते हैं। तो इसके देखने की दो विधियाँ हैं। या तो देखें कि मैं ज्ञान रूप हूँ और ज्ञान मे प्रतिबिम्ब आता है तो ज्ञान प्रमुख हो जायगा और ज्ञेय गौण हो जायगा। या तो पदार्थ को देखें तो पदार्थ मुख्य हो जायगा और ज्ञान गौण हो जायगा। पदार्थ को देखेंगे तो आयेंगे रागद्वेष और ज्ञान को (दर्पण को) देखेंगे तो उसमे स्वच्छता आयगी। ये दो विधियाँ हैं। तो ऐसे ही ज्ञान मे अगर हम अपने ज्ञेय को, विचार को, विकल्प को देखते हैं तो उसके साथ रागद्वेष होते हैं और अगर हम ज्ञान को देखते है तो सिर्फ ज्ञान होता है।

रागद्वेष पदार्थ के साथ नहीं होते और पदार्थ के साथ अगर रागद्वेष नहीं होते तो फिर रागद्वेष का जो इतना बड़ा बोझ होता, जो अनुभव होता वह भी न हो। ये सुख दुख भी न हों, और ज्ञान से देखना शुरूकर दें तो ज्ञान व्यापक होना शुरू हो जाता है। ज्ञान भिन्न पदार्थों से नहीं बँधता है ऐसे ढंग से आप देखें।

मन के विचार को देखने की दो विधियाँ हैं—एक तो विचार मे तन्मय हो जाय या फिर विचार से अलग देखें, सिर्फ ज्ञान को देखे। मैं ज्ञान हूँ और

इस मेरे ज्ञान के अन्दर ये ज्ञेय, ये विचार दिखते हैं। ज्ञान और पदार्थ को अलग-अलग कर सकें, भेद कर सकें तो जब-जब आप एकान्त में बैठे हो धर्म करने के लिए तो कम से कम १०—५ मिनट यह देखें कि मेरे मन में जो विचार चल रहे, जो विकल्प हो रहे, ये मेरे से अलग चीज हैं। दर्पण (ज्ञान) अलग चीज है और बाकी ये सब दृश्य अलग चीज हैं, इस प्रकार का एक भेद करें। और यह भेद कब होगा जबकि कि बाहर में इन विकल्पों को इकट्ठा न करें।

जिन विकल्पो से आपका कोई प्रयोजन नहीं, जिनसे आपकी कोई दूकान नही चल रही, फैक्टरी नहीं चल रही, घर नहीं चल रहा उन्हें आप इकट्ठा मत करें। इन विकल्पो से हमारा कुछ प्रयोजन नही। ये हमें न चाहिये। अब जो चीजें हमारे प्रयोजन भूत हैं सिर्फ उनकी बात करें।

आप दूकान मे घर मे, ट्रेन मे कहीं भी बैठे हों वही आप मौन पूर्वक बैठकर यह विचार करें कि मेरे मे ये जो विचार चल रहे ये भी मैं नहीं हूँ। मैं ज्ञान रूप हू। और ज्ञान मे जो फिल्म चल रही विचार, फिल्म की उसमे भी अपना तादात्म्य छोडे। तब इन विचारो से ऊपर उठने की मंजिल बनेगी। जब ये विचार आप मे आते और उनको आप अपनी तन्मयता बनाते तो उसमे आप सुख दुःख का अनुभव करते।

इस सुख दुःख के अनुभव से बचने के लिये यह चाहिये कि उन विचारों मे तन्मयता न हो। ये विचार मे नही हूँ। यह पिक्चर मैं नहीं हूँ। मैं तो सिर्फ दर्शक हू। मैं इससे अलग हू। मैं इस नाटक का पात्र नहीं हू सिर्फ विचार कर रहा हू।

अब इसके बाद दूसरा चरण लें। क्या कोई आदमी ऐसा कर सकता कि इन विचारों से छुटकारा पा जाये ? चाहे कोई अच्छे विचार करे या बुरे, पर कुछ न कुछ विचार हर एक के चलते रहते हैं। लेकिन ये विचार पर पदार्थ है। ये विचार मात्र परिग्रह हैं चाहे वे शुभ हो या अशुभ। वे दर्पण नही हैं, वे दृश्य है।

जब आप खाने बैठते तो वहाँ भी आप अच्छे बुरे की पहिचान करते, यह खाना अच्छा यह बुरा, कपड़े पहिनते तो वहाँ भी अच्छे बुरे की पहिचान करते, सड़क पर चलते तो वहाँ भी आप विचार कर अपने कदम रखते। तो क्या काम करना है, कहाँ कैसा करना है यह बात आती है चरित्र मे, लेकिन ज्ञान सब कुछ जानता है। भला बुरा सब कुछ जानता है। ज्ञान तो सूर्य की

तरह है जैसे सूर्य कहीं यह विरोध नहीं करता कि मैं कीचड़ वाली गंदी जगह मे अपना प्रकाश नहीं डालूंगा, मैं तो बहुत अच्छी मिठाइयों वाली जगह पर ही अपना प्रकाश डालूंगा, ऐसे ही अरहन्त भगवान के ज्ञान मे चाहे कोई चोर हो चाहे कसाई हो चाहे साधु हो, सब कुछ उनके ज्ञान मे झलकता है, उनका ज्ञान कहीं विरोध नहीं करता। जिसका ज्ञान झलकने मे, जानने में विरोध करे उसमे सर्वज्ञता नहीं आ सकती। सर्वज्ञ के ज्ञान मे सब कुछ अच्छा बुरा प्रतिबिम्बित होता है।

कोई अगर चाहे कि मैं अच्छा ध्यान करूँ और बुरा ध्यान रोकूँ तो ऐसा वह कर ही नहीं सकता। जैसे कोई किसी नदी के किनारे बैठकर चाहे कि मैं साफ-साफ लहरों को पकड़ और कीचड़ वाली गंदी लहरों को रोकता जाऊं तो वह ऐसा कर ही नहीं सकता। क्योंकि गंदी लहरों को रोकने की कोशिश करेगा तो उसमे और भी अनेकों नई लहरें पैदा हो जायेंगी ऐसे ही कोई बुरे विचारों को रोकना चाहे तो उसमे सम्बन्धित अनेकों विचार आते जायेंगे।

अब बहुत से विचार आते हों तो आयें लेकिन आप उनमे रागद्वेष न करें। उनमें अच्छे बुरे का निर्णय आप छोड़ दें। ये विचार नदी की लहर की तरह बह रहे हैं। इन विचारों की लहर आपके ज्ञान मे प्रतिबिम्बित हो रही है, लेकिन आप इन विचारों की लहरों को पकड़े नहीं, इनमे आप तन्मय न हो जावें, इन्हें आप एक विचार की तरह देखें, इनमें तटस्थ रहे। यह विधि है कि पहले इन विचारों मे तन्मयता छोड़ें। रागद्वेष न करें। जितना-जितना समता मे देखेंगे उतना-उतना पता होगा कि ये विचारों की लहरें एक-एक करके बहती जायेंगी और धीरे-धीरे अपने आप विलीन हो जायेंगी। और अगर उनको रोक दिया तो उनमे अनेकों लहरें और भी पैदा हो जायेंगी।

तो यह मन तरंग की तरह है। उसे बहने दें। इस मन को यदि छुआ न गया तो वह तरंग की तरह विलीन हो जाता है और यदि सोचें कि यह मन रुक जाय तो वह वैसा है जैसा कि किसी तरंग को रोककर उसे आकाश मे छोड़ दें।

तो आप इस बेगवती नदी के तट पर बैठकर अपने मन की लहरों को, विचार की तरंगों को बहने दें, उनमें अच्छा-बुरा का निर्णय करके उन्हें देखते रहें। रोकना अलग बात है और उसका दर्शन होना अलग बात है।

एक बात मजे की यह है कि आप जिस चीज को रोकेंगे उसका आपको अधिक ख्याल आयगा। जैसे कोई आदमी एक साधु के पास गया। वह आदमी बड़ा दरिद्र था, कई दिनों से भूख से पीड़ित था, तो उसने निवेदन किया कि महाराज मुझे आप कोई ऐसा मंत्र बता दीजिये जिससे कि मेरी आजीविका चल जाय, तो साधु ने कहा अरे भग जा, यहाँ कुछ नहीं है। तू किसी अमीर के पास जाकर नौकरी कर। वह फिर भी पीछे पड़ा रहा। कई बार साधु ने उसे भगाना चाहा, पर ज्यों-ज्यों वह साधु उसे भगाने की कोशिश करे त्यों-त्यों वह और भी पैरों में चिपटता फिरे। आखिर विवश होकर साधु को मंत्र देना ही पड़ा। साधु ने कहा-तू इस मंत्र का रात्रि में ६ बार जाप करना। वह पुरुष बोला ठीक है।

जब वह वहाँ से चलने लगा तो साधु ने कहा-अरे एक बात और सुन जा, मैं उसे बताना भूल गया हू। वह लौट आया और पूछा क्या बात ? तो साधु बोला-देखो एक बात का ध्यान रखना कि जब इस मंत्र का जाप करना तो उस समय तुम किसी बन्दर का ख्याल न करना। जो आज्ञा महाराज कहकर चल पड़ा। ज्यों ही सड़क पर पहुंचा तो उसे वहीं बन्दर दिखाई पड़े। अपने घर पहुचा तो वहाँ उसे सब बन्दर ही बन्दर दिखाई पड़े और जब वह रात को जाप जपने बैठा तो वहाँ भी उसे सारे बन्दर ही बन्दर नजर आयें। उसे जाप करना भी बड़ा मुश्किल हो गया।

प्रातःकाल होते ही वह पुरुष फिर उसी साधु के पास पहुंचा और बोला महाराज आपने बन्दर वाली बात एक ऐसी कह दी थी कि मुझे तो सब जगह बन्दर ही बन्दर दिखाई दिये, जाप करने की बात तो दूर रही।

तो बात यह कह रहे थे कि जब आप बुरे विचार छोड़ने की कोशिश करेंगे तो होगा क्या कि आपके सामने अन्य नये-नये बुरे विचार खड़े होते जायेंगे। तो उन बहने वाले विचारों को रोकना नहीं है। वे बहते हैं तो बहने दो। जब बहते ही रहेंगे तो कभी न कभी तो वे पूरे बह ही जायेंगे। ऐसे ही यह मन एक नदी की तरह है उसमें विचार तरंगों की तरह पैदा होते हैं और ये विचार अगर आप रोकते हैं तो रुकते भी नहीं हैं। अनेकों विचार नये-नये पैदा हो जाते हैं। तो आप उन विचारों को बहने दें। और जब बहते-बहते विचारों

तो आप बिना प्रयोजन किसी को कुछ निर्णय क्यों दें ? क्या मतलब है आपको उससे ? आप किसी के कपड़े देखते तो उसमे भी अच्छे बुरे का निर्णय देने लगते, खाने पीने मे भी अच्छे बुरे का निर्णय देते लगते तो ऐसे ही किसी भी चीज का आप निर्णय न दें।

यह ज्ञान का काम तो नहीं है। ज्ञान में आया ठीक है लेकिन जिसमें अपना कुछ मतलब नहीं उस पर निर्णय न दें। जहां निर्णय देना है वहाँ रागद्वेष आते हैं और जहाँ रागद्वेष आते हैं वहाँ कर्म की धूल चिपट जाती है।

और यह चिपटना ही संसार है। उससे हमारे संसार की श्रृंखला शुरू होती है। हम आप जो सुबह शाम ध्यान करते हैं, वह तो ठीक ही है मगर ध्यान तो हर समय करने की चीज है। रात दिन के चौबीसों घंटे जो विचारों का सन्तुलन बना करता है उसमे अच्छा बुरा कुछ न सोचना सिर्फ खड़े होकर या बैठकर मौन पूर्वक अंतः निरीक्षण करना।

आपके भीतर एक बहुत बड़ी फिल्म निरन्तर चल रही है। आप लोग कहीं पिक्चर देखने जाते तो वह तो सिर्फ तीन घंटे मे समाप्त हो जाता है पर आपके अन्दर की पिक्चर तो बराबर चौबीसों घण्टे चल रही है। और फिर मजे की बात देखिये कि उस पिक्चर मे तो टिकट लेकर पैसे भी खर्च करने पड़ते और अपने अन्दर का पिक्चर तो बिल्कुल फ्री देखा जा सकता है। तो अपने अन्दर होने वाले इस पिक्चर को सिर्फ देखें, उसमे भले बुरे का कुछ विचार न करें सिर्फ देखना और देखते का अभ्यास होना चाहिये।

इस विधि से जैसे-जैसे हमने रागद्वेष अलग किया है वैसे ही वैसे रागद्वेष की बत्ती बुझेगी और विचार विकल्पों की कलम छूट जायगी और तब हमारे चारों ओर का बिखरा हुआ सौन्दर्य हमे आनन्दित कर देगा और यदि हम उसमें रागद्वेष करते रहे तो हम अपने उस सौन्दर्य का आनन्द लूटने से वंचित रह जायेंगे।

जैसे कहते हैं ना-शूद्र का बालक चाहे पंडित हो जाय फिर भी वह है तो शूद्र ही, ऐसे ही ये विचार, ये रागद्वेष शूद्र की तरह हैं, ये मेरे से आये हुये नहीं हैं। विचार परिग्रह हैं, मेरा स्वभाव नहीं हैं। जैसे प्रकाश चाहे मोमबत्ती का हो चाहे बिजली का, लेकिन चाँदनी की शीतलता से तो वंचित ही कर

देती है इसी प्रकार ये रागद्वेष, विचार विकल्प चाहे शुभ हो या अशुभ, पर ये आत्मा की (चैतन्य की) शीतलता से तो वंचित ही कर देते हैं।

देखिये यह एक विधि है आत्मा की भी शीतलता को पाने की। वैसे तो इस विधि को प्राप्त करने मे बहुत समय लग सकता। कई भव भी बीत जायें, किसी को जल्दी भी यह विधि हासिल हो सकती, पर चिन्ता की कुछ बात नहीं जितना भी समय लगता हो लगे। यदि इस काम को करना शुरू कर दिया है तो कभी न कभी काम बन ही जायगा। तो इस बतायी गई विधि का सभी लोग अभ्यास करें जिससे निकट काल मे ही रागद्वेष विकल्प विचार आदि से हटकर अपना अन्तः आनन्द लूट सकें।

एक सेठ ने बडे चाव से सोने की एक अंगूठी बनवायी। उसके बनवाने मे उसे पूरे ५० हजार रुपये खर्च हुये। उसे अगूठी पहिनने का बडा शौक था, और जब इतनी कीमत की अगूठी बनाया हो तो थोड़ा यह भी मन मे होता है कि उसे और लोग भी देखें। दूसरों को दिखाने के लिये ही तो लोग ये जेवर और कपडे पहिनते हैं। दूसरे लोग ताकि समझ लें कि ये भी कुछ हैं। ये एक अगूठी मे ५० हजार रुपये खर्च कर सकते हैं, ये बडे आदमी है। वह बड़े शौक से उसे पहिनता था।

एक दिन उसने अपने एक मित्र को देखने के लिये वह अगूठी दी। यद्यपि उसने उसे भली प्रकार देख भालकर वह अगूठी वापस कर दी और उस सेठ ने उसे अपनी अगुली मे पहिन भी ली पर बातचीत के प्रसग में उस अगूठी का कुछ ध्यान न रहा। एकदम उसे याद आया कि मैंने अपने मित्र को जो अगूठी देखने को दी थी वह क्या हुई ? पता नहीं कहाँ खो गई। वह बडा हैरान सा हुआ, सब जगह ढूढ़ता फिरे कि कहाँ गई पर उसे कहीं न दिखाई दी।

देखिये पहने तो था अपनी अंगुली मे, पर उसका ध्यान न रहने से वह सब जगह ढूंढता फिर रहा था। जब उसने वह अंगूठी न पायी तो एक जगह उदास होकर बैठ गया। एक घटे बाद सामने से वही मित्र निकला और पूछ बैठा-भाई तुम उदास क्यो हो ? तो वह सेठ बोला—अरे मैंने जो ५० हजार की कीमत की अंगूठी तुम्हें देखने को दी थी वह खो गई इससे उदास हूँ। तो उस मित्र ने उसकी अगुली मे पहनी हुई अगूठी को देखकर व उसकी ओर

द्रव्यात्मक पदार्थ नहीं होता। वह एक भावात्मक पदार्थ है। उस भावात्मक पदार्थ को जब हम चखें तो कैसे चखेंगे ? उस समय अपना उपयोग कहीं बाहर न जाना चाहिये, अन्तर्मुखी उपयोग होना चाहिये। उस उपयोग में कोई विचार न होना चाहिये। तो जो पदार्थ जैसा है उसको वैसा जानना।

आम का जो अमरस बना दिया गया हो और उसमे नमक, मिर्च, धनिया, जीरा वगैरह डाल दिये गये हो उस अमरस को यदि आप चखें, उसका आप स्वाद लें और हम पूछें कि बताओ आम का स्वाद कैसा है ? तो क्या आप उसे ठीक-ठीक बता सकेंगे ? नहीं बता सकते, क्योंकि उस समय आपके उपयोग मे धनिया, मिर्च, नमक आदि अनेक चीजें हैं। हाँ आप आम के रस को ख्याल मे ले लेंगे।

तो ख्याल मे आना, ज्ञान मे आना, बस इस ही का नाम तो सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन कहते किसको हैं ? ठीक-ठीक देखने को ही तो सम्यग्दर्शन कहते हैं। आम का रस क्या है और नमक, धनिया, मिर्च वगैरह क्या हैं ये ठीक-ठीक जानना, पहिचानना इस ही को तो सम्यग्दर्शन कहते हैं। आँखों से देखकर नहीं, जिह्वा से तन्मय होकर। रूप हम तन्मय होकर नहीं देखते, रस जरूर तन्मय होकर चखते हैं। तो जब उस रस को ज्ञान की प्रमुखता लेकर जानते हैं तो वही तो आम का सम्यग्दर्शन कहलाता है।

ऐसे ही आप एक उदाहरण और लीजिये। मान लो आप चाय पी रहे हों, उस समय आपसे पूछा जाये कि बताओ इस चाय मे कितना दूध है या इसमे कितनी शक्कर पड़ी है ? तो उस समय आप क्या करेंगे कि अपने उपयोग को जीभ पर टिकायेंगे। उस समय आपकी जीभ रुक गई और फिर उसमे आप दूध, चाय, पानी और शक्कर वगैरह को अलग अलग ज्ञान में लेते हैं। जिह्वा वहीं की रहती है लेकिन ज्ञान से अलग करते हैं और फिर आप कहते हैं कि इसमे सिर्फ दो चम्मच दूध है और दो ही चम्मच शक्कर पड़ी है, एक गिलास इसमे पानी पड़ा है और एक चम्मच चाय पड़ी है। ये सब अलग अलग ज्ञान आप करते हैं। तो इस ठीक-ठीक पहिचान करने का ही तो नाम सम्यग्दर्शन है। और जिस समय आप उस चाय में मानो दूध को पहिचान कर रहे हो उस समय आपने मीठा, चाय, पानी वगैरह को अपने उपयोग मे अलग कर दिया मानो उनके प्रति आपके विचार रुक गये तो

यही कहलाया निर्विकल्प ।

तो ऐसे ही जब हम आप अपना अनुभव करते हैं तो उसके अन्दर भी मानो क्रोध के मिर्च पड़े हैं, मायाचार का जैसा पानी मिला है, लोभ का जैसा मीठा मिला है। हमारे आपके अन्दर भी ये सब मिले हुये हैं क्योंकि आत्मा अनुभवात्मक द्रव्य है। उसे आँखो से नही देख सकते। उसका अनुभव किया जाता है। जैसे चाय में दूध की पहिचान करने पर चाय, मीठा, पानी आदि का ख्याल रुक जाता है। इसी प्रकार अपने आत्मा की पहिचान करने के लिये यदि क्रोध, मान, माया आदिक को उपयोग से अलग कर दिया जाय तो इनका ख्याल रुक जाता है।

यह मैं आत्मा चैतन्य रूप हू और ये क्रोधादिक विचार हैं, ऐसा जो भाव है वही तो ठीक-ठीक देखना कहलायेगा। इसी का नाम है सम्यग्दर्शन। यह आत्मा के सम्बन्ध में सम्यग्दर्शन है। जब दूध और पानी में ठीक-ठीक पहिचान करें तो वह दूध पानी का सम्यग्दर्शन है और जब आत्मा के बारे में पहिचान हो, स्व की जो अनुभूति हो तो उसका नाम सम्यग्दर्शन है।

तो आत्मा का सम्यग्दर्शन कैसे हो ? जब मन के इन विचार विकल्पो को हटा दें और स्वका अनुभव हो तो उसका नाम आत्मा का सम्यग्दर्शन है। यहाँ जो दर्शन शब्द है उसका नाम जानकारी नहीं। जानकारी का नाम है ज्ञान। जैसे भगवान के दर्शन किया तो भगवान के आख, कान, आदिक का ज्ञान किया इसका नाम ज्ञान है। ज्ञान नाम है विचार का और दर्शन नाम है निर्विकल्पता का। जहाँ कोई विचार नही, विकल्प नहीं, सिर्फ देखा तो उसका नाम है सम्यग्दर्शन।

तो जो ध्यान की विधि बतायी उसका यही यह अर्थ नही कि तुम अभी से भगवान जैसे बन जाओ। सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के लिये यह एक विधि है। जो इन विचार विकल्पों के अतिरिक्त स्वकी अनुभूति है उसे कुछ क्षण के लिये कर सकें और उस बाहरी तनाव से मुक्त हो सकें। जो बाहरी तनाव है वह कुछ दूर हो तो हमारे जीवन में कुछ हल्का पन आ सकता है। यह पहली बात है और दूसरी बात यह है कि इन सबसे परे मैं चैतन्यस्वरूप क्या हूं उसका दर्शन, उसका अनुभव किसी को क्षणिक भी हो गया तो

देखा कि इन गाड़ियों उस झरने के पानी में से निकलकर जा रही थी जिससे सारा पानी गन्दा हो गया था। उस गंदे पानी को देखकर वह शिष्य वापिस लौट आया और बोला—भगवन्! वह पानी गन्दा हो गया है, आपके पीने योग्य नहीं है। आप कुछ आगे चलिये, वहाँ मैं आपको पीने के लिये अच्छा सा पानी ला दूँगा। तो बुद्ध बोले अरे बेटे! मुझे तो बड़े ज़ोर की प्यास लगी है जाओ जैसा भी पानी हो वहाँ से लाओ।

तो वह शिष्य आज्ञा ले फिर गया पानी लेने तो फिर वही गन्दा का गन्दा पानी देखकर लौट आया और बोला—भगवान् आप यहीं बैठिये मैं किसी दूसरी जगह से पानी भर कर ले आऊँगा, यह पानी आपके पीने योग्य नहीं है। तो बुद्ध फिर बोले—अरे बेटे! मारे प्यास के प्राण सूखा जा रहा है जल्दी से तुम इसी झरने का पानी ला दो।

तो अब वह शिष्य जाना तो नहीं चाह रहा था पर बुद्ध के प्रेम भरे आग्रह से विवश होकर उसे पुनः जाना पड़ा। इस बार वह वहाँ जाकर थोड़ी देर के लिये बैठ गया। थोड़ी ही देर में क्या हुआ कि वह गन्दा पानी निथर गया, सारा पानी साफ हो गया और उसे भर कर आनन्द से आया।

तो वहाँ बुद्ध ने उस शिष्य से पूछा-पानी साफ है ना?...हाँ बिल्कुल साफ है।...तुम इतनी दूर पानी लेने क्यों गये जिससे इतनी देर लगी?... भगवन मैं कहीं दूर नहीं गया था। मैं तो इसी झरने के किनारे इतनी देर बैठा रहा। 'क्यों बैठे रहे? तो इतना कहते ही आनन्द सारी बात समझ गया और बोला—भगवन्, अब मैं आपके मन की बात समझ गया कि आपने मुझे पानी लेने क्यों भेजा था? आपने मुझे प्रतीक्षा करने का पाठ सिखाने के लिये पानी लेने भेजा था। वहाँ था गदला जल और आपको चाहिये था निर्मल जल तो उस निर्मल जल को पाने के लिए प्रतीक्षा करनी ही पड़ती है। तो वहाँ बुद्ध ने कहा—अरे प्रतीक्षा की भी वहाँ क्या जरूरत थी? जल्दी से पानी में घुसकर हाथों से दबा दबाकर गदले पानी को साफ करके ले आते, तो वहाँ शिष्य बोला—भगवान् यदि हम वहाँ ऐसी क्रिया तुरन्त कर डालते तो पानी और भी अधिक गदला हो जाता, वहाँ फिर साफ पानी मिलना बहुत कठिन हो जाता। हमने निर्मल जल पाने के लिये सिर्फ आधा घण्टे की प्रतीक्षा करली इसलिए निर्मल जल प्राप्त हो गया।

बस यही बात तो इस मनकी है। आपके अन्दर यह मन रूपी नदी बह रही है इसमे क्रोध, मान आदिक कीड़ों से मन का जल गदला हो गया है, अब उसको निर्मल करने के लिए कुछ विश्राम से बैठकर उसकी प्रतीक्षा करें अगर बिना प्रतीक्षा किये इस मन मे घूमने की कोशिश करेंगे तो इसमे गदली और भी बढ़ती जायगी और अगर उसके निर्मल होने की प्रतीक्षा कर लेंगे तो धीरे धीरे इस मन रूपी नदी की गदली अपने आप बैठ जायगी और पानी निर्मल हो जायगा।

तो प्रतिदिन इस मन की नदी के किनारे बैठें और उस निर्मलता की प्रतीक्षा करें 'अगर कोई कहे कि यह काम हम से रोज-रोज नहीं करते बनता, कभी-कभी कर लेंगे, तो इस तरह से बात बनेगी नही। यह काम रोज रोज करना होगा, इस मन गदलाहट को दूर करने की रोज-रोज प्रतीक्षा करना होगा'। बैठ जावो सबसे अलग होकर। मन, वचन और शरीर इन सबसे अलग होकर विश्राम से बैठ जावो यह विधि है ठीक-ठीक देखने की। सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की यह विधि है।

कोई अगर सम्यग्दर्शन की परिभाषा पहले याद करले, तो कहीं उन रटे हुये शब्दों से प्रतीति होने वाली नहीं है। यह तो सिर्फ इतनी चीज है कि आप क्वालिटी जान जायेंगे लेकिन उससे कहीं सम्यग्दर्शन तो नहीं प्राप्त हो जायगा। यह रटी हुई बात तो उस तरह से है जैसे कोई बच्चा किसी प्रश्न को हल करता हो और उस प्रश्न का उत्तर उसने पहले से ही कहीं से देखकर सबसे नीचे रख दिया हो, बीच मे कुछ से कुछ भी लिख दिया हो तो इस तरह से मात्र सही उत्तर नीचे लिख देने से उस प्रश्न का हल तो न मान लिया जायगा ऐसे ही कोई सम्यग्दर्शन की परिभाषा मात्र रट ले और उसे कुछ भावभासना है नहीं तो उससे जीवन के प्रश्नो का हल तो नही हो सकता।

ये अध्यात्म के सारे ग्रन्थ सिर्फ उत्तर बता रहे लेकिन उसके करने की विधि को बतलायेगा ध्यान। विधि ध्यान के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकती। आज तक जो भी योगी हुये उन्होंने क्या किया, सिर्फ ध्यान किया, ज्ञानार्जन नहीं किया। भगवान महावीर ने १२ साल के तपश्चरण के अन्दर कोई शास्त्र नहीं पढ़ा, भगवान ऋषभदेव ने कोई शास्त्र नहीं पढा, भगवान रामचन्द्र ने कोई ग्रन्थ नही पढा, उन्हें लोग श्रद्धा से स्वयभू कह देते हैं।

कोई आदमी की तरह पैदा होता है और अपने पुरुषार्थ से वह स्वयंभू बनता

है। प्रत्येक आत्मा स्वयंभू है, स्वयं अपना निर्माण करता है, चाहे कोई अपना अच्छा निर्माण करे या बुरा, उस अच्छी बुरी मूर्ति के निर्माण के लिए वह स्वयंभू है।

हमें अगर अपनी अच्छी मूर्ति बनाना है, अच्छा निर्माण करना है तो हमारे भीतर जो गदली पडी है उसे निकालकर बाहर फेंकें।

जितने भी ऋषि अब तक पैदा हो गए चाहे किसी भी धर्म के हों, उन्होंने अपना अन्त: निरीक्षण किया। अपने से जो जो कुछ भी बाहर दिखाई दिया उसे निकाल फेंका। जो मेरे से बाहर है वह मेरा नहीं, उसे निकालकर फिर अपनी अन्त: निर्मलता की प्रतीक्षा की। प्रतीक्षा एक तपस्या है। बिना प्रतीक्षा किए आप जितना जो कुछ करेंगे उतना उलझन में पड़ेंगे और जितनी प्रतीक्षा करेंगे उतना सुलझेंगे।

प्रतीक्षा करना तथा उस समय में धैर्य रखना बडा कठिन कार्य है। अगर हम आप में कहें कि ध्यान करो तो आप लोग कोई दो चार दिन भले ही हमारे बारबार कहने पर ध्यान करने बैठें पर यदि हमारा कहना बन्द हो जायगा तो आप लोगों का ध्यान करना भी बन्द हो जायगा। कुछ लोग ध्यान करके तुरन्त उसका फल चाहते हैं। उस फल की प्रतीक्षा नहीं करते हैं, लेकिन प्रतीक्षा की भी एक घटना सुन लो—

भीलनी ने श्रीराम की प्रतीक्षा की थी। भीलनी रोज-रोज सड़क के ऊपर बड़ी श्रद्धा और बड़े उल्लास के साथ झाड़ू बुहारी का काम किया करती थी। उसके मन में यही रहता था कि पता नहीं वह कब आ जायें। उस भीलनी ने कभी ऐसा नहीं सोचा कि कहीं रोज-रोज की मेरी यह मेहनत बेकार न चली जाये। उसमें विवेक था। पढ़ी लिखी तो नहीं थी पर विवेकवान थी। धर्म के लिए भी विवेक चाहिए, ज्ञान नहीं, तो उस भीलनी ने सोच लिया था कि मुझे तो जीवन भर श्रीराम के आगमन की प्रतीक्षा करना है। इस सड़क की रोज-रोज झाड़ू बुहारी करना यही मेरी उनके लिए पूजा है, यह काम मुझे रोज-रोज करना है क्योंकि वे कभी भी आ सकते हैं। इस तरह से बहुत समय तक वह श्रीराम के आगमन की प्रतीक्षा करती रही, रोज-रोज सड़क पर झाड़ू देती रही, एक दिन भी नहीं छोड़ा। सारे जीवन भर वह यही काम करती रही। आखिर हुआ भी ऐसा कि एक दिन वहां श्रीराम पधारे और भीलनी ने बड़े भक्ति भाव से उनका दर्शन किया और अपने जीवन को सफल समझा।

तो जैसे भीलनी ने यह सोच लिया था कि चाहे मेरा सारा जीवन लग जाय, मैं अपनी अंतिम श्वास तक इस सडक पर झाडू बुहारी का काम करती रहूँगी इसी प्रकार हम आप धैर्य धारण करके, प्रतीक्षा करते हुए ध्यान के काम में लगें, अपने अन्दर आयी हुई गंदगी को दूर करने के काम मे लगें। इस काम को करने के लिए चौबीसों घण्टे लगाने हैं। जब आप सडक पर चलें तो पूरे होश के साथ, भोजन करें तो पूरे होश के साथ। जिस समय शरीर में कोई आधि व्याधि हो तो उस समय भी पूरे होश के साथ, यह पहला चरण बताया।

अब इसके बाद बताया कि इन विचारों का संकलन न करें। जितना जितना इन विचारों से अपना लगाव छोड़ेंगे उतना-उतना हमारे विचारों का सकलन कम होगा। तभी तो मनोगुप्ति की बात कही गई। याने कुछ विचारें करें, या कुछ बोलें या कुछ काय से चेष्टा करें तो उसमें हित, मित और प्रिय ये तीन बातें अवश्य ध्यान में रखें। मन, वचन और काय को वश में रखने के लिये मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति यह विधि बतायी है विवेचन में।

उसकी दूसरी विधि योगासन की कही गई है। आप हाथ पैर धोकर योग के आसन पर विराजें। ऐसे आसन के द्वारा आप अपने मन की ग्रन्थियों को निकालें। फिर उस आसन के द्वारा मन में जो विचार हों उन्हें निकालें। हम उस आसन के बीच कहीं कुछ रागद्वेष न करें 'उसमें कोई अपना निर्णय न दें' और उसके बाद अन्तिम चरण यह है कि हम प्रतीक्षा करें, मौन रखें।

यह प्रतीक्षा भी विकल्प है, यह भी जब छूट जाती है वह ध्यान है। मन के अनिर्णय की स्थिति में जागरूप होकर देखना यह निरावलम्बन ध्यान की विधि है, और उस प्रतीक्षा के पश्चात् सुषुप्ति जैसी अवस्था में जागरण होगा। उस जागरण की अवस्था में भी कषायें होगी लेकिन वे दबी हुई होगी, उमड़ी हुई नहीं।

जैसे कोई कीचड़ से भरी तूमड़ी पानी में पड़ी हो तो वह नीचे बैठ जाती है और जैसे-जैसे कीचड़ धुलता जाता है वैसे ही वैसे तूमड़ी पानी के ऊपर आने लगती है। पूरा कीचड़ धुल जाने पर तूमड़ी पानी में ऊपर तैरने लगती है, इसी प्रकार जागरण अवस्था में भी क्रोध मान आदिक कषायों की गदगी अपने अन्दर दबी रहती है लेकिन ज्यों-ज्यों जागरण के द्वारा यह कषायों की

मस्ती फूटती रहती है मौजों से बाहर निकलते रहते हैं। धीरे-धीरे पूर्ण विशेषता आ जाती है। तब भगवानों ने अपने को अलग महसूस किया तो वहीं एक स्वानुभूति हुई। उसी का नाम सम्यग्दर्शन है।

जब किसी को सम्यग्दर्शन होता है, स्वानुभव होता है तो उसके चेहरे पर भी प्रसन्नता आएगी, मुस्कराहट आएगी। उसके मनों शान्ति होगी। देखिये, हँसने मुस्कराने तो सभी है पर यह हँसना और बात है। यह तो एक बनावटी हँसना है। यह तो इसलिये हँसते कि लोग हमारा रोना समझ न लें। वास्तव में आप लोग हँसते नहीं हैं, हँसने का अभिनय करते हैं।

वास्तविक हँसना तो आत्मा स्वभाव से। जो आदमी भीतर में आनन्दित है उससे बाहर में कभी गलत काम न हो सकेंगे। वह उपद्रव न करेगा। क्योंकि उसके भीतर अशान्ति नहीं है। जब किसी के भीतर कोप नहीं है तब बाहर में वह पत्थर कैसे मारेगा? जो स्वयं अच्छा है वह सर्वत्र अच्छे काम करने की सोचता है और जो स्वयं क्रोधी है, अशान्त है, बुरा है तो वह तो सब जगह बुरे काम करना विचारेगा।

आज के जमाने में इस लौकिक शिक्षा के साथ-साथ योग की शिक्षा भी बहुत आवश्यक है। इस योग को मन्दिरों में छोटे बड़े सबको सिखायें, विद्यालयों में बच्चों को सिखायें।

पहले जमाने में भी तो बचपन में ये योग की बातें सिखाई जाती थी। वही बच्चा जब कुछ बड़ा होता था तो उसकी बुद्धि विकसित हो जाती थी। विशेष बड़ा होने पर वही बच्चा उस योग का सदुपयोग करके कल्याण के मार्ग में लग जाता था।

आज के जमाने में लौकिक शिक्षा को विशेष महत्व दिया जाता है। योग की शिक्षा को कोई महत्व नहीं देता। यही कारण है कि आज के बच्चों में अच्छी भावनायें नहीं पनपने पाती हैं। बड़ी जल्दी उनके मस्तिष्क में तनाव आ जाता है। तभी तो आज के जमाने में सारे विश्व में विनाश की ज्वाला धधक रही है। सारे राष्ट्र अपनी-अपनी शक्ति का तनाव लिये बैठे हैं। रोज-रोज सरकार के नये-नये कानून बनते हैं। रोज नये कानून बनते, रोज टूट जाते, यह सब क्यों हो रहा?

भला बताओ जिसके शरीर में पीड़ा होगी उसके अन्दर से चीख तो निकलेगी ही और अगर कोई शान्त है तो उससे कोई कितना ही कहे कि भाई

न भी एक बार उस पीड़ित की तरह चीख मार कर दिखा दो तो भले ही ह बनावटी चीख करे पर वास्तव मे चीख नहीं सकता।

तो आज के जमाने में जो संसार मे विनाश की ज्वाला धधक रही है समे मुख्य कारण है योग की कमी का। योग करने से मन मे शान्ति आती और जब मन मे शान्ति होती है तभी अच्छे काम करना सूझता है। मन मे शान्ति रहने पर अच्छे काम करना नहीं सूझता।

तो इस संसार की विनाशकारी ज्वाला को शान्त करने में इस योग का यान की साधना का) बहुत बड़ा स्थान है। हमारे ख्याल से तो लौकिक क्षा के साथ-साथ इस योग की भी शिक्षा पाठशालाओं मे बच्चो को मिलनी हिये और मन्दिरों मे यह योग की शिक्षा होनी चाहिये जिससे कि छोटे बड़े भी योग की बातें सीखें। लौकिक शिक्षा तो मात्र धनार्जन के लिये है लेकिन ग की शिक्षा आनन्द के लिये, आत्म शान्ति के लिये होती हैं।

इस शृंखला में जिस ढग से योग की विधि बतायी गई उस ढंग से योग रें तो उससे आत्मा में गुणो का विकास होगा और स्वास्थ्य लाभ, शान्ति गभ अथवा बड़ो आनन्द लाभ प्राप्त होगा।

कंकड़ पत्थर निकाल फेंको

एक व्यक्ति कोई बड़ा सा यज्ञ रचा रहा था। उस यज्ञ में बड़े-बड़े विद्वान आमंत्रित थे। बहुत-बहुत लोग दर्शक के रूप में वहाँ उपस्थित हुए। उसकी भीड़, उस यज्ञ की प्रशंसा, उसकी विधि विधान आदिक देखने के लिये बहुत बड़ी जनता उमड़ पड़ी और उस भीड़ में एक बाल योगी भी उस भीड़ को चीरता हुआ चला आया। वहाँ अनेकों विद्वान थे पर किसी की भी हिम्मत न हुई कि उसे आगे बढ़ने से रोक सके क्योंकि उसमें ब्रह्मचर्य का तेज था। उसके आत्मा का ओज ही ऐसा था कि जिससे दूसरों की आँखें चौंधिया गईं दूसरे विद्वान ऐसे लग रहे थे जैसे सूर्य के सामने जुगुनू।

वह यथावत एकदम मंच पर पहुंच गया। यज्ञकर्ता ने उसका बड़ा सम्मान किया। कहा कि आप भी आसन ग्रहण करें। आसन ग्रहण करने पर फिर कहा कि आप आदेश दें कि मैं क्या करूं? तो उस बाल योगी ने कहा—मैं जो कुछ कहूगा क्या वह आप करेंगे? तो वह यज्ञकर्ता बोला—हाँ अवश्य करेंगे क्योंकि यज्ञभूमि में हू।

तो उस योगी ने कहा कि हमारी एक ही बात है कि जो तेरा है वह मेरा है। अब उस बालयोगी की बात को वह टाल न सका और कहा—अच्छा तो ठीक है, आपने जो कहा है कि जो तेरा है वह मेरा है, तो मेरे पास जितना जो कुछ धन वैभव है अब यह आपका हुआ। तो योगी ने फिर कहा—अभी भी आप भूल रहे, केवल धन वैभव की ही बात नहीं है। तो फिर यज्ञकर्ता ने कहा—अच्छा तो जो मेरे पास स्त्री पुत्रादिक परिजन हैं वे भी सब आप के हुए। तो योगी ने फिर कहा अभी कुछ और सोचले, जो-जो कुछ भी तेरा है वह सब मेरा।

अब उसने सोचा कि अब क्या बचा मेरे पास धन वैभव कुटुम्ब परिजन सब कुछ तो मैंने दे दिया। तो फिर यज्ञकर्ता बोला—अब तो सिर्फ मेरे पास मेरा शरीर बच रहा है, बाकी सब कुछ तो दे दिया, चलो वह भी अब आपका

है, तो फिर योगी का वही एक सवाल—जो तेरा है वह मेरा। तो वह चक्रवर्ती फिर बोले—अब तो कुछ नहीं बचा मेरे पास, अब अपना शरीर भी आप को दे दिया तो उसके साथ सब वस्त्र भी आ गये। तो फिर योगी बोला—अभी तो आप के पास बहुत बड़ा खजाना भरा पड़ा है, उसे आप दिखाते हैं उसे क्यों नहीं देते? तो उसने कुछ सोचकर कहा—अच्छा अब मैं समझ गया। मेरे पास इस दान में उत्पन्न होने वाला जो पुण्य है चलो वह भी मैंने आपको अर्पण किया। अब तो कुछ नहीं बचा मेरे पास। तो फिर योगी ने कहा—अभी तू जिसे मैं मैं कर रहा अहंकार कर रहा वह तो तेरे पास ही रह रहा उसे क्यों नहीं अर्पित करता?

देखिये यह मैं बहुत बड़ी चीज है। धन छोड़ा जा सकता है, परिवार छोड़ा जा सकता है तो फिर पुण्य का छोड़ना कठिन होता है और फिर कोई पुण्य को भी छोड़ दे तो मैं इतना बड़ा दानी हूं, इस प्रकार का मैं पना, अहंकारपना, इसका छोड़ना बहुत कठिन होता है।

तो फिर योगी ने कहा—अभी तू फिर सोच ले, अभी तो जितना ही मान दिखाये बैठे हो, क्यों मेरे साथ मायाचारी कर रहे, जो तेरा है वह मेरा हुआ, तू सब निकालदे।

यह बात चल ही रही थी कि वहीं कोई एक भिक्षुक आ गया। उस भिक्षुक को देखकर उस चक्रवर्ती को उस पर दया उपजी और उसे कुछ भिक्षा देना चाहा, तो उस समय योगी ने पूछा—अरे भाई तुम क्या सोच रहे हो? तो वह चक्रवर्ती बोला—मैं इस भिक्षुक को दान देना चाहता। तो योगी बोला—यह बात कौन सोच रहा? तो चक्रवर्ती बोला—मेरा मन। तो योगी बोला—देख अभी तेरे पास यह मन भी तो बच रहा। तो चक्रवर्ती ने कहा—अच्छा चलो मेरा यह मन भी आपका हुआ।

अब वह चक्रवर्ती बोला—अब तो मेरे पास कुछ रहा नहीं, सब कुछ मैंने आपको दे दिया। अब तो मेरा जी घबड़ा रहा है, तो वहीं फिर योगी बोला—देख जिसे तू कह रहा मेरा जी घबड़ा रहा तो यह जी भी तो अभी तेरे पास बच रहा। चक्रवर्ती बोला—अच्छा चलो यह जी भी मैंने आपको अर्पित किया अब क्या बचा? जिस-जिस में मैं पना है वह सब जब मिट ही गया तो फिर शेष क्या बचा? तब तो सारा काम ही खतम हो गया। तो कहते हैं कि उस चक्रवर्ती की समाधि लग गई।

यज्ञ का मतलब क्या ? देवयज्ञ का अर्थ होता है कि जिसमे आपका सब कुछ स्वाहा हो जाय। जैसे जब आप धूप जलाते हैं तब सारी धूप जल जाती है, मिट जाती है, धूल बन जाती है तब फिर उसकी सुगन्ध चारो तरफ फैलती है। अगर आप सोचें कि धूप भी न जले और सुगन्ध आ जाय तो ऐसा कभी हो नहीं सकता धूप मिटेगी तो सुगन्ध बनेगी। जैसे कोई सोचे कि बीज भी डिब्बे मे सुरक्षित बना रहे और क्यारी मे खुशबूदार वृक्ष खड़ा हो जाय तो ऐसा कभी हो ही नहीं सकता। बीज मिट जाय तब वृक्ष होगा।

इसलिये योगीने कहा कि जो तेरा है वह मेरा है। तू मिट जा, समाप्त हो जा। अब हम आप यह चाहते हैं कि हम ज्यो के त्यो भी बने रहें और परमात्मा भी हो जायें तो यह बात बहुत कठिन है। कोई मिलने जैसी चीज हो तो वह मिल सकती है लेकिन यहाँ तो यह बात है कि जब जीव मिटता है तो परमात्मा बन जाता है,

आत्मा (जीव) एक बीज की तरह है और परमात्मा वृक्ष की तरह है। परमात्मा बनने पर यह जीव मिट जाता है। अब लोग चाहते तो यह कि मैं जीव बना भी रहूँ और परमात्मा बन जायें तो ऐसा नही हो सकता। यदि जीव बना रहे और कोई परमात्मा बने तो वह उधार लिया जैसे होगा, वह आपका न होगा क्योकि वह कोई दूसरा है, आप नहीं हैं वह।

कहते हैं कि परमात्मा के दर्शन हो जायें, आत्मा के दर्शन हो जायें। लोग आँखें मूंद लेते हैं तो कहते हैं कि हमे कुछ नही दिखाई दे रहा पर मैं कहती हूँ कि जिस समय आप कहते हैं कि हमे कुछ नही दिखाई दे रहा तो उस समय भी आपको दिखाई दे रहा है कैसे ? तो आपको कुछ नही के रूप मे दिख रहा है, लेकिन आप जो उसमे आकृतियाँ देखना चाहते हैं वे नही दिखती। जो आप चाहते हैं वह नही दिख रहा इसलिए आप कहते हैं कि हमें कुछ नही दिख रहा।

जैसे आप अपने कमरे की लाइट बंद कर दें वहाँ मैं आपसे पूछूँ कि बताओ आपको क्या दिख रहा ? तो आप यही तो कहेंगे कि कुछ नहीं दिख रहा, पर अंधेरा तो दिख रहा है। अब आप चूँकि चाहते हैं प्रकाश को देखना इसलिए आप कहते हैं कि हमे कुछ नहीं दिख रहा।

तो आँखें बन्द हो तब भी आप देखने वाले हैं और आँखें खुली हो तब भी आप देखने वाले हैं। कितना भी घना अंधेरा हो पर दिखता तब भी है।

कमी न हो, कोई डिफोट न हो तो उसे ठीक सुनाई देता है।

एक आदमी के कान में कुछ डिफेक्ट हुआ तो वह सीटी सी मारता था तो वह उस आवाज से बड़ा परेशान होकर किसी व्यक्ति के पास पहुँचा और उससे बताया कि मेरे कान में सीटी की आवाज जैसी सुनाई देती रहती है, उससे मैं बड़ा परेशान हूँ। उसके ठीक होने का कोई आप उपाय बता दीजिए। तो वह व्यक्ति बोला—आप अपने दोनो पैर रोज-रोज जोर से फटकार दिया करें, १०—१ दिन मे अपने आप सीटी देना बंद हो जायगा। उसने वही उपाय किया और ठीक हो गया। कान मे सीटी की आवाज आना बन्द हो गया। उसकी परेशानी दूर हो गई। अब उसकी जगह पर यदि कोई योगी होता तो वह उस सीटी की आवाज सुनकर बड़ा खुश होता, सोचता कि ॐ ॐ की धुन आ रही है।

तो हमारा मन कुछ पकड़ना चाहता है, मिटना नहीं चाहता, वह अपनी सत्ता बनाये रखना चाहता है इसलिये बड़ा लोभ है। मन का बना रहना इससे बड़ा कोई परिग्रह नहीं होता।

एक व्यक्ति किसी साधु के पास गया और बोला—महाराज मैं अपना कल्याण चाहता हूँ तो साधु ने कहा ठीक है। पहले आप अपनी सारी सम्पत्ति बाँट आवो फिर हमारे पास कल्याण के लिए आवो।

देखिये यही बात यदि हम कहें आप लोगो से तो आप लोग यह काम करने के लिए तैयार न होंगे पर वह व्यक्ति इस काम के लिए तैयार हो गया। अपनी सारी सम्पत्ति बाँटकर साधु के पास पहुँचा। खूब ठंडी के दिन थे और रात हो गई थी, तो साधु ने उस दिन क्या किया कि अपने निवास स्थान के दरवाजे बन्द कर लिया, पहले कभी नहीं बन्द करता था पर उस दिन बन्द कर लिया।

अब वह शिष्य वहाँ पहुँचकर किवाड़ खटखटाने लगा तो साधु ने दरवाजा नहीं खोला। आखिर वह शिष्य सारी रात उसी द्वार पर बैठा रहा जब सवेरा हुआ तो साधु ने किवाड़ खोला। साधु तो समझता था कि वह तो कभी का भाग गया होगा लेकिन देखा कि वह शिष्य रात भर उसी द्वार पर बैठा हुआ उस गुरु की प्रतीक्षा करता रहा। गुरु ने समझ लिया कि इस शिष्य मे प्रतीक्षा की क्षमता है तो गुरु ने उससे कहा जावो तुम्हारा कल्याण हो अब

तुम्हें हमारा आश्रय लेने की भी जरूरत नहीं, क्योंकि हमने समझ लिया कि तुम्हारे अन्दर प्रतीक्षा करने की क्षमता है। तुम अपनी सारी सम्पत्ति को छोड़कर हमारा आश्रय लेने आये थे, अब यदि तुम हमारे पास रहते तो वह भी तुम्हारे लिए एक अटक थी, बंधन था। जाओ अब तुम निराश्रय हो गए, अवश्य अपना कल्याण करोगे, क्योंकि मैं तुम्हारे धैर्य रखने की क्षमता की परीक्षा कर चुका हूं।

तो गुरु का आश्रय पकड़ना वह भी एक खूँटा है बन्धन है, वह भी एक लोभ है। लोभ के लिए जरूरी नहीं है कि कोई बड़ी ही चीज हो तब लोभ हो, छोटी चीज मे भी लोभ हो सकता है। लोग टिकेट इकट्ठे कर लेते हैं उनमे भी लोभ हो जाता है।

किसी के पास मान लो ५०० वर्ष पुराना कोई टिकेट हो तो उसका भी उसे लोभ हो सकता क्योंकि उसके मन में यह आ सकता है कि यह तो लाखो की कीमत का होगा। अगर उसे, बेच दे तो लोभ खतम हो सकता।

देखिए यह लोभ बड़ी बुरी चीज है। क्रोध उतना बुरा नहीं होता जितना कि लोभ बुरा होता है, क्रोध तो जब होता है तब वह आपको बुरा लगता है और जब क्रोध चला जाता है तब भी आपको पश्चाताप होता है, क्रोध नहीं होता है, तब भी आप क्रोध को नहीं चाहते हैं और यह क्रोध आपको दिखाई भी पड़ता है कि मुझे क्रोध हुआ है इसलिए आप उसे छोड़ना भी चाहते हैं लेकिन राग हो तो, लोभ हो तो, ? जब होता है तब भी आपको पता नहीं लगता। आप चुपके से कोने में बैठे रहते हैं।

क्रोध ऐसा आता है जैसे दर्पण में कोई राक्षस, और लोभ ऐसा आता है जैसे आकाश का प्रतिबिम्ब। किसी व्यक्ति से अगर पूछें कि बताओ तुमको लोभ है कि नहीं ? तो वह कहने लगता कि मुझे लोभ तो नहीं है लेकिन गुस्सा जरूर आता है। अरे जब लोभ नहीं है तो फिर गुस्सा कहाँ से आता है ? जब लोभ होता है और उसमे विघ्न पड़ता है तो गुस्सा आ जाता है। लोभ मान के आधार पर भी खड़ा हो सकता है, धैर्य के आधार पर भी खड़ा हो सकता है और ज्ञान के आधार पर भी। किसी भी आधार पर खड़ा हो, उसमें कोई विघ्न पड़े तो क्रोध आता है।

किसी से बात की लड़ाई हो गई हो तो अगर वह आपके बोलने में ही

कहीं दूर चला जाए तब तो उसकी याद भी नहीं आती, लेकिन आपको किसी से राग हो तो वह नगर या देश को छोड़कर चला जाय तो भी उसकी स्मृति सताती है। दूर चले जाने पर यह राग उसका पीछा नहीं छोड़ता।

द्वेष भूला जा सकता है मगर राग भूला नहीं जा सकता। द्वेष की अपेक्षा यह राग अधिक दुखदायी है। जैसे जैन आगम में कहते हैं कि द्वेष तो ९ वें गुण स्थान में छूट जाता है लेकिन राग या लोभ १० वें गुण स्थान तक रहता है। ऐसे ही द्वेष खतम हो जाय फिर भी राग बना रह सकता है। यह राग बड़ा दुखदायी है। द्वेष तो जल्दी सबकी समझ में आ जाता है लेकिन राग जल्दी से समझ में नहीं आता।

किसी आदमी से कहा जाय कि आप धन वैभव छोड़ दो तो वह छोड़ सकता है कोई कठिन बात नहीं है धन छोड़कर बड़े बड़े सन्यासी हो गए। मगर आपसे कहा जाय कि आपको सिंहासन मिलेगा आप एक लाख की बोली ले लें तो आप वहाँ झट राजी हो जायेंगे। आप के पास जो पैसा था उसे तो कोई चुरा भी लेता लेकिन उस बोली को बोलकर जो सम्मान प्राप्त किया उसे तो कोई नहीं चुरा सकता। ऐसा आप लोग सोचते हैं।

तभी तो जब कोई दान देता है तो किस लिये ? इसलिये कि स्वर्ग मिल जाय। जो आदमी समेटकर रखे हुए है वह कम लोभी है और जो आदमी दान देकर स्वर्ग चाहता है वह बड़ा लोभी है, क्योंकि जो आदमी समेटकर रखे हैं उसे सिर्फ यहीं की फिकर है और जो स्वर्ग चाहता है उसे तो आगे की भी फिकर है। और आपको यह भी पता है कि बैंक में यदि जमा करेंगे तो उसका ब्याज भी मिलता है, और ७ साल में उसका दुगुना हो जाता है, पर स्वर्ग में तो दान किये जाने पर करोड़ो गुना अधिक मिलता है। इस दान में यहीं मिलता है लेकिन उस दान में परभव में भी मिलता है, यह सोचकर आप लोग दान करते हैं।

आप लोग बड़े चतुर हैं ना। तो ऐसा दान देने वाले के लिये बताया कि वह बड़ा लोभी है। अगर आपके पास अधिक धन नहीं होता तो कहते हैं कि चलो थोड़ा सा ही सही, इसे दान देकर अगले भवके लिये भी जमा कर दो। स्वर्ग की चाह अधिक होती है। तो यह बड़े लोभ की बात है।

किसी ने अगर सुन लिया हो कि स्वर्ग में भी क्या है, थोड़े दिन स्वर्ग का सुख भोग लो फिर वह समाप्त हो जाता है। फिर मनुष्य भव में आना पड़ता

है, फिर तिर्यञ्च वगैरह योनियो मे जाना पडता है तो वह कहता है कि अच्छा मर कर अब हम स्वर्ग मे भी न जायेंगे, हम तो विदेह मे जायेंगे जहाँ से मोक्ष हाथ लग जाय।

मतलब यह कि मोक्ष मे आप सुख चाहते हो और कैसा सुख ? आप को जिस चीजका अनुभव भी नही उसकी आप कल्पना भी क्या कर सकते ? आप कल्पना उसकी कर सकते जिसका आपको अनुभव हो। कल्पना उसी की होती है जिसका अनुभव हो। तो हम सुख चाहते हैं, कैसा सुख ? स्थायी सुख पर अनुभव तो इसी सुख का है।

स्वर्ग का सुख छिन सकता है लेकिन मोक्ष का सुख कभी नही छिन सकता। वह परमानेन्ट है। परमानेन्ट गद्दी मिलेगी किसी देश के शासन की। भाई यह तो बहुत बढ़िया क्वालिटी है, ऐसा चाहते हैं। यह भी बड़ा लोभ है, डर है कि स्वर्ग का सुख छिन जायगा।

जो घने लोभी हैं वे मोक्ष की कल्पना कर लेते हैं और कोई उससे आगे पहुंचते हैं तो क्या करना चाहते कि मुझे मोक्ष भी न चाहिये, मुझे आत्मा चाहिये। तो आत्मा की भी धारणा बनाने लगते हैं।

हमारे मन को जीने के लिये खुराक चाहिये, कभी आत्मा को खड़ा कर लेते हैं तो कभी परमात्मा को खडा कर लेते हैं। चू कि हमारा मन जीता रहे, हम मिटना नहीं चाहते। तब मुझे आत्मा के दर्शन हो जायें और मैं भी बना रहू ये दो बातें एक साथ कैसे हो सकती हैं। एक म्यान मे दो तलवार कैसे समा सकते ? मैं भी बना रहे और आत्मा के दर्शन हो जायें ऐसा कभी नहीं हो सकता। चाहे वह मैं आत्मा के आधार पर हो चाहे परमात्मा के आधार पर हो पर मैं बना रहे और आत्मा के दर्शन हो जायें ऐसा हो नहीं सकता। इस लिये महात्मा बुद्ध को एक बात कहनी पडी कि जो मिटना चाहता है वह इस शून्य मे मिल पाता है। शून्य का अर्थ लोग करते हैं कुछ नही लेकिन शून्य का मतलब है कि जिसमे आपका मन मर चुका हो, फिर आत्मा का भी ध्यान न आवे न परमात्मा का। क्योकि जैसे मैंने कहा कि आत्मा ऐसा होता है तो आत्मा के आधार पर मन खोजने लगेगा। इस लिये बुद्ध ने कहा कि आत्मा, परमात्मा, लोक परलोक कुछ नहीं पूछना। किसी का भी कुछ विचार न करें क्योकि जैसी धारणा आप बनायेंगे उस रूप आपको दिखेगा।

ध्यान तो करेंगे पर ऐसा ध्यान कराओ कि जिसमें भगवान के दर्शन हो जायें तो दर्शन होंगे आपको आपकी धारणा रूप, पर वे भगवान के दर्शन न होंगे क्योंकि भगवान तो एक आनन्द की स्थिति का नाम है। जहाँ कि मैं मिट जाता है। तो इस मैं के मिटने की, अस्तित्व से जीने की, शून्य होने की कला ही ध्यान कहलाती है इसके आगे कहने को कुछ बचता नहीं है।

पूजा मे एक श्लोक है, उसमें आया है कि मैं अपने अष्ट कर्म सहित देव यज्ञ के अन्दर समर्पित होता हूं। मैं अपने अष्ट कर्म को इस देवअग्नि के अन्दर होमता हूं। अष्ट कर्म ही नहीं, आगे कहा कि मैं अपने इस पुण्य को भी होमता हू। मैं बचूं नहीं। भक्तिवाद में इसका नाम कहा है मैं नहीं, तू है सिर्फ। और जब हम ज्ञान के मार्ग मे आते हैं तो वहाँ कहते हैं कि मैं नहीं, सर्व, अस्तित्व यह कहा। ये सब शब्दों के भेद हैं, कहने के ढग हैं।

आदमी को अगर एक बात बतायी जाती है तो कहीं वह उसे खूंटा न बना ले इसलिये उसे दूसरी बात बतायी जाती है। फिर तीसरी बात बतायी जाती है तो खूंटा को उखाड़ने के लिये ये सब बातें कही। वैसे ये सब खूंटे बन्धन है। इस खूंटे से अतिरिक्त होना है आत्मा का मोक्ष और परमात्मा का हो जाना जब तक हम सोच रहे कि मैं परमात्मा हो जाऊँ तो परमात्मा हो जायें ऐसा नहीं हो सकता। उस यज्ञकर्ता की तरह से जो तेरा है वह मेरा हम यहाँ कहते हैं कि जो मेरा है वह तेरा है। जो भी मेरा है वह तेरा है। भक्तिवाद में यह कहा। ज्ञानवाद में हम कहेगे कि मेरा कुछ नही, अकिञ्चन। मैं कुछ भी नहीं हू।

आप लोग णमोकार मंत्र पढ़ते हैं तो वहाँ क्या पढ़ते है? अरहंते शरणं पव्वज्जामि। चत्तारि शरण पव्वज्जामि अर्थात् मैं चार की शरण को प्राप्त होता हूं। अब अगर मैं (अहंकार) भी रहे और शरण भी मिल जाय तो ऐसा नहीं हो सकता। ऐसा कहने में आपका सिर तो कुछ झुक जाता है लेकिन वहाँ मैं खड़ा रहता है। जिसको झुकना है वह नहीं झुकता है और जिसे झुकने की आवश्यकता नहीं वह झुक जाता है।

जब आप भगवान या किसी गुरु के पास जाते हैं तो फिर आप वहाँ सिर झुका कर कुछ मांगते हैं। अरे वहाँ जब आप झुक गये, मिट गये, खो गये तो फिर वहाँ मांगने वाला बचा क्या? यदि आप रहे तो उसका अर्थ है कि आप झुके नहीं है।

एक आदमी ने एक उत्सव मे जाकर एक चौकी बिछा दी और वह हमारे पास आकर बोला—बहिन जी आप वहाँ चलिये तो मैंने कहा मैं वहाँ नही जाती। तो फिर उसने कहा कि मैंने तो आपके लिये चौकी लगा दी है तो फिर मैंने कहा—चौकी लगा दी तो क्या मैं आप से बँध गई।

तो अनेक लोग किसी गुरु को या भगवान को कुछ भक्ति दिखाकर समझते हैं कि मैंने अब इनको बाँध लिया, इन पर मेरा अधिकार हो गया। उनको हाथ जोड़कर क्या आप उन पर कुछ एहसान थोपना चाहते हैं। यदि आप ऐसा करते हैं तो समझो कि आपने वहाँ हाथ ही नहीं जोड़ा, नमन ही नहीं किया। नमन का अर्थ है चढ़ जाना। उसमें कोई माँग नही होनी चाहिये, अगर आप कुछ माँग करते हैं तो इसका अर्थ है कि आप भगवान पर भी शासन करने वाले हो गये हो। आपने भगवान या गुरु के सामने अपना सिर झुकाया तो उन्हें पुण्य की झोली भर ही देना चाहिये। ऐसा यदि आप सोचते हैं तब तो फिर भगवान एक कौडी के नहीं रहे फिर तो भगवान आपके गुलाम बन गये। सो बात सोचना है कि आपने अगर इस प्रकार के भावों से सिर झुकाया है तो अभी आपका मैं (अहं) मरा नहीं है।

कहते हैं कि महात्मा बुद्ध के पास एक महारानी बड़ी श्रद्धा भक्ति से जाया करती थी। एक बार उसने राजा से (अपने पति से) कहा कि देखो महात्मा बुद्ध के पास सभी जाते हैं, एक बार तुम भी उनके पास हो आवो, आत्म-कल्याण की कोई बात तुम भी उनसे सुन आवो। तो राजा यद्यपि जाना नहीं चाहता था लेकिन रानी के तीव्र आग्रह से उसे जाना ही पड़ा तो राजा ने सोचा कि मैं किस तरह से जाऊँ, अन्य लोगो की अपेक्षा कुछ विशेषता तो मुझ मे होनी ही चाहिये। सो क्या किया कि अपने हाथों मे बहुत ही सुन्दर पुष्प लेकर और साथ ही बहुत कीमती कोहनूर जैसा हीरा लेकर महात्मा बुद्ध के दर्शनार्थ पहुंचा।

पहुंचते ही उसने सर्वप्रथम सर्वश्रेष्ठ पुष्पो को ही महात्मा बुद्ध के सम्मुख चढ़ाना चाहा तो उस समय भी वह इधर-उधर चारों तरफ देखने लगा कि सभी लोग मुझे देख रहे या नहीं। वह सोच रहा था कि इतने सुन्दर पुष्प यदि मैंने चढ़ा दिये और किसी ने मेरा नाम तक न लिया तो लाभ, यह सोचकर वह इधर-उधर देखकर चढ़ाने - ने कहा कि इन्हें नीचे गिरा दे। यह बात

बुद्ध को हमारे कुछ करने नहीं देते इसलिये गिराने की बात कही। यह सोच कर उस राजा ने अपनी जेब से हीरा निकाल कर महात्मा बुद्ध के सामने चढ़ाना चाहा तो फिर वह चारों ओर देखने लगा कि सभी लोग देख रहे कि नहीं। यदि इतना कीमती हीरा मैंने चढ़ा दिया और सभी लोगों ने जान न पाया कि यह हीरा राजा ने चढ़ाया तो फिर मेरे चढ़ाने से लाभ क्या? इन भावों से वह राजा वह हीरा चढ़ाने लगा।

वह हीरा इतना कीमती था कि उसकी चमक से उस समय उसकी आँखें चौंधिया रही थी और वह स्वयं मुदित हो रहा था, तो जब वह उसे चढ़ाने को हुआ तो फिर महात्मा बुद्ध ने कहा कि इसे नीचे गिरा दे। तो वहाँ भी राजा को कुछ शक हुआ। वह सोचने लगा कि यह महात्मा आखिर मूर्ख ही तो है, यह क्या जाने इस हीरे की कीमत? यह तो इसे पत्थर समझ रहा होगा, तभी तो नीचे गिराने की बात कह रहा। राजा को कुछ हिम्मत तो न पड़ी महात्मा बुद्ध से पूछने की कि मुझसे गिराने की बात क्यों कही, सो हाथ जोड़कर बोले—महाराज अब मेरे पास कुछ नहीं बचा जो मैं आपको भेंट कर सकूँ।

तो वहीं पास बैठे हुए किसी साधु ने कहा—अरे तेरे पास जो मस्तक है उसे नीचे गिरा दे। अब उस साधु की बात सुनकर राजा की समझ में सारी बात आ गई और महात्मा बुद्ध के आगे अपना मस्तक झुका दिया। उस समय फिर कहा महात्मा बुद्ध ने कि इसे नीचे गिरा दे। अब तो राजा के मन में फिर संशय हुआ।

तो उस समय साधु ने फिर कहा—अरे सिर्फ मस्तक झुकाने भर की बात नहीं है, तुम्हारे अन्दर जो अहंकार है उसे नीचे गिरा दो। राजा की समझ में सब बात आ गई।

तो ऐसे ही हम आप लोग ध्यान करते समय भी इस अहंकार को लिये बैठे रहते हैं, ध्यान करते समय भी हमारा मन खूँटों से बँधा रहता है। हम ध्यान करते हैं लेकिन इन खूँटों से हमारा मन बँधा रहता है, तो जब तक हमारा मन विसर्जित नहीं होता, मिट नहीं जाता, जब तक हम भक्ति के मार्ग में बढ़ नहीं जाते तब तक बिन्दु सागर नहीं हो सकता, आत्मा परमात्मा नहीं हो सकता, सब मिटकर शून्य व्यापक नहीं हो सकता। उसके लिए हमें मिटना पड़ेगा। इस भावना के साथ शरणं पव्वज्जामि शब्द बोलते ही अपना मस्तक, अपना अहंकार झुक जाना चाहिये।

कभी कोई मन्दिर में न हो देखने वाला सिर्फ आप अकेले हो तो बड़ी जल्दी-जल्दी में पाठ पढ़कर नमस्कार करके चल देते हैं पर जहाँ बहुत से लोग देखने वाले हो तो वहाँ फिर आप बड़े अच्छे ढंग से पूजा पाठ विनती वगैरह करते हैं। अगर कोई पत्रकार या कोई फोटोग्राफर आ जाये तब तो फिर आपका ढंग और भी बढ़िया बन जाता है। अगर कोई टेलीविजन सेन्टर वाला टी वी मे दिखाने के लिए वहाँ का सारा चित्रण खीचने आ जाय तब तो फिर उस समय के ढंग का तो कहना ही क्या है ?

तो जहाँ इस प्रकार की भक्ति हो रही हो उसे भक्ति नहीं कहते, वह तो भक्ति का नाटक करना है। अरे भक्ति तो वह है जहाँ कोई दूसरा चाहे हो या न हो, ध्यान में आये कि मैं तो मिट गया हू, किसी समय मेरा अहंकार मिट जाय, मैं मिट जाय तो आनन्द आता है, धीरे-धीरे मैं मिटेगा, अहंकार गिरेगा तो आप मे पानी बन जायगा। अभी तो बरफ की तरह है लेकिन जब वह पिघलता है तो पानी बन जाता है। वहाँ फिर बड़ी शीतलता का अनुभव होता है।

वहाँ दिखाई देने वाला कुछ भी नहीं है, देखने वाला भी कोई दूसरा नहीं है। स्वय ही उस शीतलता का अनुभव करता है। यह आनन्द स्वर्ग मे कहाँ धरा है, तभी तो विवेकीजन इस स्वर्ग सुख की भी चाह नहीं करते।

दु ख मे कम से कम भगवान की याद तो बनी रहती है। और स्वर्ग मे जहाँ कि मनमाने सुख होते वहाँ भगवान की सुध नहीं हो पाती, उस सुख मे रहकर पतन की ओर जाने के अधिक अवसर मिलते हैं इसलिए विवेकी जनों ने स्वर्ग की चाह भी नहीं की।

तो कहने का मतलब यहाँ यह है कि हम आप यहाँ के सुख साधनों मे मौज न मानें, अभी तक हम आपके भीतर जो वह की बरफ है वह पिघली नहीं है। जब तक वह पिघलती नहीं है तब तक अपने भीतर की शून्यता का, सरलता का, तरलता का अनुभव नहीं किया जा सकता।

मृत्यु एक महोत्सव है

एक बार एक साधु के पास एक गृहस्थ ने जाकर पूछा कि क्या बात है जो आपको कभी क्रोध नही आता ? क्या कारण है कि आप को कभी लोभ नहीं पकड़ता, क्या कारण है कि आप को कभी मान नहीं होता······? तो साधु ने उस गृहस्थ के प्रश्न सुनकर उसे कोई उत्तर तो नही दिया और स्वयं उदास होकर बैठ गया। फिर उस गृहस्थ ने प्रश्न किया कि महाराज आप कुछ चिन्तित से क्यो हो गए ? तो साधु ने कहा कि मुझे चिन्ता यह जानकर हो गई कि आपकी आयु सिर्फ ७ दिन की रह गई। तो आश्चर्य मे आकर गृहस्थ बोला—सिर्फ ७ दिन की······ हाँ ७ दिन की। अब तुम पूछो प्रश्न। तो गृहस्थ ने कहा—अरे जब सिर्फ ७ दिन का हो मेरा जीवन शेष रह गया तो अब क्या कुछ पूछना ? मैंने तो वैसे ही आप से पूछ लिया था। जो प्रश्न प्राणों में होता है वह कभी भूलता नहीं है, उसकी कभी महत्ता नहीं खोती है, वह प्रश्न तो वैसे ही पूछ लिया गया था, अब मुझे पूछने की कुछ आवश्यकता नहीं महसूस होती। अब आप आज्ञा दीजिये मैं जाऊँ और अपनी बची हुई इस ७ दिन की जिन्दगी मे सारी सम्पत्ति की सारे लेन-देन की सब व्यवस्था बना दूँ।

सो साधु की आज्ञा पाकर वह गृहस्थ अपने घर पहुंचा और बड़ी जल्दी-जल्दी से सब प्रकार की व्यवस्थायें करना शुरू कर दिया। अब तो उन ७ दिनों के अन्दर उसे न तो क्रोध आये, न मान आये, न लोभ आये क्योंकि वह यह समझता था कि इस ७ दिन की शेष जिन्दगी में ये सब क्या-क्या करना ?

तो उन ७ दिनो के अन्दर ही वह साधु स्वयं उस गृहस्थ के घर पहुँचा और उस गृहस्थ से कहा—भाई अब मैं आ गया हूं तुम्हारे प्रश्न का उत्तर देने के लिये। उत्तर तो मैं बाद मे दूँगा पहले तो मैं ही तुम से पूछता हूँ कि बताओ इन सात दिनों के अन्दर तुमने कितना क्रोध किया, कितना मान किया, और कितना लोभ किया ? तो उसने उत्तर दिया कि महाराज इन

सात दिनों में मैंने जरा भी क्रोध, मान, लोभ आदि नहीं किया क्योंकि मैंने सोच लिया था कि इस शेष बची सात दिन की जिन्दगी में ये क्यों करना ? तो साधु ने कहा—बस यही उत्तर तो तेरे लिये मेरा है। तूने मेरे से पूछा था कि आपको क्रोध, मान, लोभ आदि क्यों नहीं आते ? तो इसका उत्तर है कि मुझे भी अपनी मौत का दिन निकट ही दिखाई देता है, मैं सोचता हूं कि इस थोड़ी सी जिन्दगी के लिये इन्हें क्यों करना ?

जब किसी के मौत का समय आता है तो उस समय उसके मन में क्रोध, माना, लोभ आदि की सारी बातें फीकी पड़ जाती हैं। तो साधु ने कहा कि ७ दिन की जो हमने तुम्हारी आयु कही था सो केवल तुम्हारे प्रश्न का उत्तर देने के लिये कहा था। कही ७ दिन की ही तुम्हारी जिन्दगी शेष हो सो बात नहीं। तो उस गृहस्थ ने कहा—ठीक है, आपने तो हमें उत्तर देने के लिये कहा था लेकिन मैंने तो अब समझ लिया है कि मैं तो मर ही चुका, अब मैं वह नहीं हू जो पहले था। अब तो मैं दूसरा व्यक्ति हूं। पहले मेरे में अज्ञान दशा थी, अब ७ दिन के अन्दर मेरा वह अज्ञान ढक चुका है। मेरा अज्ञान मर चुका है, और ज्ञान पैदा हो गया है।

तो जिस व्यक्ति के सामने यह मौत खड़ी हो उससे फिर जिन्दगी में कोई पाप नहीं होता, उससे अनर्गल सचय नहीं होता, किसी से कोई कलह नहीं होता।

इसीलिये तो यूनान के एक व्यक्ति अरस्तु ने एक बात कही थी कि अगर दुनिया में मौत न होती तो धर्म भी न होता। मौत से धर्म का आविष्कार होता है। क्योंकि जब आदमी की मौत आती है तो आँखों देखी बात है कि जिन जिन चीजों को वह अपनी मानता था उनसे उसका मन हट जाता है। जो कुछ भी उसने स्थायी समझा था वह सब उसे अस्थाई दिखाई देती है। यह मृत्यु आदमी को बिल्कुल निहत्था बना देती है।

मोहम्मद गजनवी ने सोचा था कि मैंने इस दुनिया में लूटमार करके बड़े खजाने भर लिये हैं, लेकिन जब वह मरने लगा तो उसने कहा कि मेरा सारा खजाना सामने रख दो। जब सारा खजाना उसके सामने रख दिया गया तो उसे देखकर वह रो पड़ा। सोचने लगा कि देखो मैंने कितने ही घर लूटे, मन्दिर लूटे, इतनी बड़ी सम्पत्ति लूट मार कर इकट्ठी कर लिया पर सारी सम्पत्ति मिलकर भी मुझे मौत से न बचा पायी। और उस

सारी सम्पत्ति की एक कौड़ी भी मेरे साथ नहीं जा रही है। सब यहीं के यहीं पड़े रह गये। उसे यों दिखाई दे रहा था कि मैं बिल्कुल कंगाल होकर जा रहा हूं। यहां तक कि एक लंगोटी तक भी साथ नहीं जा रही है। धन संचय किया था इसलिये कि मेरी सुरक्षा हो सके पर कुछ भी रक्षा न कर सका।

ऐसे ही सम्राट सिकन्दर भी जब मरने लगा तो उसे भी ऐसा ही दिखाई पड़ा। अपनी मृत्यु के समय उसने लोगों से कहा था कि मेरे हाथ अर्थी के बाहर निकाल देना ताकि दुनिया समझ ले कि सम्राट सिकन्दर ने बड़ा अन्याय करके जो वैभव संचय किया था उसे छोड़कर आज खाली हाथ जा रहा है।

तो यह मृत्यु बड़ी उपकारी है। इसमें तो महोत्सव मनाना चाहिये। लोक में तो छोटी छोटी बातों के भी उत्सव मनाये जाते हैं, इस मृत्यु के समय तो महोत्सव मनाना चाहिये। लोग करते हैं इसका उल्टा। महोत्सव मनाते हैं जन्म के समय। अरे मृत्यु वह एक क्षण है जो कि हमें जीवन देता है। मृत्यु वह क्षण है जो हमे विनश्वर से अविनश्वर में प्रवेश होने की विधि बतलाता है।

सम्राट सिकन्दर जिस समय भारत से लौट रहा था, झेलम नदी पार कर रहा था तो उसे पेचिस लग गई। उसके पास उस समय हकीम लुकमान भी था। सिकन्दर को अनेकों औषधियां दी गई लेकिन उनसे उसे कोई फायदा नहीं हो रहा था। तो सिकन्दर ने कहा वैद्यराज जी हमें लगता है कि आपकी औषधि में अब कुछ शक्ति नहीं रही तो लुकमान वैद्य ने कहा—नहीं, ऐसी बात तो नहीं है, हमारी औषधि में बहुत बड़ी शक्ति है। यदि आप इसकी परीक्षा लेना चाहते हैं तो अभी परीक्षा करके दिखाये देता हूं। यह कहकर क्या किया कि नदी के जल में एक औषधि की पुड़िया डाल दी तो उस औषधि का प्रभाव यह हुआ कि जितनी जगह में वह औषधि फैल गई उतनी जगह का पानी जम गया। तो उस समय वैद्य ने कहा—देखिये इस औषधि से नदी का पानी तो जम गया, इतनी बड़ी शक्ति है इसमें लेकिन आपके पेट का पानी इससे नहीं जमा। तो हमें लगता है कि आपकी मौत का समय अब निकट आ गया। उस समय सिकन्दर को ऐसा लगा कि अब मेरा वह सारा पौरुष, मेरे शरीर की वह सारी शक्ति कहाँ गई जो मुझे मरने से बचा न सकी।

तो मृत्यु के समय आपको याद आता है कि हम जो धन कमाते हैं वह भी यहीं रहता है, जो धन कमाते हैं वह भी यहीं रहता है और जिस शरीर को सजाते हैं, जिसको हम अपना समझते हैं वह भी यहीं रह जाता है। कुछ भी साथ नहीं देता।

तो अब क्या चीज है जो बची, यह प्रश्न पैदा होता है। जितने भी योगी हुये हैं उन सब ने ऐसी ही घटनाओं को देखा था। जहाँ पर आदमी का अह टूट जाता है वहाँ उसके मन मे यह जिज्ञासा पैदा होती है कि इसके बाद क्या है।

भगवान ऋषभदेव ने एक देवांगनाका नृत्य देखा था। उनके देखते देखते ही वह विलीन हो गई। उस समय ऋषभदेव के मन मे यह प्रश्न उठा कि वह कौन सी चीज थी जो विदा हो गई, शरीर ज्यों का त्यों पड़ा रह गया। भगवान महावीर ने देखा कि अभी अभी जो चीज चमक रही थी वह क्या थी? सत्य क्या है? ऐसा एक प्रश्न उनके मन मे पैदा हुआ। आप लोग यह नहीं सोचते कि सत्य क्या है। आप सोचते हैं कि सत्य यह है, यह अन्तर है। भगवान महावीर ने या किसी योगी ने सोचा कि सत्य क्या है पर आप लोग सोचते हैं कि सत्य यह है। जो गीता मे लिखा है, रामायण में लिखा है, समय सार मे लिखा है वहाँ आप सोचते हैं कि सत्य यह है और उन्होने सोचा कि सत्य क्या है?

यह प्रश्न कि सत्य क्या है? यह एक वैज्ञानिक का प्रश्न है, एक खोजने वाले का प्रश्न है और वह फिर उसे खोज भी लेगा और जहाँ माना कि सत्य यह है तो फिर वह वहीं रुक जाता है।

क्या ऐसा नहीं होता कि जिस समय आपकी मृत्यु आने लगे उस समय आप यह पुकार बैठें कि मृत्यु तो शरीर की आयेगी, आत्मा की मृत्यु न आयेगी। आपने चूंकि सुन रखा है कि आत्मा की मृत्यु नहीं होती, आत्मा कभी मरती नही है। सिर्फ शरीर बदल जाता है। जैसे जीर्णवस्त्र उतारकर नये वस्त्र धारण कर लिये जाते ऐसे ही जीर्ण शरीर-बदलकर नया शरीर धारण कर लिया जाता है। आत्मा कभी मरता नही है, आत्मा अमर है, अविनाशी है—"अब हम अमर भये न मरेंगे, ऐसा जाप करने लगते हैं, और फिर क्या होता है कि आँखें मूँद लेते हैं।

हम सिकुड़ जाते हैं। मौत का नाम सुनकर कुछ भय भी आ गया है कि मौत बड़ी डरावनी है, मौत में बड़ा दुःख होता है मौत बड़ी कष्टदायी है, इसलिए जब मौत आती है तो हम भयभीत हो जाते हैं। यही चित्त में ऐसा बैठ जाता है कि वास्तव में मृत्यु ऐसी चीज है।

जैसे आप स्वप्न की स्थिति में प्रवेश करते हैं तो वहाँ इस लोक का आपको कुछ भी याद नहीं रहता। इस लोक की कुछ भी चीज स्वप्न में आपके साथ नहीं होती है बल्कि कभी-कभी तो आप स्वप्न में इतना तक दुःखी हो जाते हैं जितना कि दुःख आपको मृत्यु के समय नहीं हो सकता।

तो जागरण की बात यही गई कि इस मृत्यु से भयभीत न होना पहली बात। हमको धारणा दी गई कि यह मृत्यु बड़ी भयंकर चीज है इसलिये मृत्यु का नाम सुनकर हम डर जाते हैं। मौत हमें उठा लेती है और हम जीवन से चूक जाते हैं इसलिए पहला सूत्र यह है कि मृत्यु से डरने की कुछ बात नहीं।

जैसे स्वप्न में इस लोक की कोई चीज साथ नहीं जाती ऐसे ही मृत्यु होने पर भी संसार की कोई चीज हमारे साथ नहीं जाती है, यहीं बाहर पड़ी रह जाती है। जैसे संसार में सो जाने पर स्वप्न में हमको किसी की याद नहीं आती है इसी प्रकार इस शरीर को छोड़ देने के पश्चात दुनिया की कोई चीज हमें याद नहीं आती। ऐसा ताजे बनकर जाते हैं। पुरानी स्मृतियाँ सब यहीं छोड़कर जाते हैं नई जिन्दगी को पाने के लिये, लेकिन जाते हैं निपट अकेले।

तो पहली बात यह है कि इस मृत्यु से डरने की कुछ बात नहीं है। मृत्यु को महोत्सव हम बनायें। अब कब बनायें महोत्सव जबकि यह धारणा बने कि इस मृत्यु में कोई भय नहीं है। मृत्यु में कोई डर नहीं है। मृत्यु ऐसी है जैसे कि नये घर का प्रवेश। मन में खुशी हो, दुःख की बात न हो। और मृत्यु में हम कब हँसी खुशी से प्रवेश करते हैं जबकि हमको पता हो कि हमारी मृत्यु कब है।

अब कठिनाई तो यहीं खड़ी होती है कि मृत्यु आयेगी सबकी, लेकिन मृत्यु कब आयगी यह नहीं पता है। मृत्यु तो इस समय भी आ सकती और कुछ वर्ष बाद भी आ सकती। इसलिये आवश्यकता इस बात की है कि हर क्षण जागृत रहे क्योंकि किसी भी समय मृत्यु आ सकती है। कोई इसका ज्ञान

नहीं है कि किस समय आये। और जब मृत्यु किसी भी समय आ सकती है, अब भी आ सकती है ऐसा दिखाई पड गया तो फिर हर समय हम जागृत रहे।

प्रतीति मे यह बात आये कि हमारी मृत्यु तो अब भी आ सकती है लेकिन प्रतीति मे यह बात नही आ पाती। कुछ दिखाई देता है कि मृत्यु आती है लेकिन मेरी नहीं आती दूसरो की आती ऐसा दिखता है, ऐसा प्रतीति मे नहीं आता कि मेरी मृत्यु आती है। हम आगम मे पढकर यह सोच लेते हैं कि मृत्यु मेरी आयगी लेकिन हमको लगता नहीं है कि आयगी।

कोई आदमी विस्तर पर सो रहा था, वह बड़ा बीमार था। उसके घर के सब लोग उसके पास ही बैठे थे। अचानक उसकी आँख खुली तो वह अपनी पत्नी से पूछ बैठा कि बड़ा बेटा कहाँ है ? तो स्त्री ने कहा यही आपके सिरहाने तो बैठा है, आप चिन्ता न करें, आराम से लेटे रहिये। फिर उस व्यक्ति ने पूछा कि छोटा और मझला ये दोनो बच्चे कहाँ हैं ? तो फिर स्त्री ने कहा कि ये दोनों बच्चे भी आपके पैरो की तरफ बैठे हैं। आप चिन्ता न करें। तो वह व्यक्ति तेजी से उठकर बैठ गया और बोला—जब तीनो बच्चे यहीं बैठे हैं तो फिर खेत पर कौन गया होगा ?

तो अतिम श्वांस तक सबको यही रहता है कि शायद मैं बच जाऊँ। मानलो १०–५ साल जी भी जायें तो भी अपनी चाबी दूसरो को नहीं सम्हलवा पाते। किसी की शक्ति बिलकुल क्षीण हो गई हो तो उस समय भी वह इच्छा करता कि उठकर देख लें कि चाभी सिरहाने ठीक-ठीक धरी है कि नहीं। बराबर उसका ख्याल रहता है। यदि किसी को अपनी मृत्यु का क्षण दिखाई पड़ जाय तो उसे फिर इन बाहरी बातों का ख्याल नहीं रहता है। दिखाई हर एक को पड सकता। बूढों को भी, जवानों को भी किसी भी क्षण दिखाई पड सकता।

महात्मा बुद्ध को लोगों ने वृद्धावस्था का परिचय कराने से दूर कर रखा था। एक दिन क्या हुआ कि वे किसी युवा सम्मेलन मे भाग लेने जा रहे थे तो उन्होंने मार्ग मे देखा कि एक बूढ़ा व्यक्ति जा रहा था उसे देखकर बुद्ध ने सारथी से पूछा कि यह कौन है ? तो सारथी ने बताया कि यह एक बूढ़ा व्यक्ति है"' बूढ़ा कौन ? "'जिसके शरीर की सारी इन्द्रियां शिथिल हो जाती हैं, सारा शरीर क्षीण हो जाता है वह होता है बूढ़ा।" तो क्या ऐसा बूढ़ा

सभी को ऐसा होना पड़ता है ? हाँ सभी को एक दिन बूढ़ा होना पड़ता है।... तो क्या मैं भी कभी ऐसा ही बूढ़ा हो जाऊँगा ?... हाँ तब तो प्रकृति का नियम है। यह बात सुनते ही बुद्ध का मन उदास हो गया।

कुछ और आगे बढ़े तब क्या देखा कि एक मुर्दा अर्थी पर सब लोग श्मशान लिये जा रहे थे, तो पूछा बुद्ध ने सारथी से यह क्या है ? तो सारथी ने बताया कि यह मुर्दा है।... मुर्दा क्या चीज है ?... जब कोई आदमी मर जाता है तो उसे मुर्दा कहते हैं।... तो क्या सबको मरना पड़ता है ? हाँ एक दिन सभी को मरना पड़ता है।... तो क्या मैं भी मर जाऊँगा ? हाँ यह तो प्रकृति का नियम है।

बस इतनी बात सुनकर ही बुद्ध को अपनी मृत्यु का यह ज्ञान दिखाई पड़ गया। चाहे अभी यह मृत्यु आ जाये चाहे १०-५ साल बाद, पर मृत्यु अवश्य आयगी। इस प्रकार का ज्ञान होते पर बुद्ध ने एक सुन्दरी जो भी औरत थी, वह छोड़ दी और उन्होंने देखा कि मृत्यु के बाद क्या है ?

किसी को यदि मृत्यु का यह ज्ञान मिल जाय तो फिर उसे लोभ नहीं पकड़ सकता, मोह नहीं पकड़ सकता। वह सोचेगा कि चार दिन का यह मेला है, जिसमें लड़ना झगड़ना, यहाँ तो एक-एक इञ्च जगह के लिये झगड़े थे वे सब छोड़कर चले गए। ऐसा जब दिखाई देता है तो वहाँ न दुःख होता है, न लोभ करता है। वह तो आनन्द से जाता है।

आप लोगों को पता है कि अगर आप लोग रेलगाड़ी में एक आध घंटे का सफर करते हैं तो उसके अन्दर भी चाकू चल जाते हैं, मोह सुजान हो जाते हैं। एक आध घण्टे की सफर में भी लोग झगड़ा कर डालते हैं, तो ये तीव्र मोह के लक्षण हैं। अरे एक घण्टे का आपको सफर करना है तो चाहे उसमें बैठने को स्थान मिले तो न मिले तो, आखिर एक ही घंटे की तो बात है किसी भी तरह बिता लेने में क्या बिगड़ जाता है लेकिन आप लोग इस रेलगाड़ी में भी अपनी मलकियत समझ बैठते हैं। और जब मलकियत बना लेते हैं तो वहाँ बड़े-बड़े झगड़े खड़े हो जाते हैं। भला बताओ एक घण्टे की यात्रा में क्या फर्क पड़ा जाता है लेकिन जिसे मोह है वह एक घण्टे की सफर में भी लड़ सकता और जिसका अज्ञान दूर हो गया वह बड़ी शान्तिपूर्वक अपना सफर तय कर लेता है।

आज के समय में भी जब किसी को मौत दिखाई पड़ जाती है तो उसके

जीवन में उसकी मूर्छा टूट जाती है। जिन-जिन चीजों मे पहले वह मोह करता था उनमे फिर उसे मोह नहीं रहता। उसका अज्ञान दूर होता है और अज्ञान के दूर होने से जितने अज्ञान से उत्पन्न होने वाले कर्म हैं वे सब छूट जाते हैं एक बात।

दूसरी बात यह है कि मृत्यु से भय खाने की कुछ बात नहीं है। उससे कोई दुख नहीं होता। उससे अधिक दुख तो हम अपनी जिन्दगी में अनेक अवसरों मे सहन कर लेते हैं।

तीसरी बात क्या है कि मृत्यु क्या है इसे हम खुद अपनी आँखों से देखें। अगर हम वह क्षण चूक गये तो हमने जीवन को पाने का अवसर खो दिया तो मृत्यु से धर्म का प्रारम्भ होता है और वही धर्म की समाप्ति होनी है।

एक बार एक कोई महिला मेरे पास आयी और बोली कि आज तो मैं रात को बहुत घबडाई। मुझे रात्रि मे कुछ ऐसा लगा कि मेरी मौत आ गई तब से फिर मैं रात भर सो नहीं सकी। नींद ही नही आयी। जब कोई चूहा भी खटकता तो मैं बडी परेशान हो जाती, चिन्तित हो जाती।

तो मैंने उसकी इस घटना पर विचार किया कि इस मृत्यु को महोत्सव बनाना अलग बात है और भय खाना अलग बात है। अब आप मृत्यु से भय करेंगे तो आपको चिन्ता खडी हो जायगी। यह भय क्यों आता है? क्योंकि हम सोचते हैं कि मृत्यु मे बडा दुःख होगा। इसलिए मृत्यु का नाम सुनते ही हमको कम्पन पैदा होता है, भय पैदा होता है, चिन्तन पैदा होता है तो समझना कि अभी अज्ञान में है। आपको लगा कि अभी मृत्यु आ रही, उस समय अगर आप डरे तो समझलो कि आपको अभी ज्ञान नही हुआ।

ज्ञान जगने पर कुशल प्रहरी की तरह खडे होकर कह उठेंगे कि आने दो मृत्यु को, देखेंगे कि वह मृत्यु क्या है। जैसे एक कुशल प्रहरी शत्रु की आवाज सुनते ही तलवार लेकर डटकर खडा हो जाता है, वह उस समय आंखे बन्द करके बैठता नहीं है, वह बिल्कुल निर्भय होकर खडा हो जाता कि देखेंगे वह शत्रु क्या है, और जब वह ऐसी धीरता से दृढता से देखने लगेगा तो वहाँ शत्रु की शक्ति क्षीण होने लगती है, लेकिन जो प्रहरी कायर की तरह खड़ा हो तो वहा शत्रु बलवान हो जाता है और उसे दबा लेता है। ठीक यही बात यहाँ है। अगर आप मृत्यु की बात देखकर डर गए हो तो मृत्यु आप पर हावी हो जायगी और अगर आप बड़ी प्रसन्नता से देखें कि क्या है मृत्यु,

कुछ खिला पिलाकर भेजूं पर इस समय रात्रि मे क्या चीज इन्हें खिला पिला दूं यह विचार उसके मन मे आया। तो ख्याल आया कि शाम को दूध बच गया था सो इस दूध की लस्सी बनाकर इन्हे पिला दूं :

यह सोचकर उस वृद्धा ने रात्रि में ही उस दूध की लस्सी बिलोकर दोनों नवयुवको को पिला दी और प्रातःकाल होते ही वे प्रस्थान कर गए। इधर प्रातःकाल सूर्योदय होने पर उस वृद्धा ने क्या देखा कि उस लस्सी पकाने वाले बर्तन में एक छिपकली का बच्चा मरा हुआ पडा और उस बर्तन मे जो लस्सी बच रही थी उसमे कुछ नीलापन सा था।

वह दृश्य देखकर वृद्धा बडी दुःखी हुई, सोचा अहो रात्रि मे उन दोनो नवयुवको को लस्सी पिलाकर मैंने बडा अनर्थ किया। छिपकली का विष उनके चढ़ गया होगा जिससे रास्ते मे ही दोनो नवयुवक गुजर गए होंगे। यह ख्याल उस वृद्धा को बडा चिन्तित कर रहा था और यह ख्याल उसका ऐसा बन गया कि बराबर दो साल तक चलता रहा। उधर उन दोनों नवयुवकों को कुछ भी नही हुआ था। बडी अच्छी तरह से सब जगह की वन्दना करके अपने घर चले गए।

दो साल बाद वही दोनो नवयुवक फिर उसी झोपडी के पास आये, उस वृद्धा से मिले पर वृद्धा ने उन्हे पहचाना ही नही तो उन्होंने खुद कहा—माँ हम दोनो वही व्यक्ति हैं। जो एक रात अभी दो वर्ष पहले आपकी इस कुटिया मे ठहर गए थे। तो यह बात सुनकर वृद्धा आश्चर्य पूर्वक बोली—बेटे तुम दोनो अभी भी जीवित हो, हमे तो बडी चिन्ता हो गई थी। तो उन्होंने पूछा क्या बात थी ? तो वृद्धा ने वह घटना सुनायी। तो उस घटना को सुनते ही उन दोनो नवयुवको की मृत्यु हो गई।

आदमी दुःख से उतना नही मरता जितना कि भय से मरता है। मौत आने पर वह भयभीत हो जाता है, उसकी इन्द्रियां शिथिल हो जाती हैं, क्षीण हो जाती हैं और वह मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

तो मैं कहती कि यह मौत इतना भय देने वाली नही है। हम मौत से सिकुडें नही, भयभीत न हों, इस भयभीत होने वाली धारणा को छोडें, साहसी बनें और हर क्षण जागृत रहें। जब हम जागृत होने जायेंगे तो मोह के बन्धन टूटेंगे।

तो धर्म की शुरुआत मृत्यु मे होती है और धर्म का अन्त भी मृत्यु मे होता है। इस मृत्यु के अन्त मे ही तो निर्वाण महोत्सव मे प्रवेश होना है जिसके बाद फिर कभी मृत्यु नहीं होती। यह छोटी मृत्यु उस महान मृत्यु को पाने की विधि है।

शिष्य होना एक कला है

एक बार एक व्यक्ति सुबह सुबह एक नदी के किनारे घूमने के लिये गया। ठंडा मौसम था, सुहावना दृश्य था, बड़ा आनन्दित था वह। अकस्मात उसे उस नदी के किनारे घूमते हुये पानी में प्रकाश दिखाई दिया जैसे मानो वह कोई कोहनूर हीरा हो। उसकी आँखें रुकीं, मन रुका, सोचने लगा कि मैं इसको कैसे पाऊँ, और एकदम उसे ख्याल आया कि आखिर पानी में ही तो है और कोई अधिक पानी गहरा भी नहीं है तो उसने उसे पाने के लिये डुबकी लगायी लेकिन जब वह लौटा तो खाली हाथ। वह फिर वहीं किनारे बैठा देख रहा था कि पानी में वही प्रकाश था, वही चमक थी, वह हीरा चमक रहा है।

फिर उसने सोचा कि शायद कोई निशाना चूक गया, और फिर उसने डुबकी लगायी, जब बाहर आया तो फिर उसके खाली हाथ थे। यों कितनी बार उसने डुबकी लगायी कुछ कहा नहीं जा सकता लेकिन हर बार उसका हाथ खाली रहा।

तो अब वह वहाँ से हटता भी न था और डुबकी लगाने की उसमें हिम्मत भी अब नहीं रह गई थी। सो वह निराश होकर वहीं बैठा हुआ कुछ सोच रहा था।

वह सोच ही रहा था कि इतने में उसे कोई व्यक्ति उधर आता दिखाई दिया उसे देखकर तो उसका दिल और भी धड़कने लगा। सोचा कहीं ऐसा न हो कि वह आने वाला व्यक्ति उसे छीन ले। यह सोच कर वह चुप बैठ गया। उधर वह आगतुक उसके पास आ ही गया और पूछा—कहो भाई तुम किसकी तलाश में उदास बैठे हो। उसने कुछ सोचकर क्या जवाब दिया कि भाई कहीं मेरा हीरा खो गया है मैं उसकी तलाश में चिन्तातुर बना फिर रहा हू।

देखिये बात उसने बड़ी अच्छी कही। यदि वह कहता कि पानी में गिर गया तो वह दूसरा व्यक्ति भी उस पर अपना अधिकार जमा सकता था सो उसने यही कहा कि कहीं मेरा हीरा खो गया है। तो उस आगतुंक ने फिर प्रश्न किया कि तुमने उसे कहाँ ढूंढा है ? तो उसने बताया कि पानी में मैंने डुबकी

लगायी लेकिन मिला नही। तो आगन्तुक ने कहा—अरे तुम बड़े मूर्ख आदमी हो। पानी मे कहाँ धरा है वह हीरा ? तुम तो जिस पेड़ के नीचे गड़े हो उस पेड पर चढ जावो और उस पेड की उस छोटी टहनी मे लगे हुए पत्ते मे जाकर देखो—वहाँ हो सकता है वह हीरा।

बात वहाँ क्या थी कि किसी मकडी ने उस पत्ती मे एक जाल पूरा था और उस कोहनूर हीरे को नीचे से उठाकर ऊपर ले गई थी, उसे उस जाल में बंद कर रखा था और उसका प्रतिबिम्ब पानी मे पड रहा था। आखिर उस व्यक्ति ने उस पत्ती मे से वह कोहनूर हीरा पा लिया।

तो देखिये वह कोहनूर हीरा कही दूर न था, उसके बिल्कुल पास था लेकिन उसका पता न होने से वह हैरान होता फिर ठीक यही बात तो आपकी जिन्दगी मे हो रही है। लोग कहते हैं ना—"कस्तूरी कुण्डल बसो, मृग ढूंढे बन माहि' याने हिरन की नाभि मे ही तो कस्तूरी है जिसकी महक से वह प्रफुल्लित होता है पर उसका पता न होने से वह हिरण उस कस्तूरी को वन-वन ढूंढता फिरता है।

आँखें अपने निकट का नही देखती, सदा दूर देखती है।

है सुखबोई आप मे, जान सके नहि कोय।

भरम लगे भरमत फिरे, तीरथ, व्रत सब कोय ॥

सब लोग अपने आनन्द स्वरूप को बाहर-बाहर ढूढते फिर रहे हैं लेकिन है वह अपने आपमे। भ्रम के वश होकर इधर-उधर यह मनुष्य घूम रहा है। सुगन्ध तो आपके भीतर है लेकिन ढूंढ रहे बाहर। और एक बात है—थोडी बहुत सुगन्ध तो आ ही जाती है। जैसे पानी मे थोडा प्रतिबिम्ब पडता है ऐसे ही कुछ मन हमारा इन बाहरी सासारिक पदार्थों मे प्रतिबिम्बित हो जाता है।

हम डुबकी लगाते है इन इन्द्रियो के विषयो मे और जब डुबकी लगाते हैं तो वहाँ मिलता क्या ? कुछ नही। निराश होकर लौट आते हैं। वह था प्रतिबिम्ब वह तो भीतर बैठा है और हम देखना चाहते हैं उसे बाहर मे। वह इस जीव मे फस गया है। वह थोड़े सुख मे सन्तुष्ट नहीं होता।

जैसे कोई राजा एक साधु की कुटी मे पहुचा तो उस समय साधु वहाँ पर न था। उसके शिष्य ने कहा—गुरुदेव तो अभी यहाँ नहीं हैं और मैं आसन बिछाये देता हू उस पर आप बैठिये। शिष्य ने एक आसन लाकर बिछा दिया पर राजा उस पर नही बैठा। दुबारा शिष्य ने चटाई लाकर बिछायी तो

उस पर भी नहीं बैठा। राजा यों ही गद्दे-गद्दे बगीचे में घूमता रहा।

कुछ देर बाद जब साधु आया तो उससे मिल कर राजा लौट गया। बाद में उस शिष्य ने गुरु से पूछा–महाराज मैंने उस आदमी के लिये आसन भी बिछाया, चटाई भी बिछायी, बैठने के लिये कहा पर वह बैठा क्यों नहीं ? तो गुरु ने बताया कि वह एक राजा था। राजा जमीन पर इस तरह से चटाई वगैरह में नहीं बैठेगा। उसको चाहिये सिंहासन।

तो ऐसे ही हमारे दिल की प्यास अथाह है, वह राजा है, मानवता उसे इन छुटपुट इन्द्रिय सुखों से सन्तोष नहीं होता। प्यास अधिक भड़क जाती है। आदमी की कितनी प्यास भड़क चुकी है। सबको एक ही रोग है, एक ही पीड़ा है, हम खोजते बाहर हैं लेकिन वह भीतर है। रोग है भ्रम का, रोग है मिथ्यात्व का, रोग है माया का, रोग है अविद्या का और उसका प्रतिकार एक ही है वह है जागरण।

सिर्फ जग जायें, सिर्फ होश आ जाय। जो खोज रहे वह अपने भीतर है, यहीं है, उसे ढूंढने की जरूरत नहीं। सिर्फ अहंकार को मिटा दें। ज्ञान का आविष्कार कर लें, हम जानते नहीं, हम बाहर से खोज रहे हैं।

खोजने वाले दो तरह के हैं—एक वे जो भोगते है, और जो भोगते हैं वे भी बाहर भोगते और एक वे हैं जो त्यागते हैं। त्यागने वाले भी संसार में भोग रहे और भोगने वाले भी संसार में भोग रहे लेकिन जाग कोई भी नहीं रहा। जागने की बात भ्रम से सिर्फ जाग, माया से सिर्फ जाग। मैं कौन हूं इतना मात्र पहिचान जाए यह ही काफी है।

अब बताओ कुये का मेंढक कितनी कल्पना कर सकता, जितनी कि उसमें क्षमता है, उससे आगे नहीं। तो जो आत्मा है, परमात्मा है वह इस बुद्धि की कटोरी में नहीं आ सकता। हमारी बुद्धि बड़ी सीमित है। उसमें भी विश्वास बांध लिया, कुछ धारणायें बना ली जिससे हमारी बुद्धि और भी संकुचित हो गई।

तो हम पूरा कैसे जान सकते ? इसलिये कहा कि आप अहंकार मिटा दें। सिर्फ जग जायें। आप सोते जागते चलते फिरते जागते रहें। लेकिन कैसे जागें ? जब जब आप जागते हैं तब तब विश्वास तोड़ने की बात होती है तो उन्हीं से बंध जाते हैं। उससे अधिक आप सुनने की क्षमता नहीं रखते। तो इससे क्या कहा कि आप कुछ न सोचें, मिट जायें।

मिटना की क्या कैसे होगी ? तो कहा कि गुरु के पास मिटना होगा। गुरु आपको मिटना सिखायेगा, जीवन न देगा। गुरु आपको परमात्मा न देगा, मिटा देगा आप मिट जायेंगे, आपका अन्त हो जायेगा।

वह परमात्मा भीतर है इसलिये आप उसे देख ही नहीं सकते। आप तो उसका सिर्फ अनुभव कर सकते हैं। बाहर से तो आपको गुरु मिल सकता है। जो गुरु आपको संकेत दे दे, सिर्फ संकेत करदे कि जिससे आप मिट जाओ।

लेकिन आप में शिष्य होने की पात्रता होनी चाहिये। शिष्य का मतलब है कि जो बिल्कुल मिट्टी की तरह गीला हो जाय। गीली मिट्टी को कुम्हार जैसी चाहे वैसी मूर्तियाँ उससे बना लेता है। मिट्टी वहाँ किसी प्रकार का विरोध नहीं करती, तो ऐसे ही शिष्य हो। के बाद गुरु आपको काट छाँटेगा। आपका बिल्कुल अस्तित्व न रहेगा।

यह शिष्य अगर आप बन सके तो फिर आप न रहेंगे, आप परमात्मा बन जायेंगे। आप मिट जायेंगे तो परमात्मा बन जायेंगे। अब आप भी बने रहें और परमात्मा भी बन जायें ये दोनों बातें एक साथ नहीं हो सकतीं।

तो परमात्मा होना बड़ी बात नहीं, परमात्मा हो सकते लेकिन शिष्य होना, पात्र होना आवश्यक है। पात्रता होना एक तपस्या है। गुरु मिल जायेगा लेकिन शिष्य नहीं मिलता है।

रामकृष्ण ने भी किसी शिष्य को खोजा था वे सोचते थे कि मुझे कोई ऐसा शिष्य मिले जिसे मैं अपनी पायी हुई सारी बातें बता सकूं, पर कोई शिष्य उन्होने वैसा नहीं पाया। यद्यपि वे विवेकानन्द को अपना शिष्य बनाकर उन्हे बताना चाहते थे लेकिन उन्होंने सोचा कि यदि मैं उनके पास जाकर कहूँ कि मेरे पास जितनी भी अच्छी-अच्छी बातें हैं उन्हे आप हमसे ले लीजिये तो उनको अहंकार हो जायगा कि मैं भी कुछ हूँ तभी तो मुझे अपना शिष्य बनाया यह सोचकर उन्हे भी अपना शिष्य नहीं बनाया।

शिष्य तो वह है जो गुरु के आदेश की प्रतीक्षा करता है। कदाचित गुरु के सामने शिष्य बैठा हो तो भी गुरु कुछ बोलेगा नहीं उस शिष्य से ताकि उसमें कुछ उसकी प्यास जगे। जैसे कोई बच्चा अपनी माँ के पास खेलता है, पर जब तक वह रोता नहीं है तब तक माँ उसे दूध नहीं पिलाती है। तो दूध पीने के लिये बच्चे को रोना भी चाहिए, ठीक ऐसे ही शिष्य को कुछ सीखने के लिए उसमें सीखने की प्यास भी होनी चाहिए।

भगवान महावीर भी तो प्रभु हुए। वे पहले बोले न थे। ६६ दिन बराबर नहीं बोले। पा चुके थे और जब तक पाया न था तब तक मौन थे भी और जब तक पात्रता भी थी तब तक मौन में रहे थे और जब पाया तब बोलना चाहते थे पर बोले नहीं। वे जानते थे कि हमारी वाणी लोगों में समर्थ गौतम है पर यदि उनके पास जाकर हम कुछ बोलते हैं तो उनको अहंकार हो जायगा कि हम भी कुछ हैं तभी तो हमारी पूछ होती है, तो जानते हुए भी वे ६६ दिन मौन में रहे थे। जब ज्ञान का प्यासा गौतम गणधर उनके पास पहुंचा तब उनकी दिव्य ध्वनि खिरी।

तो जैसे गौतम को जब ज्ञान की प्यास लगी, ज्ञान के लिए उनके दिल में एक तड़पन सी हुई तब भगवान महावीर बोल उठे ही गुरुजन भी शिष्यों की ज्ञान पिपासा देखकर उन्हें उपदेश देते हैं। कहीं गुरु आपको शान्ति नहीं देते, आनन्द नहीं देते बल्कि गुरु तो आपको तड़पा देते हैं।

गुरु वह होता है जो आपके भीतर प्यास जगा दे। कुंआ आप ही खोदेंगे, गुरु आपका कुआ न खोदेगा। आपका कुआ आपके भीतर है और उसे आपको खुदको खोदना है। गुरु तो आपके सहयोगी बन सकते, आपको संकेत दे सकते पर कुंआ आप तब खोदेंगे जब प्यास लगेगी और इतनी गहरी प्यास लगेगी कि आपको प्यास भी तड़पन हो जाय। इतनी भारी बेचैनी हो जाय, तड़पन हो जाय तो आप कुआं खोद लेंगे और अगर आपको प्यास नहीं है तो आपके पास पानी भरा हुआ रक्खा हो तब भी आप न पियेंगे।

तो गुरु आपकी नींद हराम कर देगा ताकि आप सो न सकें। यदि आप सो जायेंगे तो खो जायेंगे। और अगर आप जागेंगे तो पा लेंगे। तो शिष्य होना कठिन है, गुरु होना कठिन नहीं है। शिष्य होने में आपका अहंकार टूटता है। शिष्य होने के लिए आपको गुरु क्या कर रहे इस बीच में नहीं आना है, उसे अपने मन से हटा देना है। गुरु कभी किसी रूप आचरण करेगा कभी किसी रूप लेकिन शिष्य को उस पर कुछ ध्यान नहीं देना है। गुरु तो किसी अन्य रूप में भी आ सकते पर शिष्य उनसे नहीं बंधता। कोई गुरु अपना किसी रूप बाना बनाते कोई किसी रूप, कोई अपना चोगा ही बाहरी चरित्र बनाते। यदि गुरु की इन आकृतियों के साथ हम बंध गए तो समझ लो कि हममें अभी वह कला नहीं आयी जो कि एक शिष्य में होनी चाहिए।

तो ऐसे ही सिर्फ एक बात रह जाय कि मैं मिट जाऊं ऐसी पात्रता अगर आप में आये तो आपके अहंकार के विचार हटेंगे और भीतर परमात्मा प्रकट हो सकता है।

पहिचानो और एक एक कदम बढ़ो

जापान में हाक्वीन एक संत हुआ है। एक बार उसके पास एक सैनिक आया और उसने पूछा कि स्वर्ग और नरक क्या होते हैं? तो उस संत ने पूछा-आप कौन हैं? तो उस सैनिक ने कहा कि मैं एक सैनिक हूँ। तो संत ने कहा-क्या तू सैनिक है? तू तो मुझे सैनिक जैसा नहीं लगता। तेरी शक्ल भी सैनिक जैसी नहीं लगती। तू राजा का अंग रक्षक कैसे बन सकता, तू तो मुझे कायर मालूम देता है।

संत के मुख से इस प्रकार के अपमानजनक शब्द सुनकर उस सैनिक के हृदय में खून खोल उठा, उन शब्दों को वह बरदाश्त न कर सका, उसकी आँखें आग बबूला हो गई और तुरन्त म्यान से तलवार खींचकर उस संत की गर्दन उतारना चाहा। इतने में ही वह संत बोल उठा—बस तेरे प्रश्न का उत्तर तुझे मिल गया। जिसे तू ने पूछा था कि नरक क्या होता है तो तेरी यह खोटी करतूत ही नरक है।

संत की इस बात को सुनकर सैनिक चुप रह गया और कुछ विचार करके शान्त हो गया। उसके शान्त हो जाने पर फिर संत ने कहा कि अब शान्त होने की जो तेरी भली करतूत है वही स्वर्ग है। वह सैनिक संत की बात सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ और उसे अपनी करतूत पर बड़ा पछतावा हुआ।

तो कहीं बाहर में स्वर्ग नरक हो या न हो यह बात तो दूसरी है, मुख्य बात तो यह है कि जिस समय जैसे भाव होते हैं भले या बुरे उसी समय तत्क्षण उसे वैसा फल मिल जाता है। मानो कोई क्रोध कर रहा उसी समय वह भीतर ही भीतर जलता भुनता रहता है और जिस समय शान्ति के परिणाम रखता है उस समय उसके भीतर फूलों का बगीचा सा लगा रहता है जिससे कि वह उनकी महक से प्रफुल्लित रहता है।

जब कभी आप शान्त परिणामों से बैठे होते हैं उस समय तो आप कहीं आना जाना नहीं पसंद करते, विश्राम से एक जगह बैठे रहते हैं। इस प्रकार का अनुभव तो आप सब हमेशा करते हैं।

जिस समय आप तेज क्रोध करते हैं उस समय बताया है कि एक क्षण के अन्दर रक्त के १५०० कण जल जाते हैं, फिर भला सोचो जो घंटों क्रोध करता रहे उसके शरीर का कितना खून जल जाता होगा।

क्रोध करने वाला किसी दूसरे का नुकसान कर सके या न कर सके पर वह अपना नुकसान कर डालता है जिस रक्त को अभी तक कोई फैक्टरी भी नही तैयार कर पायी वह रक्त यदि क्रोध करके व्यर्थ मे जलाया जा रहा हो तो वह फिर मिल कहाँ से पायेगा ?

आजकल जो शक्ति बढाने के इन्जेक्शन चले तो क्यो चले ? इसीलिए तो कि क्रोधादिक विकारो के द्वारा हम अपने रक्त को जला-जलाकर बड़े कमजोर बनते चले जा रहे हैं। यदि क्रोधादिक विकारो से इस रक्त को नष्ट न करते तो फिर इन इन्जेक्शनों की क्या आवश्यकता थी ?

यह भी बताया है कि जब कोई बड़े शान्त परिणामो से बैठा होता है तो उसके प्रतिक्षण १६०० रक्त कण बढ जाते हैं। अब आप सोच लो जो अधिकाधिक समय शान्त परिणामो से रहता हो उसमे कितनी अधिक शक्ति बढ़ती होगी।

तो स्वर्ग नरक की बात सिर्फ आगम के अनुसार ही नही है हम आप निरन्तर इस स्वर्ग नरक का यही अनुभव किया करते है। जिस समय हम क्रोध करते हैं उस समय समझ लें कि नरक मे हैं और जब शान्त परिणामो से हों तो उस समय समझ लें कि हम स्वर्ग मे हैं।

अपने भविष्य का निर्माण हम अपने परिणामो के द्वारा स्वय करते हैं। जिस समय हम क्रोध करते उस समय क्रोध की तन्मयता का फल अनुभव करते हैं, जिस समय द्वेष करते हैं उस समय द्वेष की तन्मयता का अनुभव करते हैं वहाँ अपनी आत्मा मे नही रहते और जिस समय हम शान्त रहते है उस समय शान्ति की तन्मयता का अनुभव करते हैं।

जैसे जिस समय दूध मे नीलमणि डाल दी जाय तो वह दूध नीला हो जायगा, सफेद न रहेगा, उस समय उसके पीने वाला सफेदी का अनुभव नही करता, उस नीले पन का अनुभव करता है। ऐसे ही जिस समय हम रागद्वेष क्रोधादिक करते हैं उस समय इन विकारो का ही हम अनुभव करते है। अपनी आत्मा का उस समय अनुभव नही करते।

तो पहली बात यह है कि हम जिस प्रकार के परिणाम करते है उसी तरह का हमे अनुभव होता है। उस अनुभव के समय हमारे आत्म प्रदेशो मे

एक कम्पन होता है और वह कम्पन हमारे पूरे शरीर मे छा जाता है। देखा होगा किसी को कि जब उसे कोई गाली देता है तो उस गाली सुनने वाले के पैरो से लेकर सिर तक सन्नाटा सा छा जाता है। एक तरग सी उसके पैदा हो जाती है, इसी का नाम योग है।

देखिये दो चीज होती हैं—(१) योग और (२) उपयोग। योग एक कम्पन है और उसके साथ जो आपका भाव होता है, जलन होती है उसका नाम उपयोग है। तो जब आत्म प्रदेशो मे आपके शरीर मे एक एक कम्पन हुआ उससे इस सौर्य मण्डल मे जो-जो भी पदार्थ पडे हुए हैं, जिनको आगम की भाषा मे कार्माण वर्गणा कहते हैं, तो उन कार्माण वर्गणाओं मे हलन चलन स्थूल है। वह पौदगलिक वर्गणाओ मे स्पदन होता है क्योकि हमने कषाय का भाव किया है। क्रोध किया या राग किया या द्वेष किया, कुछ भी किया उनका स्पदन होता है।

हममे चिकनाई भी है और रूखापन भी है। ये दोनो चीजें पुद्गल वर्गणाओं मे भी है। देखो ये चिकने पत्थर कैसे बने? तो सुनो पत्थर के कुछ चिकने कण है कुछ रूखे कण हैं, ये दोनो मिल गए, बधन को प्राप्त हो गए। और ऐसे ही आप लड्डू बनाते हैं तो खाली आटे से लड्डू नही बनता। उसमे घी की चिकनाई लगती है तब बँधते हैं अब खाली चिकनाई हो, कुछ रूखी चीज न हो तब भी नहीं बँधते। कुछ रूखापन होना चाहिये। जब दोनो मिल जाते है तो वे बधन को प्राप्त हो जाते है। हमने भी कुछ रूखा, कुछ चिकना परिणाम किया। चिकना परिणाम क्या किया कि यह वस्तु या यह व्यक्ति हमें मिल जाय और दूसरा जो है वह हमें न मिले यह रूखापन है।

राग और द्वेष ये दोनो है और ये दोनो पुद्गल परमाणु मे है और इन दो शक्तियो के कारण से जीव के भावो से प्रेरित होकर जो कुछ आत्म प्रदेशो मे परिस्पदन हुआ उससे जो पुद्गल वर्गणायें थी वे उसके साथ आकर चिपट गई, इसका नाम बध है।

यह बध दो तरह का होता है—(१) एक द्रव्य बध और (२) भाव बध। जैसे आपने अपने पुत्र को देखा और पुत्र को देखकर आपके मन मे राग पैदा हुआ, आप बँध गए उसमें, उसका नाम है भाव बध और आपने फूल देखा, आपकी नजर उसकी सुगन्ध लिप्त गई। आपके भाव उस फूल से बध गए,

अनुराग पैदा हो गया यह है भाव बध और इस भाव से जो आपके भीतर कम्पन हुआ और उस कम्पन से जो पुद्गल वर्गणायें आकर हमारे आत्म प्रदेशो मे टिक गई उसका नाम है द्रव्यबध। अब एक परिस्पदन दो परिस्पदन ये पैदा हो गये और उससे जो पुद्गल वर्गणायें आयी वे बिगड़ती चली गई। उससे हमारे स्थूल शरीर का निर्माण हुआ। जो हमने भाव किया उसमे जो पुद्गल वर्गणायें आयेंगी वे उस ही जाति की आयेंगी।

अगर हमने क्रोध का भाव किया तो इन पुद्गल वर्गणाओ मे क्रोध के परमाणु पडे हुए है वे क्रोध की वर्गणायें आकर हमारे आत्मप्रदेशो मे टिकेंगी। अगर आपने किसी से प्रेम से बोला हो तो जो पुद्गल वर्गणायें आयेंगी वे भी मधुर आयेंगी और उन मधुर वर्गणाओ से आपके कठ का निर्माण होगा। भाषा वर्गणाओ से आपके कठ का निर्माण होता है। करकस कंठ बने कि कोमल कठ बने। आप चाहे कि मैं मधुर बोलू लेकिन आपकी आवाज कही ऐसी ही निकले जैसी कि मानो कोई लाठी मार रहा हो और एक आदमी ऐसे भी होते हैं कि गाली किसी को दें तो कहो मुख से फूल जैसे झडें। तो यह निर्माण कहा से हुआ ? पुद्गल वर्गणाओ मे।

एक वर्गणा ऐसी होती है कि जिसमे आपके मन का निर्माण होता है। वह मनोवर्गणा कहलाती है और जो सामान्य तौर से, सूक्ष्म रूप से रहती वे कार्माण वर्गणायें कहलाती हैं। एक वर्गणा वह होती जो आपके चेहरे पर चमक लाती है। कोई आदमी अपने चेहरे पर क्रीम लगाता है, नाना प्रकार के चिकने द्रव्य लगता है फिर भी उसका चेहरा चिकना नही होता, सूखा रहता है और एक आदमी कुछ भी नही लगाता फिर भी उसका चेहरा चिक्ना रहता है तो उसे तैजस वर्गणा कहा गया है।

तो कहने का तात्पर्य यह है कि हम जिस जाति के भाव करते हैं उस जाति की ही पुर्गगाल वर्गणायें हमारे आत्मप्रदेशो मे आती है और जितना-जितना तेजी से हमारे भीतर कम्पन होता है उतनी ही सख्या मे वे पुद्गल परमाणु हमारे आत्मप्रदेशो मे आकर जमते हैं। इसे द्रव्यसग्रह मे आचार्य नेमीचन्द ने कहा है योग से हमारा द्रव्य बध होता है और उपयोग से भाव बध होता है। उपयोग से कषायें होती है और भाव से परिस्पंदन होता है।

इन दोनो से बध होता है क्योकि जीव तो किसी पुद्गल या जीव के पर के आश्रय पर भाव करता है। वह भाव स्वर से नहीं होता इसलिये पर का

बधन होता है, क्योंकि उसके आत्म प्रदेशो मे कम्पन होता है। वह कम्पन स्थूल होता रहता है। वह आकर इन आत्मप्रदेशो मे टिक जाता है। इस तरह यह चैतन्य आत्मा सूक्ष्म होते हुए भी स्थूल भाव करता है तो पुद्गल वर्गणायें इस सूक्ष्म आत्मा के भावो से बधन को प्राप्त हो जाती हैं।

इनसे निर्माण हुआ हमारे सूक्ष्म शरीर का। कार्माण वर्गणायें आयी और हमारे आत्मा मे टिक गई। एक शरीर हमारा यह बना और एक शरीर हमारा वह बना जिसे हम कहते हैं कार्माण शरीर। यह सूक्ष्म शरीर है।

जब किसी चीज मे गति पैदा हो जाती है तो आपको पता है कि उसमे चमक पैदा हो जाती है। जो आपका स्वर्ण है वह सिर्फ तीव्र गति से घूम रहा परमाणु है, उससे तेज (चमक) पैदा होती है ऐसे ही कार्माण वर्गणाओ मे तेज गति से घूमने से हमारे अन्दर एक शरीर पैदा होता है जिसे हम तैजस शरीर कहते हैं। इस प्रकार तैजस और कर्माणशरीर जब तेज गति से घूमने लगते हैं तो उनका एक विशेष कम्पन हो जाता है। तो उस समय आपको स्थूल शरीर मिलता है उसका नाम है औदारिक शरीर।

जैसे एक पखे की पखुडी टिकी रहे तो वे तीन दिखाई देती है लेकिन जब वह तेज घूमने लगता है तो एक भी पंखुडी नही दिखाई देती सिर्फ चमक दिखती है और अगर वह बहुत ही तेज हो जाय तो उस पर आप बैठ भी सकते हैं गिरेंगे नही, तो तेजी से घूमने पर ये विशेषतायें प्राप्त हो गई। एक तो तेजी से घूमने पर चमक पैदा होती है।

इस प्रकार तीन तरह के शरीर बन गये—(१) सूक्ष्म, (२) तैजस शरीर और (३) स्थूल शरीर। अब स्थूल शरीर मे आने पर जो आपके श्वासोच्छ्वास की गति होती है उससे आपके शरीर के अन्दर ऊष्मा पैदा होती है। अगर वह समाप्त हो जाय तो शरीर का सचालन न हो।

तीन शरीर आपके योग से पैदा होते है और तीन शरीर आपके उपयोग से पैदा होते हैं। उपयोग से मैं हू यह भाव आता है। इसका नाम है अहकार शरीर और फिर उसके बाद जो मन मे सकल्प विकल्प तरग पैदा होते है यह है आपका मन शरीर और इसके बाद यह अच्छा है, यह बुरा है, यह मेरा है, यह दूसरे का है, ये रागद्वेष जो पैदा होते हैं, जो आकाक्षायें होती है इसका नाम है वासना शरीर।

तीन शरीर योग से पैदा होते हैं और तीन उपयोग से पैदा होते हैं। ६ शरीर होते हैं। आपके इस योग से पैदा होने वाले उपयोग को हमने योग में मिला दिया। जैसे एक यन्त्र होता है थर्मामीटर, उसमें आपका बुखार नापा जाता है। अब देखिये बुखार अलग चीज है और थर्मामीटर अलग चीज है। उसमें जो पारा है काँच है, वह हमे बुखार का सकेत करता है। उस बुखार की चोट थर्मामीटर में लगती है।

जिस प्रकार पारा चढ जाता है बुखार का संयोग पाकर इसी प्रकार जीव के भावों का सयोग पाकर ये पुद्गल परमाणु भी उसी जाति के आने हैं। अगर कोई किसी व्यक्ति का बुखार थर्मामीटर मे छुवे तो छूने से बुखार का पता नहीं पडता है, इसी प्रकार जीव के भावों का सयोग पाकर इस जीव मे जब कुछ क्रोधादिक की वृत्तियाँ होती हैं तब जीव का पता पडता है, बाकी दुनिया में कोई ऐसा कार्य नहीं है जो इस जीव मे ठहर सके।

तो तीन शरीर हुए, (१) सूक्ष्म, (२) तैजस और (३) स्थूल और तीन शरीर हो गये हमारे, (१) अहकार शरीर, (२) मन शरीर और (३) वासना शरीर। इनके मिल जाने पर एक चीज पैदा होती है। तो क्या होता है उपयोग से उपयोग का कुछ परिवर्तन कर सके उसे कहते हैं योग शरीर। योग शरीर को आगम के शब्दों मे वैक्रियक या आहारक शरीर कहेंगे।

योग शरीर जो पैदा होते हैं वे तीन तरह के पैदा होते हैं, उस एक-एक योग शरीर के नाम सुनों—(१) वैक्रियक शरीर, (२) तैजस शरीर और (३) आहारक शरीर। जबकि आप योग के द्वारा, ध्यान के द्वारा स्थूल शरीर मे अलग होकर और किसी इष्ट स्थान पर जा सकते हो वह शरीर कौन-सा है? कार्माण शरीर भी नही, तैजस शरीर भी नही, वह एक विभिन्न प्रकार का है।

जैसे रावण ने योग के द्वारा विद्या सिद्ध की थी। उसने अपने एक शरीर के द्वारा नाना शरीर बना लिये। जैनागम में तो उसे विक्रिया ऋद्धि कहा। पर योग के द्वारा भी अलग शरीर का निर्माण हो सकता है।

जब आप क्रोध करते हो तो वह केवल जोर से ही नही निकलता। किन्तु आपकी आँखो से आग बरसती है। और वह आग जिस चीज मे पड जाय उसी चीज को नष्ट कर सकती है।

चीन का राजा जो भी होता था वह जल्दी ही मर जाता था तो कुछ

मन्त्रियो ने राजा के पास जाकर पूछा कि हमारे देश का राजा दीर्घजीवी क्यों नहीं होता ? तो राजा ने कहा कि मैं आपको इस प्रश्न का उत्तर तब दूँगा जब कि यह पेड़ सूख जाय जिसके नीचे आप लोग खड़े हो। ठीक है। आखिर हुआ क्या कि ८ दिन मे ही वह पेड सूख गया। पेड़, सूख जाने पर मन्त्री लोग राजा के पास अपने प्रश्न का उत्तर लेने के लिये गये तो राजा ने कहा कि हम आपके प्रश्न का उत्तर तब देंगे जब कि यह सुखा हुआ वृक्ष हरा भरा हो जाये। ठीक है।

आखिर १५ दिन के बाद वह वृक्ष फिर से हरा भरा हो गया। फिर मन्त्री लोग राजा के पास पहुंचे और बोले कि अब तो हमारे प्रश्न का उत्तर दो। तो राजा ने कहा कि आपके प्रश्न का उत्तर तो हो गया। मन्त्रियो ने कहा कैसे ? तो राजा ने बताया कि देखो जैसे जब तुम पेड़ के पास उसके सूखने की भावना से जाते थे तब तो वह पेड़ सूख गया है और जब तुम उसके हरा भरा होने की भावना से जाते थे तो वह हरा भरा हो गया ऐसे ही तुम जिस भावना से राजा को देखते हो तो राजा वैसा ही हो जाता है। जब तुम्हारी भावना से पेड़ भी सूख सकता है तो फिर राजा क्यो न सूख जायगा, और जब तुम पेड़ को हरा भरा देखने की भावना से गये तो पेड़ हरा भरा हो गया। अनोखी बात तो यह है कि पेड़ के सूखने मे ८ दिन लगे लेकिन हरा भरा होने मे १५ दिन लगे।

तो हरा भरा होने मे आपको अधिक भावना करनी पड़ती है, बुरी भावना के लिये अधिक भावना की जरूरत नहीं रहती। जिस समय आप क्रोध करते है तो आपका उस ही योग्यता का शरीर बनता है।

इसके बाद कहा है आहारिक शरीर। तीन प्रकार का योगज शरीर कहा। जब किसी योगी के मस्तक मे एक पुतला निकलता है और वह जाकर किसी तीर्थ के दर्शन करके लौट आता है, शंकाओं का समाधान होता है। यही बात अगर हम आहारक शरीर के नाम से कहे तो जल्दी समझ मे आ जाता है लेकिन अगर अपनी भाषा मे कहें कि योग से यात्रा करके लौट आया तो यह बात आपकी समझ में कम आती।

लेकिन शरीर मूल मे ७ प्रकार के होते है, तीन या ५ प्रकार के ही नहीं हुए। ६ प्रकार के भी शरीर है ६ प्रकार के औदारिक (स्थूलाकार) और ३ प्रकार के [illegible] यो ६ प्रकार के शरीर हो गये। तो आप स्थूल का

से छोड़ सकते हैं लेकिन इतने सारे शरीरों को कैसे छोड़ें ? आपने देखा होगा कि आप अपने ट्रांजिस्टर में जहाँ की सुई लगा देते हैं वहाँ के स्टेशन की आवाज आप सुन लेते हैं और जब किसी दूसरी जगह की सुई लगा देते तो दूसरी जगह की आवाज सुनाई पड़ती है।

इसी प्रकार हमारे भीतर हमारे अन्दर भी कितने ही तैजस और कार्माण शरीर चल रहे हैं, यही कारण है कि जिस स्थान पर आप यहाँ बैठे हो आप भी बैठे हो और हो सकता कि कोई देवता भी आकर बैठ गये हों। आपको वे देवता दिखाई नहीं पड़ते क्योंकि आपका स्टेशन दूसरा है, आपकी आँखें जो हैं, उनकी जो देखने की क्षमता है वही देखेंगी, दूसरा नहीं। तो हो सकता है कि आपकी आँखो में कोई उनकी आँखो के ढग का लोशन डाल दिया जाय तो वे देव भी आपको दिख सकते हैं।

आपको यह चक्षु प्राप्त है तो इस तरह देख रहे, दूसरों को दूसरी तरह प्राप्त है तो दूसरी तरह देख रहे आप स्थूल रूप को देख रहे तो कोई सूक्ष्म को भी देख सकते। जो स्थूल में है वह सूक्ष्म को ग्रहण नहीं कर सकता। आप सब मनुष्यों को देवता लोग देख सकते, पर आप लोग उन्हें नहीं देख सकते।

सो यहाँ ७ प्रकार के शरीरों की बात बतायी। जब हम शरीर को छोड़ते हैं तो सिर्फ यह शरीर तो छूट जाता है बाकी सारे शरीर हमारे साथ रहते हैं। अब जिस तरह के हमने परमाणु लिये था, उस तरह के सूक्ष्म शरीर का निर्माण हुआ था तो हम जिस शरीर को माँ के गर्भ से लाते हैं वह जितनी तेजी देगी, जितनी ऊष्मा देगी उसी प्रकार स्थूल शरीर का निर्माण होता है। नहीं तो बताओ माँ के पेट के अन्दर बच्चे की निगरानी करने कौन जाता है ? फिर भी शरीर के सब अंग ज्यों के त्यों ठीक-ठीक बन जाते हैं। उनमें कोई गड़बड़ी नहीं होती।

आप देखते ही हैं कि कोई-कोई बच्चा बचपन से ही प्रतिभाशाली होता है और कोई-कोई मूर्ख होता है। एक ही माँ के पेट से पैदा हुए बच्चों में बड़ा फर्क होता है। कोई बुद्धिमान होता कोई मूर्ख, कोई काला होता कोई गोरा। तो यह सब क्यों होता है ? अरे उस पेट में आने वाले बच्चों के साथ लेश्यायें होती हैं। जिससे उनमें ये सब फर्क हो जाते हैं।

मैंने तो आपको एक परिचय दिया जैसा भाव होगा वैसा ही बिल्डिंग

तुम स्वयं निज के विधाता हो

एक व्यक्ति ने एक ऊँट खरीदा और उसे लाकर अपने घर में बाँध दिया। रात में उसने अपने घर में एक आवाज सुनी। वह आवाज किसी मनुष्य की थी। उसने घर के भीतर देखा तो कोई दिखाई भी नहीं दे रहा था पर आवाज आ रही थी। क्या आवाज आ रही थी कि मुझे एक व्यक्ति को २००) चुकाने हैं वह इस ऊँट को खरीदकर ले जायेगा पर वह बचेगा नहीं, इस तरह से मेरा कर्ज भी चुक जायेगा………।

इस प्रकार की आवाज आ रही थी। उस आवाज को सुनकर उस व्यक्ति के मन में बड़ा कौतूहल पैदा हुआ।

आखिर सवेरा होते ही उसके पास उसका ही एक मित्र आया, उसने ऊँट बेचने के लिये विवश किया। यद्यपि वह अपना ऊँट बेचना नहीं चाहता था फिर भी मित्र की बात वह टाल न सका। और २००) में वह ऊँट दे दिया पर उसके मन में आया कि देखें तो सही कि अब इसके बाद क्या होता। सो वह ऊँट खरीदने वाले मित्र के पीछे पीछे उसके घर तक गया उसने क्या देखा कि वह घर पहुँच भी नहीं पाया था कि ऊँट बीच में ही मर गया। तो वह समझ ही गया कि इसका कर्ज पूरा हो गया। यह तो ए

कहानी [illegible] हमें अपनी धारणाओं का पता लगता है। हमारी एक ध

धारणा [illegible] इस जन्म में करते हैं उसका फल अगले जन्म में मिलेगा

और ज [illegible] किया है उसका फल हमें इस जन्म में मिलेगा।

[illegible] होती है वैसा ही हमारा आचरण होता है।

इस म [illegible] से फल मिलेगा और अगले जन्म

दे जो [illegible] मिलेगा। तात्पर्य यह है कि अब

रूपे [illegible] भाग्यवादी बना रही है, जो

[illegible] जन्म में सुखी होगा। उसने

[illegible] गाएँ भी सुनते और

[illegible] किसी ने बताया

कि तुम्हारी मृत्यु तुम्हारे ही भाई जरत कुमार के द्वारा होगी। तो यह बा
सुनकर जरत कुमार ने सोचा कि मेरे द्वारा मेरे भाई की मृत्यु हो यह अ
काम मैं कैसे कर सकता ? तो वह वहाँ से चला गया, वन-वन फिरता रहा
एक बार क्या हुआ कि श्री कृष्ण जी बलदेव के साथ उसी जंगल पहुंच गये
बलदेव पानी लेने चला गया। श्रीकृष्ण एक जगह लेटे हुए थे। उनके पैर
पद्म था वह चमक रहा था। उसे देखकर जरतकुमार ने उसे मृग जानकर उ
पर तीर छोड़ दिया। वह तीर श्रीकृष्ण के जा लगा और श्रीकृष्ण की मृत्यु
गई। तो जो होना था सो हुआ।

ऐसे कथानक जब हम पढ़ते हैं, तो ऐसा लगता है कि वास्तव में जो भा
में लिखा है वही होगा, हम कुछ नहीं करते। इन धारणाओं से हम बिल्कु
पुरुषार्थहीन हो जाते हैं। भाग्य के भरोसे बैठ जाते हैं। जब हम ऐसी-ऐ
घटनायें देखते हैं तो वह सब सही लगता है।

अपने पास यदि शक्ति होती है, सब प्रकार के काम कामों में सफल
मिलती है तो वह कहता है कि भाग्य कुछ नहीं है हम अपने द्वारा भाग्य बन
हैं, पुरुषार्थ ही सब कुछ है। जब आदमी की शक्ति क्षीण हो जाती है तो
भाग्य का सहारा लेता है। और जब क्षीण होती है तो पुरुषार्थ का सहारा ले
है। फिर हमारे मन में एक प्रश्न होता कि भाग्य भी कुछ है कि नहीं
पुरुषार्थ ही सब कुछ है।

अगर मान लो कि भाग्य ही सब कुछ है तो फिर हमें चुपचाप बैठ जा
चाहिये कुछ पुरुषार्थ करने की जरूरत ही क्या ? और अगर पुरुषार्थ ही स
कुछ है तो फिर किसी मरने वाले को अपने पुरुषार्थ के द्वारा मरने से ब
क्यों नहीं लेते ? जब मरते समय कोई नहीं बचा पाता, यंत्र मंत्र तंत्र सब
रह जाते हैं उस समय सबके दिमाग में बड़ा गहरा प्रश्न उठता है कि क्
भाग्य ही सब कुछ है ? तो दोनों ही धारणायें आप बना लेते हैं अपने अप
समय पे, और मैंने कल बताया था कि हम जैसे संस्कार अर्जित करते हैं उस
अनुसार गति मिलती, गति के अनुसार शरीर, शरीर से इन्द्रिय, इन्द्रिय
विषय, विषय से वासना, वासना से भाग्य और भाग्य से कर्मबन्धन, तो मे
यह बात सबको सन्तुष्ट करती है।

एक प्रश्न है कि हम क्या भाग्यवादी बन जायें ? तो आज के सन्दर्भ
इस प्रश्न का उत्तर सुनो—पहली बात तो यह है कि जिसे हम भाग्य कह र

उसको बनाया किसने ? भाग्य उसको कहते हैं जो हमारा सचित पुरुषार्थ होगा। जो हम वर्तमान में करते हैं उसको पुरुषार्थ कहते हैं। जैसे जो धन आपकी तिजोरी में होता है उसे भाग्य कहते हैं और जो हमारा खुद का कमाया हो, जिसे हम अभी कर रहे हो उसका नाम पुरुषार्थ है। जो स्टोर में पड़ा है वह भाग्य में है और जो हाथ में है उसका नाम पुरुषार्थ है। यद्यपि जो स्टोर में है वह भी हमारा ही कमाया है और वह कमाया पुरुषार्थ में है। बिन्दु-बिन्दु से घट भरता है।

हम इस समय जो करते हैं वही इकट्ठा होता जाता है और एक दिन वह भाग्य का नाम पाता है और जब वह इकट्ठा हो जाता है तो वह हमें प्रेरित करता है। जैसे एक बच्चा जब पहले था तो उसमें चोरी करने की आदत पहले से नहीं होती है। वह चोरी करना धीरे-धीरे सीखता है। जब वह चोरी करना सीखता है तो उसके हृदय में धड़कन पैदा होती है लेकिन वह चोरी के संस्कार से नहीं, चीज की इच्छा से वह चोरी कर लेता है और चोरी करते-करते जब उसकी आदत पड़ जाती है तो चाहे वह चोरी न भी करना चाहे फिर भी उसके हाथ पैर उसे चोरी करने के लिए बेचैन कर देते हैं। उसके मन भरना तक में चोरी का संस्कार बैठ गया। इसलिए वह सोचता तो यह है कि मैं चोरी न करूँ परन्तु चोरी करने के लिये उसके हाथ पैर उसे प्रेरित करते हैं और किसी की जेब में उसका हाथ पहुँच जाता है। जिस प्रकार से उसका हाथ पहुँचता है उसी प्रकार से अच्छी और बुरी सूझ भी आया करती है।

एक व्यक्ति को किसी ने बता दिया कि अगर अमुक समय पर आप कोई सौदा कर लें तो आपको उसमें बड़ा लाभ होगा। तो उसने उस समय की प्रतीक्षा की। उसके पड़ोसियों ने भी उसकी यह बात सुन ली थी। लेकिन जिस दिन वह समय आया तो कोई घर में मेहमान आ गए और वह उनकी बातों में उस समय पर सौदा करने की बात भूल गया। चला गया मुनीम से कहकर। मुनीम भी अपने काम में व्यस्त हो गया और वह भी भूल गया। अब सौदा करके उसके पड़ोसी ने उस समय वह सौदा कर लिया और उससे उसे बड़ा लाभ हुआ, तो देखा लोग कहते है इसका नाम है भाग्य लेकिन मैं इसका नाम सूझ कहती हूँ।

किसी आदमी को सूझ आती है कि मैं यह काम कर लूँ। सूझ कहीं बाहर से दिखाई नहीं आती वह तो अपने आप भीतर से आती है, तो उस सूझ के

अनुसार आदमी पुरुषार्थ करता है और उस सूझ के अनुसार ही उसे फल मिलता है। हम जो सस्कार बनाते है उसके अनुसार सूझ आती है। अच्छे सस्कार बनायें तो अच्छी सूझ आयेगी और बुरे सस्कार बनायें तो बुरी सूझ आयेगी और उस सूझ के अनुसार वर्तमान में हम सब काम कर रहे हैं। तो फिर बात यह आ गई कि जैसा हमारा भाग्य हो वैसा ही हमने काम किया। इस सन्दर्भ मे मैं तो कहती हू कि अगर हमने बहुत अधिक बुरे सस्कार किये तो हममे बुरी सूझ आयेगी। उस समय भाग्य या कर्म या वे सस्कार भी बलशाली हो जाते हैं।

जैसे जब किसी नदी मे बहुत अधिक बाढ आई हुई हो उस समय कौन ऐसा बलशाली आदमी है जो उसे सुगमता मे पार कर लेगा ? कोई नही पार कर सकता। जब किसी आदमी का हार्ट फेल हो जाये तो उसे दुनिया की कोई ताकत बचा नही सकती थोड़े समय के लिये भले ही कोई औषधि बचा सके। नदी मे बाढ आये तो उस समय कोई पार नही हो सकता, यदि किसी समय वह पानी उतर जाये तो उसे तो यो ही चलकर पार कर सकते, लेकिन एक आदमी आँखें मूँदकर बैठ जाय और कहे कि मैं तो पार ही नही कर सकता तो वह मौका भी चूक जायगा।

सजगता चाहिये। जैसे एक अन्धा आदमी था और वह एक बड़े हॉलके अन्दर घूम रहा था। वह सब तरफ से बन्द था निकलने के लिये सिर्फ एक दरवाजा था। सो वह दीवार का सहारा लेकर दरवाजा टटोलता हुआ चल रहा था। पूरे हॉल मे घूम चुकने के बाद जब बाहर निकलने का दरवाजा आया तो उसे खुजली लग गई। वह दोनो हाथो से अपना सिर खुजलाने लगा, चलना बन्द न किया इतने मे ही वह दरवाजा निकल गया। फिर उसी हाल मे वह चक्कर लगाने लगा। बहुत समय तक चक्कर लगाते-लगाते फिर दुवारा जब दरवाजा आया तो फिर वही खाज खुजाने लगा, पैरो से चलना बन्द न किया, फिर वह दरवाजा निकल गया। यों ही कितने ही चक्कर उसने लगाये पर खाज खुजलाने मे पड़कर वह हाल से न निकल पाया। ठीक यही दशा तो हम आपकी है। इस संसार मे चक्कर लगा रहे। बड़ी दुर्लभता से जब यह मानवजीवन का द्वार मिला तो इसे भी विषयो की खाजखुजाने मे निकाल रहे। अब तक पता नहीं कितनी बार विषयो की खाज खुजाने मे ये मनुष्य भव निकल गए और पता नही अभी कितने भव निकलेंगे।

इस दुर्लभ मनुष्य भव को पाकर हमारा कर्त्तव्य है कि सजग रहें, यह एक बड़ा दुर्लभ अवसर मिला है, इसे यों ही व्यर्थ न खो दें। बड़ी जिम्मेदारी है हम आपकी। इन इन्द्रिय विषयों की मौज गुजारी में बड़ा सुख मान रहे, उनमें बड़े मूर्छित हो रहे, आगे का कुछ होश हवास नहीं है तो यह अवसर यों ही व्यर्थ निकल जायगा। मौका चूक जायेगा। यह मौका चूकना ही तो है। अभी हम किसी बुढ़िया से कहें कि माँ जी तुम छोड़ दो ये सब घर के झगड़े, अब तुम्हें इनमें क्या मतलब ? तो वे कहने लगती कि हाँ छोड़ेंगी तो है ही पर अभी इस लड़के की बहू आ जाय, इसका घर आबाद हो जाय फिर सब छोड़ देंगी। और मान लो बहू आ गई। साल दो साल में कोई बच्चा भी हो गया, फिर कहे कि अब तो छोड़ दो घर के झगड़े तो फिर वह यही कहती कि अरे बहू घर के काम करेगी, बच्चा कौन खिलायेगा ? कैसे हमसे घर छूट सकता। तो यह सब मौका चूकना ही तो है। यह तो एक बीमारी है। कर्मों का जब ऐसा ही तीव्र उदय है तो इस दुर्लभ अवसर को कैसे न खो दिया जायगा। इन कर्मों के उदय से श्री राम को भी तो फल भोगना पड़ा था।

हमें बचने की आदत है फिर हम धर्म को टाल देते हैं कि कल कर लेंगे, बुढ़ापे में कर लेंगे, और ऐसा ही टालते-टालते जिन्दगी चूक जाती है। अरे कल तो कभी आता ही नहीं है। जो आदमी सजग रहता है, जागरूक रहता है वह मौका मिलने पर पिंजड़े से बाहर निकलने की कोशिश करता है।

तो पुरुषार्थ भाग्य बदल दें यह विधि मैंने बताया, अब देखिये पुरुषार्थ कैसे बदल जाय और कैसे बिगड़ जाय ? जब कोई बच्चा पैदा होता तो पैदा होते ही उसको संस्कार है कि वह मिट्टी में खेलता है उस बच्चे को बराबर सिखाया जाय फिर भी मिट्टी में खेलना नहीं छोड़ता। आदमी जब पैदा होता है तो उसके भीतर दोनों चीजें होती है, अच्छाई भी और बुराई भी, जैसी संगति में उसे रक्खा जाय वैसा वह बन जाता है। एक ही माँ बाप से पैदा हुए दो जुड़वां बच्चे भिन्न भिन्न जगह पलने पुसने से भिन्न-भिन्न प्रकार के आचरण वाले बन जाते है।

जो जैसी संगति करता है उसके वैसे संस्कार बनने लगते हैं। अगर माँ बाप अच्छे संस्कार लेकर आए हो और संगति आप बुरी करें तो आप बुरे बन जाते ? और यदि बुरे संस्कार लेकर आए हो और अच्छी संगति करें

तो आप अच्छे भी हो सकते है, तो पहले के संस्कार को भी बदला जा सकता है।

पुरुषार्थ के द्वारा हमारा भाग्य भी बदला जा सकता है, और केवल यह ही नहीं है कि जो हम अब करेंगे उसका फल अगले जन्म मे मिलेगा। अरे कर्म सिद्धान्त तो यह कहता है कि जैसे-जैसे कर्म हम आप करते हैं उसके अनुसार, उनकी स्थिति पड़ती है, किसी कर्म का फल इसी जन्म मे मिल जाता है और किसी का अगले जन्म मे, और किसी कर्म का फल ऐसा भी होता कि जिस समय जो कर्म किया गया उसी समय उसका फल भी मिल गया और कुछ उसकी रेखायें बचाकर रख लेते हैं उसका फल हम इस जन्म मे भी भोगते है।

कोई अगर अग्नि मे हाथ दे तो क्या ऐसा नहीं है कि हाथ तो अग्नि मे अब दिया और उसका फल भोगे कुछ समय बाद। अरे जब अग्नि मे हाथ दिया तभी हाथ जल गया, और हाथ अग्नि से बाहर निकल आने के बाद उसकी झुलसन रह जायेगी। अब यदि उस झुलसन का इलाज न किया जाय तो उसमे पीप पड़ जायेगी और उसकी भी अगर परवाह न करें तो सेप्टिक हो जायेगी, हड्डी गल जायेगी। अगर उसकी कुछ परवाह कर ले तो हाथ पैर कटा कर जीवन बचाया जा सकता है, पर यदि उसकी कुछ परवाह न करे तो उसकी मृत्यु हो जायेगी।

ऐसे ही जिस समय आपने क्रोध किया उस समय आप उस क्रोध मे जल जाते हैं, क्रोध एक अग्नि है, झूठ बोलते समय भी आप जल जाते हैं, मायाचारी करते समय भी हृदय मे धड़कन होती है, तो उसी क्षण फल भोग लिया। आप को खुद को पता पड़ सकता, दूसरा यह बात नहीं समझ सकता।

और जब आप क्रोध कर चुकते हो, लड़ाई हो चुकती है, आप घर मे जाकर बैठ जाते हैं तो आपने अनुभव किया होगा कि आपके भीतर कितनी कम्पन हो जाती है, आपके भीतर क्रोध की रेखायें बन जाती हैं।

अब अगर आप थोड़ा जागरूक न रहे, मूर्छित रहे, सजग न रहे तो फिर वही रेखायें जो पड़ गई वे वैसी बन जाती हैं जैसे कि जंगल मे चलने वाली पगडडियां। फिर आपके क्रोध उमड़ेगा। अगर आपने फिर से क्रोध कर लिया। आप सजग न हुए तो फिर वह क्रोध आप की सारी नसों मे फैल जायेगा।

अगर आपने संगति नहीं की, सजग नहीं हुए तो फिर आप मूर्छित होते

यहां देखिये पूर्वबद्ध कर्म का उदय आया, उन दोनों पुत्रों की मृत्यु हुई पर विवेक होने से धैर्य होने से उन्होंने उसे नहीं भोगा। और जब उस कर्म-फल को नहीं भोगा तो उसका बीज भी नहीं बोया।

ऐसी ही घटना एक और भी सुनो—एक चाणक्य की पत्नी मर गई तो उसके घर बहुत से लोग चाणक्य को दुख प्रकट करने आए, राजा भी आया। उस समय राजा ने क्या देखा कि चाणक्य हँस रहे थे बाकी सब लोग दुख प्रकट कर रहे थे तो वहां राजा ने चाणक्य से पूछा कि तुम इस दुखद अवसर पर भी हँसते क्यों हो ? तो चाणक्य ने उत्तर दिया—राजन रोना और हँसना ये दो ही तो बातें हैं। चाहे हम रो लें या हँस लें।

लोग जब रोते हैं दुखी होते हैं किसी को मरते देखकर या किसी घटना को देखकर खुश होते हैं तो इसे और लोग तो ज्ञान और अज्ञान की संज्ञा देते हैं पर मैं इसे कहता हूँ विवेक और अविवेक। ज्ञान में तो ये सब बातें आयेंगी पर विवेक से हम उन्हें भोगें या न भोगें। सुख दुख तो हमारे सोचने पर निर्भर करते हैं। वस्तुत: बाहर का कोई भी पदार्थ हमें सुख दुख नहीं देता।

एक बार एक आदमी ने दो टिकेट खरीदी। भाग्य से उसके नाम ५० हजार की एक लाटरी खुल गई और एक टिकेट बेकार हो गई कोई दो रुपये की। अब ५० हजार के लाभ की खुशी में उसकी स्त्री ने एक प्रीति भोज किया। उसमें उसने १००-५० रुपये खुशी-खुशी में खर्च कर दिया। बाद में उस व्यक्ति ने पूछा—तुमने यह १००-५० रुपये का फिजूल खर्च क्यों किया ? तो स्त्री ने कहा—अरे ५० हजार की लाटरी आपके नाम खुली तो उसकी खुशी में मैंने ये १००-५० रुपये प्रतिभोज में खर्च कर दिया। तो वह पुरुष बोला तू बड़ी बावली है। मेरे इतने रुपये तो पानी में बह गये। अब भला बताओ ५० हजार के लाभ का सुख वह नहीं मान रहा था पर उस १००-५० रुपये के खर्च का दुख मान रहा था। तो दुख सुख किसी बाहरी पदार्थ से नहीं आते, वे सब अपने ख्याल पर निर्भर हैं।

हमने तो ऐसे-ऐसे लोग भी देखे कि जिनके शरीर में भारी पीड़ा हो रही है। फिर भी वे अपने विवेक से अपने धैर्य से उस पीड़ा को भी हँस हँसकर सह लेते हैं, और कोई लोग ऐसे भी होते कि जरा से बुखार आने पर ही घबड़ा जाते हैं। हाय अब क्या होगा ? तो अपने सोचने के ढंग पर ये सुख दुख निर्भर हैं।

एक आदमी की किसी एक्सीडेन्ट से टाग कट गई थी, उसकी यह स्थिति देखकर लोग तो बडा दु ख मान रहे थे पर वह आदमी हँस रहा था। लोगो ने उससे पूछा कि भाई ऐसी भयंकर स्थिति मे भी तुम हँसते क्यों हो ? तो उसने कहा—अरे रोने मे लाभ क्या ? यदि मेरा पैर कट गया तो मैं कुर्सी पर तो बैठ सकता हूँ। आँखो से भी देख सकता हूँ, हाथो से भी काम कर सकता हूँ एक पैर न रहा तो क्या हर्ज है ? तो हम जितना-जितना धैर्य रख सकें। विवेक रख सकें उतने-उतने रूप मे कर्म की निर्जरा होती है और जितना-जितना हम अपने धैर्य को खो देते हैं, उस पूर्वबद्ध कर्म के उदय को भोगते हैं उतना-उतना ही वह आगे के लिये भी बीज का काम कर देता है।

तो आप वर्तमान मे विवेक से परिणाम सोचें। इससे हम पूर्वबद्ध कर्मो की निर्जरा करते है और वर्तमान मे आनन्दित होते हैं और आगे के लिये भी कर्म बन्धन नही होता। वर्तमान के एक क्षण का पुरुषार्थ तीनो कालो का कारण है। तो ज्ञानी को तब ही तो कहा है कि ज्ञानी कर्म का फल भोगता हुआ भी नहीं भोगता। कर्म का विपाक शरीर मे होता है, बाहर मे होता है अब ज्ञानी चूँकि विवेकी होता है। इसलिये वह कर्मफल का उदय होने पर भी कर्म भोगता नही है, और जब वह भोगता नही तो बँधता भी नहीं, क्योकि जो कर्म का उदय हो रहा तो वह पहले ही झड जाता है। पहले का पडा हुआ जो सस्कार है उन सबको वह नष्ट कर देता है।

जब कोई अशुभ कर्म का उदय आया तो ज्ञानी ने उस विषय मे विचार किया, उसका उसकी ओर ख्याल ही न गया, अपने उपयोग को उसने धर्मचर्या मे लगा दिया इससे जो अशुभ के बीज थे वे अशुभ की जगह शुभ के बीज हो गए। तो वह अशुभ भी शुभ मे परिवर्तित हो गया। अशुभ का उदय आया तो उसे समता दिया। जैसे—उन दोनो पुत्रो की मृत्यु हुई, अशुभ का उदय आया लेकिन उसको उन्होने नही भोगा। वे सोचने लगे कि यदि ये दोनों पुत्र जीवित रहते तो इनके भविष्य के लिये हमे इन्तजाम करना पड़ता,। अब वह सब मेरी जिम्मेदारी खतम हो गई। जितनी शक्ति उन लडको के पीछे लगाना था वह सब अपने आत्मकल्याण मे लगाऊँगा तो देखिये शुभ विचारधारा से अशुभ भी बदल गया।

संक्रमण ऐसा होता है। कहीं ऐसा नहीं है कि यों ही पड़े पड़े सक्रमण हो जाय। संक्रमण तब होता है जबकि अपने विचारो को बदल दें। मान लो किसी

की दोनों आँखें अंधी हो, उसे वहीं कुछ नहीं दिखता तो वह किसी बच्चे को बुलाकर कुछ विनती पाठ वगैरह उससे पढ़वाकर अपने उस ध्यान को बदल सकता है। तो उसके अशुभकर्म का उदय लेकिन वह अपने पुरुषार्थ से उसे शुभ मे परिवर्तित कर सकता है। इस ढंग से बताया कि हम अपने शुभ या अशुभ कर्म को अपने पुरुषार्थ से बदल सकते हैं। तो एक वर्तमान का परिणाम जो हमारे अशुभ को नष्ट कर देगा और शुभ की सत्ता मे जायगा, अब वह हमारे भाग्य को शुभ मे जाकर नवीन रूप मे निर्माण करेगा।

एक घड़े के अन्दर अगर जहर पड़ा है और उस जहर को आप धीरे-धीरे निकालते जायें या उसमे कोई सूराख हो जाय तो वह सब जहर निकलता रहता है, एक तो उस जहर के निकालने की यह विधि है और दूसरी विधि यह है कि आप उस जहर मे शहद ऊपर से डालते जायें तो धीरे-धीरे वह सब जहर समाप्त हो जायगा और फिर आप देखेंगे कि घड़ा शहद से भर गया, उसमे जहर नहीं रहा तो ऐसे ही हमारे अन्दर भी जो अशुभ का घड़ा है उस पर अगर ऊपर से शुभ डालते चले जायेंगे तो धीरे-धीरे वह सब अशुभ खाली होता जायगा और शुभ से भर जायगा।

और घड़ों मे तो यह भी हो सकता है कि ऊपर से कोई चीज डालें तो वही वह ऊपर की ऊपर ही रह जाय और नीचे की चीज नीचे बनी रहे, पर इस घड़े में ऐसा नहीं होता। शुभ डालने से अशुभ पूरा का पूरा समाप्त हो जाता है। मानलो कोई आदमी पहले जुआ खेलता था, शराब पीता था तो उससे उसका सारा धन नष्ट हो गया, पर वही व्यक्ति यदि धर्मसभा मे आकर बैठ गया और उसका हृदय वहां परिवर्तित हो गया, फिर से वह धर्ममार्ग मे आ गया और उसका वह अशुभ कर्म का उदय शुभ मे परिवर्तित हो गया। साथ-साथ शुभ का उदय भी होता है और सत्ता भी होती है तो अगला क्षण भी आपका शुभ का क्षण आ जाता है।

तो ऐसा एक क्षण का परिणाम आपकी सत्ता को बदलता, आपके भाग्य को बदलता और पहले क्षण की निर्जरा भी करा देता है, इसलिये कहा कि पुरुषार्थ बलशाली है। विवेक का जो जागरण है वह आपको इस समय भी आनन्दित कर सकता है आपके भाग्य को भी बदल सकता है और पूरे रूप मे इस संसार का विनाश करके पूर्ण निर्जरा भी कर सकता है।

कर्मों का उदय आने पर उदय तो अपना ही है। ये कर्म पीछा किसी का

नहीं छोड़ते। कर्मों का उदय आने पर भगवान पार्श्वनाथ पर भी बड़ा उपसर्ग आया। वादिराज मुनि के भी जब अशुभ कर्म का उदय आया तो उनके शरीर में कोढ़ हो गया। जो पहले बीज बोये थे वे उदय में आये लेकिन उनको अपने विवेक से, पुरुषार्थ से हँस हँसकर टाल दिया, उन्हें भोगा नहीं।

देव आये वैद्य का रूप बनाकर और इधर उधर गलियों में घूम-घूमकर अपनी दवाओं की प्रशंसा करने लगे। वहाँ वादिराज मुनि पूछ बैठे कि आप किस चीज का इलाज करते हो? तो देव बोले—कुष्टका! तो वादिराज मुनि बोले—अच्छा तो मेरे आत्मा में जो अनादि काल का कुष्ट रोग लगा है उसका इलाज आप कर दीजिये। शरीर के कुष्ट रोग का इलाज करने की मुझे कुछ जरुरत नहीं। जब मेरे आत्मा का कुष्ट रोग दूर हो जायगा तो शरीर का कुष्ट रोग तो अपने आप ही दूर हो जायगा। अब देखिये—वादिराज मुनि को अशुभ कर्म के उदय से कुष्ट रोग हुआ लेकिन उन्होंने उसे अपने विवेक बल से भोगा नहीं तो वह शुभ के रूप में परिवर्तित हो गया।

श्रीराम, लक्ष्मण व सीता वगैरह को भी उनके अशुभ कर्म का उदय जब आया तो वे जंगलों की खाक छानते फिरे लेकिन उनको विवेक था, धैर्य था, सो वहाँ भी उन्होंने उस अशुभ कर्म के उदय को नहीं भोगा। तो पुरुषार्थ बलवान है, विवेक रखो। दरिद्रता आती है तो आये इसकी कुछ परवाह न करो। अरे कम से कम इतना धन तो है ही कि दो रोटियाँ आराम से मिल जाती हैं। आपको सब इन्द्रियाँ ठीक-ठीक मिली हुई हैं उनका आप अच्छी जगह उपयोग कर सकते हैं। हर उपायों से आप अपने में विवेक पैदा करें। इस विवेक बल से हमारे पूर्वबद्ध कर्मों की निर्जरा भी हो सकती है और वर्तमान के क्षणों में हम अपने को आनन्दित भी कर सकते हैं।

जमा घटाना—ब्यौरा न चलेगा

राज्य और परिवार के दिन जाने पर राजा की मृत्यु हो जाने के बाद रानी और उसका इकलौता बेटा दोनों अपने ननिहाल में रहते थे। रहते-रहते बहुत दिन बीत गए। माँ ने सोचा कि बहुत दिन किसी के यहाँ रहना बोझ है। चाहे वह भाई का घर हो या बाप का घर हो। ऐसा विचार कर वह घर से विदा हो गई। घर से विदा होते समय मामा ने अपने भान्जे के हाथ पर एक थैली भेंट स्वरूप रख दी तो उसे पाकर वह बच्चा बड़ा खुश हुआ और उसने वह थैली अपनी माँ को दे दी। और कहा कि यह थैली मामा ने दी है। माँ ने जब उसे खोलकर देखा तो उसके अन्दर कोयला था। कोयला देखकर वह बड़ी दुखी हुई और उसने अपने भाई से कहा—भैया ठीक है कि इस समय मेरे दुख के दिन हैं लेकिन कम से कम हमारा अपमान तो न करो। तो भाई ने कहा—मैंने तो आपका कुछ अपमान नहीं किया, आप यह क्या कह रही ? तो वह माँ बोली तुमने अपने भांजे के हाथ एक थैली भेंट की है तो सब लोग तो शकुन के लिये अच्छी-अच्छी चीजें भेंट करते, फल, फूल मिठाई वगैरह भेंट करते है पर तुमने तो कोयला भेंट करके अपशकुन जैसी बात पैदा कर दिया है। यह बात सुनकर वह भाई चौंक पड़ा और बोला—मैंने कोयला नहीं भेंट किया, मैंने तो अशर्फियाँ भेंट की थी। जब उसने अपने हाथ मे थैली लिया तो अशर्फियाँ हो गई। तो जैसे कहते है न कि जब शुभ कर्म का उदय होता है तो कोयला भी अशर्फी बन जाता है और जब अशुभकर्म का उदय होता है तो अशर्फी भी कोयला बन जाती है। सो अशुभ कर्म के उदय से उस बेटे के हाथ अशर्फी की थैली आने पर भी कोयला बन गया और फिर उस भाई ने उसे अपने हाथ मे लिया तो फिर वह कोयला भी अशर्फी बन गया।

खैर वे माँ बेटा दोनो ही वहाँ से चल दिये और कहीं जाकर एक सेठ के घर नौकरी कर ली। जो रानी कभी महलो मे रहा करती थी, जमीन पर पैर नहीं रखती थी वह अब सेठ के घर जूठे बरतन माँज रही थी तो उस समय उसने जो जो सकट सहा होगा उसे कुछ कहा नहीं जा सकता। एक दिन उस माँ का वह बेटा मचल गया, उसने कहा—माँ मैं तो खीर खाऊँगा। तो उस

समय वह माँ रो पड़ी अपने दिनों की याद करके कि देखो महलों मे रहने वाले इस बच्चे को आज खीर तक भी नसीब नहीं हो रही। उसने वहाँ बच्चे को डपट दिया और कहा—कहाँ से लाऊँ तेरे लिए खीर ? बच्चा रोने लगा। बच्चे को रोते देखकर सेठ को कुछ दया आयी और कुछ पैसे देते हुए कहा—लो ये पैसे काम छोड़ दो बाजार से दूध वगैरह लाकर खीर बनाकर इस बच्चे को खिलावो। सो वह माँ अपने घर गई और बाजार से दूध, वगैरह लाकर खीर का इन्तजाम किया। जब खीर पक गई तो बच्चे ने खाने को माँगा तो वह माँ बोली बेटा अच्छे कुल की रीति है कि किसी त्यागी व्रती साधु वगैरह को आहार देना पीछे खुद खाना, तो मैं कुवें से पानी भर लाऊँ, तुम यही दरवाजे पर बैठना, यदि तुम्हें कोई साधु महात्मा दिख जाये तो उसे रोक लेना, पहले उसे खिला देंगे, पीछे हम तुम खायेंगे। तो वह माँ तो पानी भरने चली गई, इधर किस्मत की बात कि एक साधु आहार चर्या के लिए आ ही गए।

उस बच्चे ने साधु के पास जाकर कहा मेरी माँ ने कहा है कि कोई साधु अगर इधर से निकले तो रोक लेना, आज हमारी माँ ने बड़ी अच्छी खीर बनायी है, उसे आप खाकर जाना। इतने में ही वह माँ पानी से भरा कलश लेकर आ गई, साधु को अपने द्वार पर खड़ा हुआ देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुई, तुरन्त पड़गाह कर आहार दान दिया। साधु आहार लेकर व कुछ आशीर्वाद देकर चला गया।

अब यहाँ उस बच्चे की भावनाओं पर कुछ ख्याल कीजिये—उसके मन में यह न था कि मुझे कुछ पुण्यबन्ध हो या मेरा कुछ अच्छा हो, यह कुछ उसे पता न था, सिर्फ प्रेम था कि मैं साधु को कुछ खिला सकूँ। वह बच्चा ऐसा भी तो सोच सकता था कि जरा सी तो खीर बनी है उसमे क्या हम खायें और क्या साधु को खिलायें, पर यह कुछ नहीं सोचा। जब साधु आहार लेकर चला गया तो उसके बाद बच्चे को बड़ा चाव था कि हम खीर खा लें पर माँ ने कहा बेटा देखो जो अकेले-अकेले खाता है वह राक्षस होता है और जो बाँट कर खाता है वह देव होता है तो बोलो तुम देव बनना चाहते हो या राक्षस ? तो वह बच्चा बोला—माँ मैं राक्षस क्यों बनूँ ? मैं तो देव बनूँगा। तो माँ ने बता दिया कि पहले उस खीर को तमाम लोगों को प्रसाद रूप में बाँटा फिर उन्होंने सबसे बाद में भोजन किया। कहते हैं कि उस साधु के

आहार में खीर दे। बाद में खीर की इतनी बढ़ोतरी हो गई थी कि कितने ही लोगों को उसने खीर बांटी फिर भी खीर कम नहीं पड़ी।

आप लोग अपने-अपने घरों में रोज-रोज रोटियाँ बनाते हैं चौका नहीं लगाते, चौका लगाने का मतलब है एक यज्ञ जैसा करना। जिस चौके में साधु आहार कर जाता है उसमें कितने ही लोग खा जायें पर किसी बात की कमी नहीं पड़ती। तो कहते हैं कि जिसकी भावना श्रेष्ठ है उसकी चीज में भी बरकत होती है। उन माँ बेटा दोनों ने सबसे अन्त में भोजन किया था फिर भी वह भोजन कम नहीं हुआ, इसका नाम है भावना।

कोई एक साधु था उसके पास जो भी आता था वह कुछ न कुछ चढ़ाता था, दूध, घी, फल-फूल, रुपया पैसा वगैरह। तो वह साधु क्या करता था कि चढ़ाने वालों को वह दूना करके लौटा देता था। एक बार कोई महिला जेवर चढ़ाने आयी तो उसे भी साधु ने दूना जेवर करके लौटा दिया। यह दृश्य देख लिया किसी दूसरी महिला ने। उसने सोचा कि यह तो धन कमाने का अच्छा उपाय है। जो जितना धन इस साधु के ऊपर चढ़ाता है उसे दूना मिल जाता है, तो मैं अपने घर का सारा जेवर चढ़ाकर क्यों न अपना जेवर दुगुना बना लूँ। यह सोचकर वह घर गई और अपने घर के सारे जेवर उस साधु के ऊपर चढ़ा दिया। साधु उस महिला के मन की सब बात समझ गया और उसने वह सारा जेवर अपने पास रख लिया।

जब सब जेवर साधु ने रख लिया, दूना करके देना तो दूर रहा, ज्यों का त्यों भी न वापिस किया तो उसके मन में आया कि यह कोई साधु नहीं है, इसकी बदनामी करना चाहिये। यह सोचकर उसने सबसे कहा कि इस साधु ने तो मेरा सारा चढ़ाया हुआ जेवर अपने पास रख लिया तो वहाँ साधु ने सबसे बताया कि इस महिला ने अपना जेवर चढ़ाया ही कहाँ था? अगर चढ़ाती तो पाती। यहाँ तो जो चढ़ाता है वह पाता है। इसने तो यह सोचकर चढ़ाया कि मुझे इसका दूना मिलेगा तो यह चढ़ाना कहाँ हुआ? इसलिये अपने पास रख लिया।

तो चढ़ाकर या दान देकर जो लेने की भावना करता है उसको कुछ मिलता नहीं हैं क्योंकि देने की भावना का लेने की भावना में परिवर्तन हो गया। जब भावना में परिवर्तन हुआ तो उसका कर्म बदल गया। जो अशुभ था, जो वासना थी वह जब नष्ट हो गई तो दान की भावना आयी और

जब दान की भावना आयी तो वासना नष्ट हो गई। और जब दान की भावना बलवती हो गई तो इसका जो परिणाम हुआ उसका नाम है सक्रमण।

सक्रमण का अर्थ है बदलना। यहाँ बदलने का अर्थ है कि सत्ता मे पडा कर्म बदल जाय। जब आपकी वासना नष्ट होगी तो दान की भावना होगी और जब दान की भावना होगी तो उससे लाभ भी मिलेगा। अगर दान देने की भावना नही है उल्टा लेने की भावना है तो वहाँ वासना है और यदि वासना है तो आप मे बदला क्या ?

लोग तो सोचते हैं कि शुभ कर्म से हमारा अशुभ कर्म टल जायगा। जो भी पाप मैंने किये हो, बेईमानी की हो, झूठ बोला हो, चोरी की हो कुछ भी पाप किया हो तो उसके बदले में कुछ प्रायश्चित कर लें तो मेरा वह पाप धुल जायेगा ऐसी लोगों की धारणा है तो इस सन्दर्भ मे आप सुनो— प्रायश्चित उसे कहते हैं जहाँ आप मे क्षण भर को कुछ विवेक आये कि मेरी अमुक वासना गलत है। सिर्फ भावना करने का नाम प्रायश्चित नहीं है। उसके बाद फिर वह वासना ही न रहे इसका नाम प्रायश्चित है।

जैसे आपने किसी बच्चे को पहले तो पीट दिया, पीछे रोते हो कि मैंने बडी गल्ती की जो बच्चे को पीट दिया। तो यह पीछे का रोना तो अशुभ कर्म का बन्ध कराता है क्योकि रोना अपने आप मे सक्लेश परिणाम है। रोना शुभ परिणाम नहीं है। बताओ सक्लेश के समय आपका परिणाम कैसा होता है ? अगर सक्लेश की अनुभूति होती है तो उससे अशुभ कर्म का बन्ध होता है शुभ का नहीं। इस प्रकार का रुदन आपको पुन. क्रोध करने के लिये प्रेरित करता है फिर क्रोध करने लगोगे फिर रोने लगोगे। तो बताओ वह प्रायश्चित कहाँ हुआ ? वह तो क्षण भर को जागना हुआ। अब रोना मत, सिर्फ जागना है।

असली बात यह है कि सिर्फ आप जाग जायें ताकि आप से गल्ती न हो। दूसरी बात आपका अशुभ शुभ मे कब परिवर्तित होगा जबकि आपकी अशुभ की वासनायें रुक जायें। अशुभ की वासनायें रुकने पर शुभ की धारा शुरू हो जायेगी। अगर आप भगवान की प्रार्थना करते हुए कहे कि हे भगवान मेरी इस मुकदमे मे जीत हो जाये तो मैं आपकी वेदी बनवा दूँ। इस प्रकार का एक सौदा जैसा आप भगवान से भी करते हैं। यहाँ तो जब सौदा किया जाता तो कुछ न कुछ एडवास भी देना पड़ता है लेकिन भगवान को एडवास

जाते लेकिन देखा है तो उसके अनुसार चाय चीज खरीदते हैं। पहले आदमी को मार्केट में चाय की साख जमाने के लिये सही माल देना होता है। हजारों बार आदमी देखता कि इस डिब्बे में सही माल मिलता है तो लोग उस डिब्बे के लेबिल से बंध जाते हैं, उनका मन बंध जाता है। हजारों बार खरीदा है, मेरे बाप ने खरीदा है मेरे नौकरों ने खरीदा है, मेरे बच्चों ने खरीदा है चाहे जो खरीदे, चीज सही और पूरी मिलती है, ऐसा सोचा तो विश्वास हो जाता और उस विश्वास हो जाने पर फिर स्वाभाविक किसी डिब्बे में ५० ग्राम की जगह ४५ ग्राम ही यह चीज हो फिर भी उस पर कोई विशेष ध्यान नहीं देता। वह इस भुलावे में आ जायेगा कि इसमें चीज सही और पूरी है। तो विश्वास बड़ी चीज है। कहते हैं न कि अगर पैसा गया तो कुछ नहीं गया, स्वास्थ्य गया तो कुछ कुछ गया और विश्वास गया तो सब कुछ चला गया।

दुनिया में जितने व्यापार चलते हैं, जितने रिश्ते चलते हैं वे सब विश्वास से चलते हैं। जो लोग अपना विश्वास खो देते हैं वे अगर सही माल भी बेचने लग जायें तो भी उनकी दुकान पर कोई न जायगा। एक बार किसी ग्राहक को आप बेइमानी से सौदा दे दें, ठग लें तो अगले दिन वह आपकी दुकान पर न जायेगा। हाँ अभी दूसरों के मन में विश्वास है तो वे आयेंगे और अगर उनको भी उसी तरह से ठगना शुरू कर दिया तो धीरे-धीरे वे भी आना बन्द कर देंगे। जैसे-जैसे लोगों का विश्वास आपके प्रति उठता जायगा वैसे ही वैसे आपका काम खतम होता जायगा।

तो असली सिक्कों के भेष में नकली सिक्के चलते हैं सीधे नहीं। बेईमानी भी सीधे कभी भी सफल नहीं होती है। लोग असली पर विश्वास करते हैं नकली पर नहीं। थोड़े दिन बेइमानी का नकली सिक्का चलता है वह भी ईमानदारी की भ्रान्ति में चलता है।

यहाँ दो सूत्र बताये - पहला सूत्र तो यह बताया कि बेइमानी आज सफल होते दिखती है। दिखता है कि बेइमानी से धन आया लेकिन कालान्तर में उसका परिणाम बड़ा खराब होता है। जो बेईमानी का सिक्का चला तो वह ईमानदारी के भेष में चला, तो वास्तव में ईमानदारी चली, बेइमानी नहीं। ईमानदारी की भ्रान्ति में वह सिक्का चल गया। जब भ्रान्ति टूटेगी तो बेइमानी प्रकट हो जायगी। फिर उस आदमी पर से विश्वास उठ जायगा तो वह सिक्का फेल हो जायगा।

तीसरी बात यह है कि बेइमानी भी कब सफल होती है जबकि बेइमानी के साथ में किसी आदमी के पास बहुत सारे गुण हो। किसी में एक बेइमानी हो लेकिन १० दूसरे गुण हों तब एक बेइमानी सफल होते दिखती है। जैसे-किसी आदमी को एक नकली नोट चलाना हो तो उसके ऊपर और नीचे कम से कम १०-१० नोटें और रखनी पड़ेंगी तब उनके बीच मे एक नकली नोट चल पायेगी अगर १० तो नकली नोट हों और दो असली हो तो वहाँ वे नकली नोट न चलेंगे। एक नकली नोट को चलाने के लिये २० असली नोट देने पड़ेंगे ऐसे ही एक दोष को छिपाने के लिये अनेकों गुण लाने पड़ेंगे तब वह दोष छिप सकता है। जब किसी के पास हजारों गुण हों तब कहीं एक दोष छिप पाता है। तो एक दोष सफल नहीं हो रहा। हजारों गुणों मे आपको एक दोष दिखता है तब वह सफल होता दिख रहा।

आप यह देखें कि एक पाकेटमार कब आपकी जेब काट सकता है। तो देखिए—पहली बात तो यह है कि वह बड़ा खुश मिजाज हो। उसके चेहरे पर मुस्कराहट हो। दूसरी बात यह कि वह बड़ा मिलनसार हो। सबसे खूब हँसकर बोलता हो। अगर हँसकर नहीं बोलता तो आप उसे अपने पास ही न बैठायेंगे और पास न बैठायेंगे तो आपकी पाकेट वह साफ नहीं कर सकता।

तो पाकेट काटने वाले मे एक यह भी गुण होता कि वह चलते फिरते किसी भी आदमी को अपना मित्र बना लेगा। वह सबसे प्रेम से हँस हँसकर बोलेगा वह आपके भीतर अपना बड़ा विश्वास पैदा करा देगा। यदि आपका बच्चा रो रहा हो तो वह आपके बच्चे को भी लेकर खिलाने लगेगा ताकि आप उस पर विश्वास करने लगें और बीच-बीच स्टेशनो पर उतर उतरकर वह आपके बच्चे के लिये टाफी बिस्कुट वगैरह भी ला देगा, पैसे भी अपने ही खर्च कर लेगा। अगर आप कहें कि ये पैसे तो आप ले लें तो वह कह देता कि अजी पैसे क्या लेना, जैसे मेरा बच्चा वैसे आपका बच्चा और मान लो कदाचित वह बच्चा उसके ऊपर पेशाब कर दे तो उसका भी वह कुछ बुरा नहीं मानता, वह तो कह देता—अजी बच्चा है, क्या हुआ, यह तो मेरे लिये गंगा जल है। यों कितने ही गुण आपको उस पाकेट काटने वाले में दिख जायेंगे। बड़ा विश्वास पैदा करा देने पर फिर वह आपकी पाकेट में हाथ लगायगा। यो ही कोई सीधा आकर किसी की पाकेट में हाथ नहीं लगा सकता।

एक दुकानदार भी मब सफल होगा ? आप तो कहते कि वह बड़ा धर्मात्मा आदमी है इसलिये वह अपने काम काज में बड़ा सफल होता है। पर धर्मात्मा किसे कहते सो तो बताओ ? क्या जो पूजा पाठ कर लेता वही धर्मात्मा कहलाता ? अरे जिसमें आत्मविश्वास हो वह धर्मात्मा है। कोई कोई तो ऐसे भी लोग हैं जो पूजा पाठ करके या सिद्ध चक्र विधान वगैरह करके जब कोई दुकान धंधा करने बैठते तो पहले से ही भगवान से प्रार्थना करने लगते कि हे भगवान मैंने आपकी पूजा की है। मैंने सिद्ध चक्र विधान किया है— मेरा ख्याल रखना ? अरे वहाँ जब आप भगवान से एक भीख जैसी करते हैं तो आप में अभी आत्मविश्वास बना ही कहाँ ? क्या पूजा पाठ वगैरह करने से ग्राहक लोग आपके पास आयेंगे ? ग्राहक लोग तो आपके पास तब आयेंगे जबकि आपके प्रति ग्राहकों को विश्वास हो।

विश्वास होना एक बहुत बड़ी चीज है। विश्वास दिलाने के लिये ही तो लोग अपने ग्राहकों से बड़ा मधुर वचन व्यवहार करते हैं—जैसे आइये साहब बैठिये—आपको चाय लाऊँ, जल लाऊँ इत्यादि। आपको क्या चाहिये—आपको जो चाहिये हो इन सब चीजों में से मनपसन्द छाँट लीजिये, बाजार में आप सब जगह इसका पता लगा लीजिये तब दाम दीजिये—यों कितना ही प्रेम दिखाकर आप उसमें विश्वास पैदा कराते हैं तब वह ग्राहक आपसे सौदा खरीदता है। अगर चार पैसे अधिक लग जायें तब भी आपके प्रेम व्यवहार की वजह से वह कुछ परवाह नहीं करता।

विश्वास के साथ ही साथ आपमें एक बड़ा साहस भी होना चाहिये। यदि आपमें विज्ञापन सम्बन्धी खर्च करने का साहस है तो आपका रोजिगार चमक सकता है। अब यदि आप ग्राहकों को विश्वास भी न दिलावें, विज्ञापन में खर्च करने का साहस न करें और आप सोचें कि हमारी दुकान अच्छी तरह चले तो भला बताओ कैसे चल सकती ? आप में इन सब गुणों के होते हुये यदि एक बेइमानी का दोष आ जाता है तो वह आपके इन सारे गुणों पर पानी फेर देता है। जैसे कड़ाई में रखे दूध के अन्दर अगर फिर की एक कणिका भी मिला दी जाय तो सारा दूध फिटिया हो जाता है इसी प्रकार बहुत से गुण होने पर भी अगर बेइमानी का दोष आ जाता है तो वह भी इन सारे गुणों को मिट्टी में मिला देता है।

किसी में गुण तो अनेकों हों और दोष एक ही हो तो उस दोष को लेकर

कहने लगते कि देखो आजकल के जमाने में बेईमानी ही फल पाती है मगर उसके लिये कहा है कि यह बेईमानी तो एक बहुत बडा दोष है, अगर उसमें यह एक दोष न आये तो वह तो एक योगी है।

सफल गुण होते है बेईमानी नही। आप किसी भी क्षेत्र में देख लें-चाहे कोई सर्विस मे हो, मैनेजर हो, मालिक हो, मजदूर हो·· सब जगह गुण ही सफल होते हैं, प्रार्थना नही। आपमें इतना विश्वास होना चाहिये कि मैंने आज पूजा पाठ वगैरह अच्छे कार्य किया है तो काम काज मे लाभ तो स्वयमेव होगा, उसके लिये ऐसा क्यों सोचना कि पता नही आज लाभ होगा भी या नही। यदि आपको आत्म विश्वास नही है, मन मे कुछ शका रहती है तो समझो कि हमने वहाँ पाठ किया ही न था। भगवान का पूजा पाठ करके तो आपके अन्दर गुण आने चाहिये थे। और अगर आपमें कुछ गुण नहीं आये तो फिर आपकी दूकान भी न चलेगी। आपकी दूकान चलेगी विश्वास से।

किसी व्यक्ति ने अगर पूर्वजन्म मे पुण्यकर्म का अर्जन किया हो या इस जीवन में अगर उसमें गुण हैं तो शास्त्रीय भाषा मे इसे पुण्य कहते हैं, यह गुण सफल होता है, दोष सफल नही होता। प्रत्येक जगह हम ऐसे गुण अर्जित करने की कोशिश करें। अगर हममें गुण हों तो हर जगह हम सफल हो सकते है। आदमी अगर अपनी साख जमा ले व्यापार मे, समाज मे तो सब जगह वह श्रद्धा भी प्राप्त करता है और वह अपने काम काज मे सफल भी हो सकता है।

तो हम आपको साख जमाने के लिये इन गुणो के आधार पर कोशिश करें जिससे कि हमें हर क्षेत्र मे सफलता मिल सके। बहुत से गुणो के होने पर भी बेईमानी का एक यह दोष आपके सब गुणो पर पानी फेर देता है। अगर कोई एक यह दोष अपने से निकाल दे तो वह योगी जैसा है, वह सब तरफ से लोगो से श्रद्धा पाता है, सत्कार पाता है, प्रशसा का पात्र बनता है।

——–

अधिकार और कर्त्तव्य

प्रार्थना नाम किसका है ? जितने भी पूजा पाठ धर्म आदिक होते हैं वे सब इस प्रलोभन से होते हैं कि हमें दुःख न मिले। हमें अपने सुख की फिकर होती कि सुख मिलना चाहिये। अगर कोई ऋषि या कोई शास्त्र आपको यह सुझाव दे दे कि तुम इतने जीव मार दो तो तुम्हे स्वर्ग मिल जायगा तो आप अपने स्वर्ग की लालसा से ऐसा भी कर सकते हैं। किसी ने कहा कि इतने खटमल मार दो तो स्वर्ग मिल जायगा या यह कह दे कि तुम अगर चूहों को बिल्ली से बचाते हो तो तुम्हे पाप लगता है तो वहाँ आप यही कहेंगे कि मुझे आपकी ऐसी सलाह न चाहिये। आप वहाँ पाप या पुण्य की बात ढूँढते हैं। प्रार्थना तो कहते हैं कि यह आपकी कोई प्रार्थना नहीं कहलाती है। प्रार्थना तो कहलाता है प्रेम। जैसे माँ अपने आप कष्ट उठा ले लेकिन बच्चे को कष्ट नहीं होने देती। खुद गीले मे सो जाय लेकिन बच्चा सूखे में सोये। खुद भूखी रह जाय लेकिन बच्चे को खिला दे। वह माँ बच्चे को खिलाने मे आनन्द मानती, खाने मे नहीं। तो प्रार्थना इसका नाम है। ऐसी जिसने भगवान की प्रार्थना की हो तो वह कहलाती है प्रभु की प्रार्थना और अगर ऐसा प्रेम भाव नहीं है तो वह प्रार्थना नहीं है।

इस प्रार्थना की कसौटी क्या है? अहिंसा। अभी तक हमने आपको अध्यात्म बताया है। अध्यात्म केन्द्र है और व्यवहार आपकी परिधि है। जैसे आप किसी कार मे बैठे तो उसका स्टेरिंग आपके हाथ मे होना चाहिये। वह केन्द्र है। जिधर चाहे उधर घुमा सकते, लेकिन उसका एक्सीलेटर आपके पैर के नीचे होता है, वह केन्द्र मे है। उसमे आप अपने पैर से गति देते हैं तो वह परिधि है। पर यदि किसी गाड़ी का ब्रेक तो काम करता है और उसका स्टेयरिंग आपके हाथ मे न हो तो क्या वह गाड़ी कुशलता से चल सकेगी? नहीं चल सकेगी। इसलिए कहना है कि दोनो ही चीजें चाहिये। केन्द्र माने आध्यात्मिक जागरण भी चाहिए और बाहर की परिधि भी चाहिये। इसलिये जैन-मत में धर्म दो प्रकार का कहा—(१) निश्चय और (२) व्यवहार। निश्चय का मतलब है आपका अंतः जागरण और व्यवहार का मतलब है बाह्य आचरण।

आप व्यवहार में दूसरे लोगों के साथ कैसे जीते हो ? अगर आपके अन्त जागरण आया है तो आप में अहिंसा आ जायगी और अगर बाहर में अहिंसा नही आयी है तो समझो कि अभी अन्त. जागरण नही आया। अगर भीतर में आपको आत्मानुभूति हुई है तो जैसे उसके प्राण है वैसे ही दूसरे के प्राण हैं यह प्रतीति में आ जायेगा इसलिये किसी दूसरे जीव की हिंसा नही हो सकती। तो यह पहली बात हो गई कि आपके भीतर जागरण होना चाहिये। भीतर का केन्द्र आपके हाथ में हो। और फिर बाहर में आप कैसे जियें, इसका नाम व्यवहार धर्म कहलाता है। आदमी अकेला नहीं जीता। अकेला रह ही नही सकता। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। जैसे कही एक पर एक करके दो चार बर्तन रखे हो और उनमे से नीचे का या बीच का बर्तन हटा दिया जाय तो उसके ऊपर के सारे बर्तन गिर जायेंगे और फूट जायेंगे। अब अगर नीचे वाला बर्तन कहे कि मैंने ऊपर वाले बर्तन को फोडने की कोशिश नहीं की। मै एक स्वतन्त्र द्रव्य हू तो उसकी यह बात खतरे से खाली न होगी।

निश्चय मे तो तुम एक स्वतन्त्र द्रव्य हो लेकिन ऊपर वालो से तुम जुडे हुए हो। तुम अगर बीच से निकल जाओगे तो ऊपर वालो की वही हालत होगी जोकि एक पर एक रखे हुए ऊपर के बर्तनो की होती है। इसलिये जब कुछ चीजें एक साथ जुडी हुई रखी हो तो वहाँ ध्यान रखना चाहिये कि वही टकरायें नही। यदि टकरा गईं तो फिर उन सबका नुकसान हो जायगा। तो अगर एक चीज हो अकेली हो तो वह मौज मे जी सकती है लेकिन अगर उसके साथ दसो चीजें हो तो वहां प्रत्येक चीज का एक दूसरे के प्रति कुछ कर्त्तव्य हो जाता है। तो ऐसे ही हम व्यवहार धर्म को लें तो घर मे जीते है। हमारी जो पैदाइश होती है वह अकेले नहीं होती। बताओ कौन मनुष्य है ऐसा जिसकी पैदाइश अकेले ही होती हो ? ऐसा कोई नही है। सबका जन्म माता पिता के सयोग से होता है सबका जन्म दो पर टिका हुआ है एक पर नही। वह पैदा हुआ बच्चा फिर माता पिता के द्वारा पलता पुसता है।

तो जहाँ माँ बाप ने बच्चे का जन्म दिया वहाँ उन माता पिता का भी यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वे अपने बच्चे का विधिवत पालन पोषण करें। उधर उस बच्चे का भी यह कर्त्तव्य हो जाता है कि जिस माता पिता के द्वारा वह पल पुसकर इतना बडा हो जाता है वह अपने माता पिता से कभी टकराये नही। घर मे रहकर सब अपने अपने कर्त्तव्यो का पालन करें यह गृहस्थो का

धर्म कहलाता है। यह धर्म शुरू कहाँ से होता है या अन्तिम धर्म कहाँ होगा? तो देखिये—एक छोरसे पकड़ने की बात है। जब कोई अध्यात्म की गहराई में उतरता है तो वह भी परिधि में आता है और परिवार के प्रति उसका कर्त्तव्य है इसलिये अपने कर्त्तव्य को पूरा करने को योगीजन बस्तियों में आये है, लोगो के बीच आये है क्योंकि कर्त्तव्य है।

जिन्होने उनके शरीर को बनाया, पाला पोसा, उन्हे वातावरण दिया, उन्हे परमाणु दिया जिन परमाणुओ से वे साधना कर सके तो उस समाज के प्रति, उस देश के प्रति उनका क्या कर्त्तव्य है, उसको अकेले भोगना बुरा है। जो हमने कमाया है यह केवल हमारी सम्पत्ति नही है, अनेक लोगो ने मुझे सहयोग दिया है।

गर्भादान के समय माँ बाप के विचार अगर खराब हो तो उस समय उत्तम आत्मा का अवतरण नही हो सकता, क्योंकि अगर माँ बाप उस समय प्रेम मे न हो, क्रोधित हो, तीव्र वासना हो या बहुत खोटे परिणाम हो तो उस समय उनके शरीर से जो भी रस फूटेगा उसके परमाणुओ से जिस शरीर का निर्माण होगा वह शरीर आध्यात्मिक साधना के लिये उपयोगी नही हो सकता।

जितनी भी हमारी वैभाविक पर्यायें होती है वे आध्यात्मिक दृष्टि से पर के सहयोग से होती है और जितनी स्वाभाविक पर्यायें होती है वे सब पर के सहयोग के बिना होती है। जितनी अशुद्ध पर्यायें होगी वे संयोगज होती है। तो संयोग अगर सही न हो तो पर्याय शुभ न होगी, अशुभ होगी। जैसे कोई माँ अपने बच्चे को उसके जन्म लेने के बाद उसे रोज-रोज तमाम गाली देती है, उसे दूषित वातावरण मे रखती है तो फिर उस बच्चे मे कभी आत्मकल्याण के विचार नही आ सकते। कितने ही लोगो का, समाज का, परिवार का, शिक्षको का हाथ है, एक व्यक्ति के बनने मे अनेक लोगो का हाथ है तो उसमे मैंने जो पाया है उसे अकेले भोगलूँ तो वह अपराध होगा। इसलिये जो भी पाया है उसे बांटने के लिये मुझे समाज के बीच आना पड़ा। मैंने जो आनन्द पाया, जो आत्मा परमात्मा का स्वरूप पाया, जो खुशबू पायी वह अकेले मुझे नहीं भोगना है, अगर उसे अकेले भोगकर मर जाय तो वह परिग्रही कहलाता है।

आपने सुना होगा कि जब किसी के पास कोई औषधि होती है या विद्या होती है तो उससे लोग कहने लगते हैं कि तुम अपना यह सूत्र किसी अपने

शिष्य को दे जावो, उसको साथ लेकर मर जाना अपराध है क्योंकि आपके उन सूत्रों से अनेक लोगों को लाभ हो सकता है और अगर उन सूत्रों को साथ लिये चले गये, तमाम पीड़ित लोगों ने उनसे कुछ फायदा न उठाया तो फिर उसका अपराधी वही समझा जायेगा जिसके पास वे सूत्र थे। इसलिये पहले जमाने में भी लोग अपने सूत्र अपने शिष्यों को दे जाते थे।

एक बार लाउत्से नाम के एक व्यक्ति ने कुछ सूत्र सीख लिये थे, उन्हें सीखकर वह अपने देश भगा जा रहा था। राजा के पास इस बात की शिकायत पहुंची तो राजा ने उसे अपने पास बुलाकर कहा कि तू अपने देश जा रहा है तो जो कुछ तेरे पास है वह निकाल दे। तो लाउत्से ने कहा कि राजन मेरे पास कुछ नहीं है, मैंने तो आपके सब कपड़े तक झाड़कर दिखा दिया फिर भी आपको विश्वास नहीं होता, तो राजा ने कहा—अरे तू ने जो तमाम सूत्र सीखकर एक बड़ी विभूति संचित की है वह तो तेरे भीतर है उसे तू निकाल दे, मेरी चीज आज तक कोई लेकर नहीं गया। तो राजा का इस प्रकार का आदेश सुनकर अब वह सोचने लगा कि अब क्या करें? जो कुछ सूत्र सीखा उन्हें अब कैसे निकाल दे? तो उसने क्या किया कि वहीं से सूत्रों की एक पुस्तक लिखना शुरू कर दिया "लाउत्से उपनिषद" नाम की उसमें उसने सर्वप्रथम १०० पृष्ठ खाली छोड़ दिया फिर उसके बाद में उसने प्रस्तावना लिखना शुरू किया।

तो सब से पहले प्रस्तावना में उसने क्या लिखा है कि मैंने जो लिखना चाहा था वह सब इन खाली पृष्ठों में है और जो मैं लिखना नहीं चाहता था वह सब इन लिखे पृष्ठों में है। तो पुस्तक लिखकर वह अपने सूत्र बांट गया और अगर नहीं बाँटता तो आज हमें सुनने के लिये कहां से मार्गदर्शन मिलता? कम से कम हमें उनसे कुछ संकेत तो मिलता है और यदि न बांटा होता तो हम सब उनके सुनने से वंचित रह जाते।

ऐसे ही यह अध्यात्म धर्म भी लोगों ने बांटा है, इसलिये वे भी लोक-कल्याण में आये हैं, अगर उसे अकेले-अकेले भोगते तो वे अपराधी कहला सकते थे। बताओ अहिंसा की परिपूर्णता कहां है? जीव का स्वभाव है अहिंसा। अकेले मैं भोगूँ, दूसरों को बाँट दूँ, जब तक आप सोचें कि मैं ही अकेला खाऊँ, पहले मेरा पेट भर जाये तब तक अहिंसा न आयेगी, तब तक साम्यत्व भी नहीं आयेगा।

इसलिये बताया कि धर्म का आरम्भ घर से होता है, घर में १० आदमी रहते हैं मिलकर, यदि वहाँ से आपस में मिल-जुलकर नहीं रहते तो महाभारत वहीं से शुरू हो जाता है। बच्चे के पैदा होते ही माता-पिता का कर्तव्य हो जाता है कि अपने बच्चे की रक्षा करें और वहीं से धीरे-धीरे उस बच्चे का भी अपने माँ बाप के प्रति कुछ कर्तव्य शुरू हो जाता है।

तो हम दो चीजों को समझें—अधिकार और कर्तव्य। आजकल सारी दुनिया अधिकार माँग रही है, वह अपना कर्तव्य नहीं समझ रही है। जब कोई व्यक्ति काम-काज से निपटकर अपने घर आता है तो वह अधिकार पूर्वक खाना-पीना चाहता है, अधिकार पूर्वक घर में रहना चाहता है पर मेरा माता-पिता के प्रति क्या कर्तव्य है, अपने बाल-बच्चों के प्रति क्या कर्तव्य है इस बात पर वह ध्यान नहीं देता।

अगर वह घर पर आये तो कम से कम माँ बाप को पूछे कि उन्हें क्या जरूरत है, उनको क्या सुख दुख है, इस कर्तव्य पर तो कुछ ध्यान नहीं देते। अधिकार सब चीज पर जमाना चाहते हैं, उधर माता पिता भी यह तो ध्यान नहीं देते कि बेटा काम-काज से थककर आया है उसे क्या खाना-पीना है, क्या चाहता है, वे भी उस अधिकार में बैठे हुये हैं कि सब अधिकार माँग रहे हैं, कर्तव्य कोई नहीं समझता।

घर में आते ही पत्नी ने तो सोचा था कि हमको अमुक चीज लायेंगे या यह सोचा हो कि आज हम पिक्चर में जायेंगी। अब यदि वह पुरुष उसे मना कर दे तो फिर उस पत्नी के मस्तिष्क के तार टूट जाते हैं। और जब कोई कर्तव्य की बात आती तो वहाँ चुप हो जाती है।

जब तक कोई व्यक्ति अपनी माँ को कुछ लाकर देता रहता है तब तक तो माँ उसकी पूछ करती है और जब वह कुछ नहीं दे पाता तो वह अपने मन में कुछ अरमान सा लेकर बैठ जाती है। वह यह सोचती कि जिस बेटे को मैंने सोचा था कि यह बुढ़ापा में मेरी मदद करेगा वह तो मेरी कुछ परवाह ही नहीं करता। वह तो जो कुछ लाता है वह सब अपनी स्त्री को दे देता है मुझे तो कुछ पूछता ही नहीं है। इस प्रकार के अरमान की एक गाँठ पड़ जाती है, और वह गाँठ बनते-बनते धीरे-धीरे बड़े झगड़े बन जाते हैं।

पहले एक रेशा पैदा होता है और फिर वह रेशा बढ़ते-बढ़ते फोड़ा बन जाता है। अब माँ अपने अरमान में रहती है कि मैं इससे क्यों बोलूँ, उधर

बेटा अपने अरमान मे रहता है कि मैं इतना पीडित हू, काम-काज से परेशान रहता हू पर घर आने पर मेरी मां मुझे पूछती तक नही है। सो अपने-अपने अह मे सब तने रहते हैं। सो दुनिया अपना अधिकार मांग रही है, कर्तव्य कोई नही समझ रहा, तो फिर वह घर-घर नहीं रह जाता, वह नरक बन जाता है। यह ही तो हो रहा है हर जगह हर घर के अन्दर, हर आदमी जी रहा है बडे मौज से, मगर हर आदमी की कहानी देखो तो वह रो रहा है।

देखिये—मैं तो आप सभी लोगों की कहानियां सुनती हू जिन-जिन लोगो को आप समझते कि ये बडे सुखी होंगे उनके बीच की कहानी मैं तो सुन लेती हू क्योंकि मेरे पास उनकी बहू भी आती, बच्चे भी आते, माँ भी आती, सब अपनी-अपनी कहानी सुना जाते, तो मैं अक्सर करके यही पाती हू कि सब दुखी हैं। दुःख वहां इस बात का है कि सब अपने-अपने मन में कुछ तनाव लिये बैठे हैं। वहां सब अपना-अपना अधिकार मांग रहे हैं, कर्तव्य कुछ नहीं करना चाहते। अभिप्राय नही समझते सिर्फ अपनी अपेक्षा लगाये बैठे हैं।

जब तक बेटे की शादी नही होती तब तक वह बेटा भी बैठे उठे चाहे जितनी देर से घर आवे इस पर वह माँ अधिक ध्यान नही देती। जब वह घर आता तभी उसे खिलाती-पिलाती, सारी बात पूछती। पर जहां उसका विवाह हो गया तहाँ वह माँ अपना वह सब कर्तव्य भुला देती है, उसके मन मे यह बात नही रह पाती कि यह मेरा बेटा है और इसके प्रति हमारा यह कर्तव्य है, वह तो यह समझने लगती कि यह बेटा तो अब बहू का हो गया, मेरा कहा रहा ? यह सोचकर माँ उसकी परवाह नही करती। और जब माँ को परवाह करते वह बेटा नही देखता तो फिर वह माँ से भी अपना मुख मोड लेता है। धीरे-धीरे उसके मन मे एक ऐसा तनाव पैदा हो जाता है कि उसमे भिडन्त हो जाती है। उस स्थिति के अन्दर उस मा को क्या लगने लगता कि यह बहू मेरे घर आ गई इसलिये मेरा बेटा मुझ से छिन गया। वहां दोष चाहे जरा भी न हो उस बहू का लेकिन सास उसे अपना दुश्मन मानने लगती है।

हर घर की यही कहानी है। इसलिये सबके अपने-अपने कर्तव्य हैं। बेटे का शादी होने के बाद कर्तव्य बढ जाता है। उसका [illegible] कि वह आने जाने बीच-बीच अपने माँ बाप के [illegible] । सु[illegible] दिल की बात नही सुनता तो वहाँ क्या दशा [illegible]

[illegible]

एक बार किसी शेर और बैल मे मित्रता हो गई। वे दोनो एक साथ रह रहे थे। वही कोई चीता रहता था तो उस चीते को शेर और बैल का साथ कुछ भला सा न दिखा तो उसने उन दोनो को भिड़ाना शुरू किया। सबसे पहले उसने बैल से कहा—देखो तुम इस शेर से सावधान रहना, यह बड़ा दगाबाज है, यह एक दिन तुम्हे खा जायेगा। तुम्हें खाने के लिये ही यह तुमसे मित्रता बना रहा है। उधर शेर को क्या भिडाया कि देखो यह बैल तुम्हारे पास रहकर अपनी शक्ति बढा रहा है, यह चाहता है कि मैं इस शेर को मारकर जगल का राजा मैं बन जाऊँ, तो जरा इससे सावधान रहना।

और फिर देखो—तुम तो हमे अपना साथी बना लो, इस बैल का साथ छोड दो, तुम्हारे बुजुर्गों से ही हमारे परिवार वाले मत्रणा करते चले आये हैं। तुम्हारी गद्दी ज्यो की त्यो कायम बनी रही, यह सोचकर हम तुम्हें अपनी सलाह दे रहे हैं।

वैसे तो चीता की बात सुनकर उन दोनो ने (बैल और शेर ने) उसे दुत्कार दिया था पर उनके मन मे चीते की बात आखिर बैठ ही गई, अब न तो शेर ने बैल से वह बात बताया और न बैल ने शेर से बताया। यदि दोनों अपनी-अपनी बात बता देते तो उन दोनो मे सुलह भी हो सकती थी, मगर मन की बात मन मे रखने से उनके अन्दर गाँठ बन गई।

एक बार शेर बैल की तरफ चला आ रहा था तो चीते ने बैल से इशारा किया देखो अब यह शेर आ रहा है, तुम्हे खा जायेगा, सावधान हो जावो, तो बैल ने भी सोचा कि अब तो आखिर मरना ही है पर यों ही सहज क्यो मरूँ, पहले तो अपनी पूरी ताकत भर उससे लड लूँगा। आखिर जब शेर बिल्कुल निकट आया तो बैल को तना खड़ा देखकर समझ लिया की चीते ने ठीक ही कहा था सो उसने बैल के ऊपर आक्रमण बोल दिया। बैल ने भी अपनी पूरी ताकत लगा दी पर अन्त मे शेर के द्वारा वह बैल मारा गया।

तो देखिए—जैसे चीते के द्वारा भिड़ा दिये जाने पर शेर और बैल मे विरुद्ध हो गई, बैल मारा गया इसी प्रकार एक परिवार के अन्दर यदि किसी सास मे कुछ भिड़ा दिया और बेटे से कुछ तो फिर सास बेटे मे कभी इसी तरह की विरुद्ध हो जाती है।

कभी आप मन्दिर के चबूतरों पर जब भाई भी बैठी व कुछ बहुएँ भरी

होती है तो उनकी चर्चा सुन लो, यही सब बातें वहाँ चलती हैं। सास बहू की शिकायत करती है, बहू सास की शिकायत करती है, तो जिससे शिकायत की गई वही सास के सामने कुछ कहती और बहू के सामने कुछ कहती, यों सास बहू के बीच में एक गाँठ पड जाती है और फिर धीरे-धीरे उनमें भिडन्त होने तक की नौबत आ जाती है।

मान लो जिस घर में निरन्तर कलह बनी रहती हो उस का कोई व्यक्ति परेशान होकर संन्यासी भी बन जाये तो क्या वह सन्यासी बनकर अपना व दूसरों का आत्मकल्याण कर सकेगा ? अरे थोड़े समय के लिये भले ही वह कुछ चैनसी माने पर धीरे-धीरे उसमें उस विषयक नाना प्रकार की चिन्तायें लगेंगी। ऐसे ही व्यक्ति समाज में जाकर गन्दगी फैलाते हैं। भला बताओ जो व्यक्ति अपने घर की सम्हाल नहीं कर सकता उससे एक बड़े समाज या देश के सम्हाल की क्या आशा की जा सकती है ?

तो धर्म की शुरूवात घर से होती है। अब यदि कोई घर छोड़कर बाहर आ गया हो और यदि बाहर में कुरूपता छायी हुई वह देखता हो और उसमें कुरूपता को दूर करने की सामर्थ्य हो तो क्या उसका यह कर्तव्य नहीं है कि देश में, समाज में छायी हुई कुरूपता को दूर करें ? लेकिन उसको दूर करने के लिये सबसे पहले आवश्यक है घर की सफाई समझना, एक दूसरे की आवश्यकतायें समझना। वहाँ सुई धागे जैसा काम करना है, वहाँ कैंची नहीं चलाना है। बड़ी सावधानी से, बड़े प्यार से उनकी आवश्यकताओं को समझकर इस कुरूपता को दूर करना है।

जिस घर में ये सब कुरूपतायें नहीं रहती, घर के सब लोग हिल मिलकर बड़े प्रेम से रहते हैं वह घर स्वर्ग बन जाता है और जिस घर में यह कुरूपता छायी रहती है वह घर नरक जैसा बन जाता है। तो सबसे पहले हम अपना घर सुधारें। घर में अगर कोई भूख प्यास से पीड़ित हो, या अन्य किसी वेदना में तड़प रहा हो उस समय यदि आप सामायिक करने बैठें, जाप करने बैठें तो वहाँ आपका मन नहीं लगेगा। पहली पूजा तो आप की यह है कि आपके घर में किसी को कोई प्रकार की परेशानी हो तो उस परेशानी को दूर करने का प्रयत्न करो। उनकी सेवा करो। जब आपका मन उन सब बातों से निश्चिन्त हो जायेगा तब ही आपका पूजा में, जाप में, ध्यान में मन लगेगा।

पड़ोस के अन्दर आप जावें तो वहाँ भी आपका यह कर्तव्य है कहीं को

गलियों की सफाई का ध्यान रखें। वहाँ ऐसा न करें कि अपने घर का कूड़ा उठाकर दूसरों के द्वार पर फेंक दें। जैसे बहुत सी महिलायें ऐसा करती हैं और अपने बच्चों को भी दूसरे के द्वार पर टट्टी फिरने के लिये बैठा देती हैं। अब भला बताओ उस पड़ोस की गंदगी का असर क्या आपके ऊपर न होगा? तो वहाँ भी आपका कर्तव्य है कि सफाई का ध्यान रखें।

सभ्यता की बात, ईमानदारी की बात अभी भी पश्चिम देशों में बहुत कुछ देखने को मिलती है। हमारा भारत देश तो आजकल इस क्षेत्र में बहुत पीछे है। आपको लंदन के एक विद्यार्थी की बात बताती हूँ। वहाँ यह देखना कि उसके अन्दर कितनी बड़ी ईमानदारी की बात देखने में आयी और साथ ही वहाँ की सरकार में भी अभी कितनी ईमानदारी है।

तो सोनीपत (हरियाणा) की बात है। वहाँ एक विद्यार्थी लंदन से कोई परीक्षा देने आया हुआ था। तो उसने लंदन सरकार को यह पत्र लिखा था कि मैं अपना अमुक विषय का पेपर देने के लिये इण्डिया आ गया हूँ, यहाँ पर पेपर अमुक दिन अमुक समय पर होगा। तो वहाँ की सरकार ने भी उसके पास वह पेपर और साथ ही एक पत्र भेज दिया था। यहाँ यह देखना कि उस देश की सरकार को भी उस विद्यार्थी के प्रति कितना बड़ा विश्वास था कि कुछ पहले से ही उसके पास पेपर भेज दिया।

अब उस विद्यार्थी की ईमानदारी देखिये— जब वह पेपर उसके हाथ लग गया तो उसके कितने ही लोगों ने कहा कि तुम उस समय का इंतजार क्यों करते हो उस निश्चित समय से क्यों बंधते? तुम तो जब चाहे आराम से पेपर हल करके भेज दो तो उसने यही कहा था कि हमारे देश का यह असूल नहीं है। जिस समय जो काम करना है उसको उसी समय के अन्दर करना है।

आखिर जब वह उस पेपर को हल करने का समय आया तो उसने सामने टेबुल पर बराबर घड़ी रखी रही, अपने उस निश्चित समय के अन्दर ही अन्दर वह सारा पेपर हल करके भेज दिया। आप देख लीजिये वहाँ अभी ईमानदारी है।

अब आप देश के विद्यार्थियों की क्या हालत है सो तो आप देख ही रहे हैं। विद्यार्थी लोग अपने पास पुस्तकें लाकर परीक्षा देने बैठते हैं। इतना ही नहीं चाकू या पिस्तौल तक लेकर बैठते हैं। मतलब है कि उनको कोई निगरान या सुपरवाइजर नकल करने में कोई रोक दे। यदि कोई रोक दें तो तो उनको

जान भी जा सकती है। इतना नैतिक चरित्र हमारे देश के विद्यार्थियों का गिर गया है।

एक विद्यार्थियों की ही बात नहीं घर मे, समाज मे, देश मे जहाँ देखो वही नैतिक पतन दिखाई देता है। तो सबसे पहले हमारा कर्तव्य हो जाता है कि अपने घर मे इस नैतिकता को (आचरण को) लाने का पूरा ध्यान दें। घर से ही धर्म का प्रारम्भ होगा। जब घर मे सुधार होगा तभी समाज या देश मे सुधार हो सकता है।

आजकल देखने मे यह आता कि जब कोई मीटिंग होती है तो उसमे जरा-जरा सी बात मे लोग आपस मे झगड जाते हैं। और यहाँ तक कि उनमे मुकदमे तक चल जाते हैं। पर मैं कहती कि वहाँ झगडने की क्या बात? अरे जो भी प्रस्ताव आये उसे या तो मान लो या फिर उसकी वोट डलवा लो। उस वोट मे जो पक्ष अधिक हो उसकी बात मान लो। यह एक सीधी सी बात है, उसमे लडने झगडने की क्या जरूरत? वहाँ तो अपने-अपने कर्तव्यों का ध्यान रखें। पर होता क्या कि कर्तव्य तो भूल जाते और उस पर अपना कुछ अधिकार मान बैठते, फल यह होता कि बडे-बडे झगडे खडे हो जाते।

घरो मे मान लो लडके लोग कहते हैं कि टेलीविजन घर आना चाहिये और माँ बाप कहते कि नही आना चाहिये तो वहाँ भी लडने की क्या बात? अरे या तो सीधी सादे मान लो या फिर वोट डाल लो, जिस बात का पक्ष अधिक बैठे उस काम को कर डालो।

मान लो घर के बच्चे लोग कहते कि हमको आज पिक्चर मे जाना है और कोई उसमे रोक लगा देता कि नहीं जाना है तो वहाँ भी झगड पड़ते। हम कहती कि वहाँ भी झगडने की क्या जरूरत है? वहाँ भी आपस मे बैठकर वोटिंग कर लो, जिस बात का पक्ष अधिक बैठे वह काम कर लो।

इसी तरह की बात सब जगह लगा लो, सब जगह अधिकार की बात को ध्यान मे न रखकर कर्तव्य पर ध्यान रहे तो घर का, समाज का व देश का सुधार हो सकता है। कर्तव्य भी ऐसे करे कि जिसे कहा निष्काम कर्म योग। याने कर्तव्य समझकर काम सब करना पर उसके बदले मे किसी प्रकार के फल मिलने की इच्छा न करना।

अरे जब आप कर्तव्य करेंगे तो आपको फल अवश्य मिलेगा। इस प्रकार का आपको दृढ विश्वास होना चाहिये। आपने देखा होगा कि जब कभी आप

अपने खेतों में कोई बीज बोते हैं तो उसके कई दिन बाद अंकुर निकलते हैं। तुरन्त तो नहीं निकलते अंकुर निकलने में कुछ समय लगता है।

जब कभी अंकुर निकलते हैं तो उन्हें देखकर भी आपको कुछ आनन्द आता है लेकिन उसका फल मिलने में भी तो कुछ समय लगता है इसी प्रकार जब आप कोई कर्तव्य कर रहे तो आपको उसका फल मिलेगा ही पर उसमें कुछ समय लगेगा। आप उस कर्तव्य को करते हुए किसी फल की इच्छा न करें। मात्र कर्तव्य करते रहना यही अपना कर्तव्य समझें। तो हम अपने अधिकार के साथ-साथ अपने कर्तव्य का उचित सम्मान दें, कर्तव्य करें और अपने गृह जीवन को सुखी करें।

चूक कहाँ ?

आज सारी दुनिया बहुत सिकुड़ गई है। एक जमाना था कि आदमियों को अपने घर के अतिरिक्त दूसरे का पता ही न था। फिर जरा और विकास बढ़ा, तो आदमी अपने गाँव तक फैल गया और उससे आगे बढ़ा तो एक स्टेट बनी, फिर देश बने और अब देखा जाय तो सारा विश्व एक छोटा सा घरौंदा होकर रह गया है। इसलिये आज के युग में केवल अपनी बात सोचनी बड़ी नासमझी होगी। आज हमको सोचना होगा सारे विश्व के बारे में।

आज विश्व के किसी एक कोने में अगर कोई घटना घटित होती है तो उससे केवल वही क्षेत्र प्रभावित नहीं होता किन्तु सारे विश्व का कोना-कोना प्रभावित होता है। अगर आज ईराक और ईरान में युद्ध होता है तो सारे देश में तेल का संकट आ जाता है और उसका प्रभाव हमारी सारी अर्थ व्यवस्था पर पड़ता है। ऐसे ही देश के एक कोने में अगर युद्ध हो जाय तो दुनिया के कोने कोने में उसका प्रभाव पड़ता है, सभी जगह के लोग बड़े चिन्तित होने लगते हैं। सोचने लगते हैं कि कहीं विश्व युद्ध न छिड़ जाय।

आज अगर हम सारे विश्व का अध्ययन करें तो पता पड़ेगा कि आज देशों की क्या स्थिति है। अभी पिछले दो महायुद्धों में जो बम पड़े थे वे इस पृथ्वी पर केवल तीन-चार थे। वे बम भी ऐसे थे कि जो ४५ हजार वर्गमीटर तक की भूमि के टुकड़े को नष्ट कर सकते थे और आजकल के बमों में तो उससे करोड़ों गुना अधिक शक्ति है। आज इस पृथ्वी पर कुल ६० हजार बम हैं। उस पिछले समय में तो केवल तीन चार ही बम थे तब तो १० करोड़ लोग मरे और इतना विनाश हुआ। वहाँ की मिट्टी के अन्दर उतनी शक्ति नहीं आयगी जो कि उससे पहले थी। आजकल तो ६० हजार बम हैं इस पृथ्वी पर, और उनकी क्षमता भी पहले के बमों की अपेक्षा बहुत अधिक है। एक हाइड्रोजन बम में १० करोड़ डिग्री गर्मी होती है। करोड़ों डिग्री गुना अधिक है। पानी १०० डिग्री पर गर्म हो जाता है, उबल जाता है, भाप बन जाता है परन्तु २५०० डिग्री पर लोहा पानी बन जाता है। ४५ वर्ग मील

कहा, तो उस व्यक्ति ने सोचा अरे इस भगवान से बढ़कर तो ये पत्थर है। सो उसने पत्थर बाबे की प्रार्थना की और वह पत्थर भी रख गया।

एक बार फिर उस व्यक्ति ने क्या देखा कि कोई कारीगर अपने हाथ में छैनी हथौड़े लेकर आया और उस पत्थर को काटना शुरू कर दिया। तो उसे ख्याल आया कि अरे इस पत्थर से बड़ा तो यह कारीगर है।

तो इस दृष्टान्त से यह समझो कि जब तक कोई शक्ति अपने हाथ नहीं लगती तब तक उसे ऐसा लगता है कि दूसरे तो ये बड़े और ये गुणी, पर जब कोई शक्ति अपने हाथ लग जाती है तो वही कहने लगता है कि अरे मैं शक्तिवान और सर्वगुण सम्पन्न हूँ।

तो बताया यही यह जा रहा कि हमें अपनी शक्ति का पता नहीं है इसलिये भीतर से डरे हुए हैं और अपने में बड़ी दरिद्रता का अनुभव कर रहे हैं। यही तो आज हो रहा है और अगर हमने भीतर की शक्तियों का उद्घाटन नहीं किया तो एक दिन निश्चित ही ये बम फूटेंगे और इस पृथ्वी का विनाश हो जायेगा।

इस पृथ्वी पर या तो बम बचेंगे या फिर धर्म। ये दोनों चीजें एक साथ नहीं बच सकती। तो ऐसे समय में अधिक आवश्यकता है धर्म की। जिस धर्म से हमारे भीतर की शक्तियों का उद्घाटन हो सके। बाहर की शक्तियों का विनाश करना है और भीतर की शक्तियों का सृजन करना है।

अभी तक धर्म हमने शास्त्रों में पढ़ा है लेकिन उन शास्त्रों की भाषा बड़ी पुरानी हो गई। तो पहले के जो शब्द हैं वे कहीं पुराने नहीं हो गये। वे तो जैसे के तैसे रहेंगे लेकिन उनको समझाने की भाषायें जरूर बदल जाती हैं। इसलिये मैं तो यह कहती हूँ कि शास्त्रों में आयी हुई भाषा अब पुरानी हो चुकी उसको अब जमाने के अनुसार नया रूप देना होगा।

हम मन्दिर में खूब घंटा भी बजा लेते हैं, प्रार्थना भी कर लेते हैं, बड़ी धार्मिक क्रियायें भी कर लेते हैं लेकिन वही धर्म नहीं है। यदि मैं आप लोगों से कहूँ कि रामलाल मेरे पास आया तो इसे सुनकर आप लोग समझ लेंगे कि कोई बड़ा बूढ़ा व्यक्ति आया होगा, और अगर कहूँ कि मेरे पास राकेश आया तो आप लोग समझेंगे कि कोई युवक आया और अगर कहें कि मेरे पास पप्पू आया या पीकू आया तो आप लोग समझेंगे कि कोई बच्चा आया।

अब देखिये—केवल नाम के शब्द ही तो है लेकिन उन शब्दों से ही आपने

बच्चा, जवान और बूढ़े की परख कर ली। ऐसे ही जो शास्त्रों के शब्द पहले बहुत प्रचलित थे वे अब बूढ़े हो चुके और उन बूढ़े शब्दों के अन्दर हमको आनन्द नहीं आता।

जैसे कोई हलवाई पुराने टाइप से अपनी दूकान की मिठाइयों को किसी कागज में लपेटकर देने लगे तो अब उसे खरीदना कम पसन्द करेंगे और अगर वही मिठाई किसी रंगीन, चमकीले अच्छे डिब्बे में बन्द करके दे तो आप उसे बड़े शौक से खरीदना पसन्द करेंगे।

अथवा जैसे कोई डाक्टर बड़े टीप-टॉप ढंग से आये, उसके साथ कोई असिस्टेन्ट हो, कार, हो, उसका अच्छा ढंग हो तो आप उसे समझेंगे कि वास्तव में यह एक बड़ा भारी डाक्टर है। अब भले ही वह बिल्कुल थोड़ी सी कीमत की दवा दे लेकिन आप उसको सैकड़ों रुपये उस दवा के पीछे देना पसन्द करेंगे और वही दवा यदि कोई वैद्य कागज की पुड़िया में लपेट कर दे दे तो आप उसकी दवा की कुछ खास कीमत न समझेंगे।

तो आज का जमाना सादगी का नहीं है। जमाना है दिखावट का, सजावट का। तो इस जमाने के अनुसार आवश्यकता यह होती है कि आचार्यों की कही हुई वाणी में नवीनता लायी जाय, उसे आजकल की बोलचाल की भाषा में जैसा कि आज वैज्ञानिक युग है उस वैज्ञानिक ढंग से आचार्यों की बात समझायी जाय तो लोगों की समझ में बात जल्दी आयगी। सीधे सादे आचार्यों की प्राचीन भाषा में अगर किसी को समझाया जाय तो वह न तो उसे ठीक-ठीक समझ ही सकेगा और न समझने में उसकी रुचि ही रहेगी।

दूसरी बात यह है कि आज का जमाना तर्क का है, कोरे विश्वास का नहीं। कभी एक जमाना था जबकि किसी को कोई बात बता दी जाती थी तो वह उस पर दृढ़ विश्वास करके मान लिया करता था, पर आज का जमाना है तर्क का। पहले जमाने में तो अगर कोई गुरुजन या कोई माता पिता वगैरह अपने बच्चे से कह देते थे कि बेटा भगवान के दर्शन कर आया करो उससे हृदय में पवित्रता आती है तो वह सीधे उनकी बात पर विश्वास करके मान लिया करता था पर आजकल ऐसी बात नहीं है, आज का जमाना तर्क का है और तर्क पैदा होने की बात ठीक भी है। तर्क होने पर विश्वास में दृढ़ता आती है। जैसे मान लो किसी ने कहा कि भाई बिजली के तार में हाथ न लगाना, खतरा है। तो वहाँ यह तर्क उठना ही चाहिये कि खतरा क्यों है?

हां तर्क के उठने पर उसे पता पड़ेगा कि इस तार के अन्दर बिजली का करें
है इसलिये खतरा है। अब मान लो किसी अनाड़ी व्यक्ति को उस बिजल
के करेन्ट का पता न हो तो वह उसे पकड़ लेने पर धोखा ही खा जायेग
अपने प्राण खो बैठेगा। इसलिये तर्क का उठना विश्वास में दृढ़ता लाने के लिये
है। तो आजकल विश्वास के जमाने में कोई आँख मीचकर किसी भी बात पर
सीधे विश्वास नहीं कर लेता।

तत्वार्थसूत्र में एक सूत्र आया है सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग याने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्‌चारित्र ये मोक्ष के मार्ग हैं। तो इस पर भी तर्क खड़ा हो जाता कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र ये मोक्ष के मार्ग कैसे है? अरे मार्ग तो कहते हैं जो ईंट, मिट्टी वगैरह से बनता है और जिस पर हम चलते है, तो फिर यहाँ मार्ग शब्द क्यों कहा? तो हम तो यहाँ मार्ग शब्द न कहकर विधि कहेंगे। मार्ग (रास्ता) तो बाहर जाने के लिये कहते हैं लेकिन विधि तो उसमें ठहरने के लिये कहते हैं।

सम्यग्दर्शन के लिये कहा पहले सम्यक् श्रद्धा। अब वह श्रद्धा कब होगी, जबकि आप पहले तर्क करें। श्रद्धा दो तरह की होती है—एक तो जैसे मैंने कहा कि आप पानी पी लो, पानी पीने से आपकी प्यास बुझ जायेगी। और दूसरा कोई यों कहे कि भाई पानी से बुझने वाली नहीं है, ये तो तुम्हें व्यर्थ बहका रहें। तो इस तरह की बात सुनकर उसकी श्रद्धा डोल जायेगी, तो यह एक दूसरी तरह की बात है। अब यदि कोई तर्क कर बैठे कि पानी पीने से क्यों नहीं बुझती, बुझती तो है। वहाँ उस तर्क की वजह से उसे उसका सही पता पड़ जाने पर उसकी श्रद्धा दृढ़ हो जाती है, वह निश्चित रूप से पानी पीकर अपनी प्यास बुझा लेता है, और यदि कोई तर्क न रखकर सीधे यों ही मेरी बात मान ले तो उसकी श्रद्धा में दृढ़ता न आयगी, वह किसी के बहका देने पर अपनी श्रद्धा से विचलित हो जायेगा।

तो मैं यहाँ यह कहना चाहती हूँ कि किसी भी बात को श्रद्धा करने से पूर्व आप उसमें पहले तर्क रखकर अपनी श्रद्धा दृढ़ कर लीजिये ताकि श्रद्धा की ज्योति में आप प्रविष्ट हो जायें। तर्क किये बिना हमारी श्रद्धा अधूरी रह जाती है। तभी तो हम देखते है कि मन्दिर में जाते हुए और भगवान की स्तुति पूजा पाठ करते हुए सारी जिन्दगी निकल जाती है फिर भी उसमें कुछ नया परिवर्तन नहीं आता है। वही की वही सारी बातें जिन्दगी भर

चलती रहती है। किसी को धोखा देने से चूकते नहीं, दो नम्बर की कमाई करने की आदत छोड़ते नहीं, विषय और कषायों की बातें भी ज्यों की त्यों चलती रहती हैं तो फिर भला बताओ क्या लाभ हुआ उस पूजा पाठ से? अरे बात यहाँ मूल में यह थी कि वहाँ अभी मूल में ही चूक हो गई है जिसके कारण सच्ची श्रद्धा ही नहीं बन पायी है और फिर सच्ची श्रद्धा न बन पाने से धर्म की सारी क्रियायें करके भी लाभ कुछ नहीं पाया।

एक बार गर्मी के मौसम में किसी व्यक्ति के पेट में दर्द पैदा हो गया था तो उसने किसी हकीम को बुलवाया। हकीम से पेट दर्द की दवा देने का निवेदन किया तो वैद्य ने कहा ठीक है, हम पेटदर्द ठीक होने की दवा तुम्हें देंगे पर उसकी कीमत एक हजार रुपया होगी। तो वह व्यक्ति बोला ठीक है, पेटदर्द ठीक हो जाने पर हम तुम्हें एक हजार रुपया देंगे। सो उस वैद्य ने क्या किया कि वहीं से फटाफट मतीर मँगवाया और उसके छिलके उतार कर उसे पीसकर पिला दिया तो उसका पेट दर्द तुरन्त ठीक हो गया। और जब वैद्य ने दवा की कीमत माँगी तो उस व्यक्ति ने एक हजार रुपये देने से इन्कार कर दिया, कहा कि इसमें एक हजार रुपये की कौन सी बात? यह तो मुफ्त मिलने वाली चीज है। खैर दवा की कीमत न मिलने पर वह वैद्य निराश होकर चला गया।

समय की बात कि सर्दी के मौसम में उस व्यक्ति को दुबारा पेटदर्द शुरु हो गया तो उसने फटाफट वही दवा मँगाई, छिलके उतारा और मतीर पी लिया, पर पेटदर्द न मिटा, उल्टा बढ़ता ही गया। बहुत परेशान हो जाने पर उसने फिर उसी वैद्य को बुलाया और पेटदर्द की दवा माँगी। तो उस वैद्य ने कहा ठीक है, मैं तुम्हारे पेटदर्द की दवा अवश्य दूँगा पर इस बार की दवा के भी एक हजार रुपया लूँगा और वह दवा तब दूँगा जबकि पहली बार और इस बार के दो हजार रुपये मुझे पेशगी प्राप्त हो जायेंगे। आखिर उस व्यक्ति को दो हजार रुपये अपने पेटदर्द मिटाने के लिये देने ही पड़े।

दो हजार रुपये मिल जाने पर वैद्य ने फिर वही दवा मँगवाई, उसके छिलके उतरवाया और उसे अग्नि में उबालकर पिला दिया तो उस व्यक्ति का पेटदर्द तुरन्त ठीक हो गया। *तो ठीक क्यों हो गया, यों कि सर्दी के मौसम में* उसी दवा में उसे गरम गरम तासीर देकर पिला दिया गया तो उसका पेटदर्द ठीक हो गया।

नाभि-हमारा केन्द्र बिन्दु

एक बार एक ग्रामीण व्यक्ति शहर में आया और किसी होटल में ठहर गया। खाना खाया और सारी होटल की चकाचौंध उसने देखी और बड़ा आनन्दित हुआ। उसके बाद जब वह सोने की तैयारी करने लगा तो कमरे में एक बिजली का बल्ब जल रहा था। वह व्यक्ति उस बल्ब के सम्बन्ध में कुछ जानता था नहीं सो वह उसे बुझाने के लिये मुंह से फूंक मार रहा था। कई बार उसने मुंह से फूंक मारा पर वह बुझा नहीं। अन्त में हैरान होकर वह बिना ही उस बल्ब को बुझाये सो गया। प्रात काल होते ही जब उस होटल का बैरा आया और उसने पूछा—बाबू जी आप रातभर आराम से रहे ना? तो वह व्यक्ति बोला—हाँ आराम से तो रहे पर मैंने इस दीप को बहुत-बहुत फूंक मारकर बुझाना चाहा पर बुझा नहीं। तो उस बैरे ने कहा—अरे यह दीप यहीं मुख से फूंकने से नहीं बुझा करता, यह बुझता है स्विच के आफ करने से। तुम्हें उस स्विच का पता नहीं है। आखिर बैरे ने स्विच को आफ कर दिया तो वह बल्ब बुझ गया।

एक दीपक वह होता है जोकि तेल से जला करता है पर वह दीपक हवा का जरा सा झोंका आने पर बुझ जाता है, और एक यह दीपक एक ऐसा दीपक है जोकि हवा के तेज झकोरों से भी नहीं बुझ सकता। इसको बुझाने के लिये तो स्विच आफ करना होगा।

तो ऐसे ही हमारे जीवन में धर्म की बात मिलती है। हम दीपक जलाते है पर बिजली नहीं जलाते। दीपक जलता है और हवा का झोंका आने पर थोड़ी ही देर में बुझ जाता है। मन्दिर, मस्जिद गुरुद्वारों में जब पहुंचते हैं तो वहाँ पहुचने पर कुछ दीपक जल जाता है लेकिन जैसे ही कोई कन्या, मान-सम्मान की कोई बात आयी, या संयोग वियोग सम्बन्धी कोई घटना घट गई तो वहाँ इन आँधियों के झकझोरों से यह दीप बुझ जाता है और फिर वही वही अंधेरा हो जाता है। बस ऐसा ही दीपक [illegible] है हमारे अपने जीवन में।

और भी बात आप [illegible]

उपवास कर लेते है तो वहाँ आपके शरीर मे बड़ी शिथिलता सी आ जाती है। आपकी आँखें गड्ढे मे चली जाती है और आपको चक्कर से आने लगते लगते हैं। आप मे इतनी ही क्षमता है कि एक दो दिन का उपवास कर सकते, किसी मे इतनी भी क्षमता हो सकती कि वह कुछ अधिक दिनो का भी उपवास कर ले लेकिन उसके चेहरे को देखकर क्या आप जान नहीं लेते कि यह आदमी भूखा है। और उसके शरीर की चर्बी सूख जाती है। उसके शरीर मे शिथिलता आ जाती है। उसके चेहरे मे मुस्कराहट नहीं आती। लेकिन पुराण पुरुषो की मूर्तियाँ देख लो, भगवान महावीर की मूर्तियाँ देख लो, उनके शरीर मे कोई कमजोरी नही दिखाई पड़ती। उनका शरीर पूर्ण हृष्ट पुष्ट दिखता है। उनके चेहरे पर मुस्कान दिखाई देती है। तो बताओ यह फर्क कहाँ से आया जिससे हमारे और भगवान महावीर के शरीर मे घना फर्क दिखाई पड़ा? तो यह फर्क इस बात का है कि हम कही चूक गये है अपनी साधना मे और वे भगवान कही चूके नही है।

पुराण पुरुषो की एक भी मूर्ति ऐसी नही मिलती जिसका शरीर तपश्चरण से कृष गया हो। भगवान महावीर ने बारह वर्ष तपश्चरण किया उसमे सिर्फ एक वर्ष आहार लिया बाकी ११ वर्ष का समय निराहार रहकर व्यतीत हुआ फिर भी उनकी मूर्ति देखने से ऐसा पता लगता है कि उनके शरीर पर रच भी कमजोरी नही आयी। न तो उनके शरीर पर कही झुरियाँ दिखाई देतीं न हड्डियाँ दिखाई देती और न उनके चेहरे पर रच भी उदासी दिखाई देती, तो उसमे कारण क्या है कि उन्हे कोई मत्र ऐसा मिल गया था जिससे उन्हें रच भी चूक नहीं हुई।

भगवान ऋषभदेव ने सन्यास लेते ही ६ महीने की साधना मे बैठ गए फिर भी उनकी मूर्ति देखो पर उनके शरीर मे कुछ कमजोरी नही दिखाई देती। तो कुछ लोग ऐसा भी कह सकते कि उनके शरीर की क्षमता शक्ति ही ऐसी रहती होगी, उनको सहनन ही ऐसा मिला होगा जिससे की उनके शरीर पर कोई फर्क नही आने पाता था लेकिन एक बात का और भी तो ध्यान करो, उनके साथ दीक्षित होने वाले अन्य लोग भी तो थे जिनको आहार विहार की विधि का पता न था वे निराहार न रह सके और मार्ग से च्युत होकर सन्यास छोड़ दिया। तो क्यों छोड़ दिया? क्या उनके पास वह सहनन या वह क्षमता न थी? और थी तो सही पर मूल बात यह थी कि उनकी भी साधना

मे कहीं न कहीं चूक रही। जिस चूक के कारण वे अपनी साधना मे सफल न हुए। तो सहनन का सूत्र नहीं है। कोई और ही सूत्र है जिसके कारण मे त्याग तपश्चरण मे कोई जाय फिर भी उसका शरीर शिथिल नहीं होता।

तीसरी बात एक और है। महात्मा बुद्ध ने सर्व प्रथम गृह त्याग के पश्चात् जैन धर्म मे दीक्षा ली और उन्होंने जैन धर्म की साधना की थी। बारह वर्ष तक उन्होंने बड़ी तपस्या की थी। उस बारह वर्ष की तपस्या मे महात्मा बुद्ध का शरीर कृष हो गया, केवल ढांचा रह गया. उनके शरीर की सब हड्डियाँ झलकने लगी, शरीर बिल्कुल सूख गया। और एक दिन की बात थी कि वे कोई निरंजना नाम की नदी पार कर रहे थे। जब नदी को पार करते हुए वे नदी के किनारे पर चढ़ने के लिये कोई घाट तो बना नहीं था। सीढ़ियाँ तो थीं नहीं सो वहाँ की कटीली झाड़ियो को पकड़कर ऊपर चढ़ना था। सो वहाँ पर चढ़ते हुये उन्हे ख्याल आया कि जब इस छोटी सी नदी को पार करने की भी मेरे अन्दर सामर्थ्य नहीं है तो फिर इस विशाल भवसागर को मैं कैसे पार कर सकता हूं ? इस ख्याल के आते ही उन्होंने अपने धैर्य को खो दिया। आखिर किसी तरह से नदी पार करके जब वे बाहर पहुँचे तो एक वृक्ष के नीचे जाकर विश्राम करने के लिये बैठ गये। वहाँ उन्हे ख्याल आया कि मैं जरूर कोई सूत्र चूक गया हूँ मेरे से जरूर कोई ऐसी कमी रह गई है जिसके कारण मुझे ये सब परेशानियाँ उठानी पड़ रही है।

देखिये—सारी विधियाँ महात्मा बुद्ध ने बड़ी ईमानदारी से अपनायी और उसी समय जब कि भगवान महावीर भी मौजूद थे, उस समय महात्मा बुद्ध का शरीर तो सूख गया और महावीर स्वामी का शरीर नहीं सूखा। कुछ लोग कहते है कि महात्माबुद्ध का बुढ़ापा आया इसलिये शरीर सूखा, पर ऐसी बात नहीं है। शरीर के जो धर्म हैं बाल सफेद हो जाना, शरीर मे झुरियाँ पड़ जाना, कमर झुक जाना आदि ये सब बातें तो महावीर स्वामी के शरीर मे भी तो होनी चाहिये थी पर ये क्यो नहीं हुई ? शरीर के जो अवश्यम्भावी परिवर्तन है वे होने ही चाहिये पर महावीर स्वामी के शरीर मे क्यो नहीं हुआ और महात्मा बुद्ध के शरीर मे हुआ। तो बात यहाँ क्या थी कि महात्मा बुद्ध की अपनी साधना मे कही चूक हो गई थी और महावीर स्वामी की कहीं चूक नहीं हुई।

मुझे कबीरदास जी का यह वाक्य बड़ा सुन्दर लगता है—"ज्यो की त्यो

धर दीनी चदरिया"—याने इस शरीर को जितना ही तपश्चरण में लगाया फिर भी इसमें कुछ कमी न आयी, ज्यों की त्यों ही धरी रह गई।

सन्यास में शरीर में कोई कमी नहीं आनी चाहिये क्योंकि वहाँ पर किसी प्रकार की बाहरी चिन्तायें नहीं होती। गृहस्थों को तो गृहस्थी के बीच नाना प्रकार की चिन्तायें होती हैं, उन चिन्ताओं के कारण उनके शरीर में कमजोरी आ जाना स्वाभाविक ही है पर सन्यास में शरीर में कोई कमी न आनी चाहिये, बल्कि शरीर में अगर कोई कमी हो तो उसकी भी पूर्ति हो जानी चाहिये। तो इस सूत्र को पा लिया था भगवान महावीर ने जिसके पा लेने पर फिर उनके शरीर में कोई कमी नहीं आयी, उनके शरीर की शक्ति क्षीण होने के बजाय उनमें अनन्त वीर्य प्रकट हुआ। जिस शरीर में रहने वाले आत्मा में अनन्त वीर्य प्रकट हो जाता है वह शरीर भी अनन्त शक्तिशाली हो जाता है। तो शरीर भी क्यों शक्तिशाली हो जाता इसमें एक बहुत बड़ा महत्त्वपूर्ण राज है। उस राज को भी समझना होगा।

भगवान महावीर स्वामी के ध्यान में नासाग्र दृष्टि एक मुख्य बात थी। नाक के बिल्कुल सीध में उनकी दृष्टि थी। यह नाक की सीध का एक बड़ा प्रमुख केन्द्र है। और यदि वहाँ से भी खिसके तो फिर नाभि जीवन का एक बड़ा महत्त्वपूर्ण केन्द्र है। हमारा जन्म होता है तो नाभि से, हमारा पालन होता है तो नाभि से और इस जन्म में जो हम भोजन करते हैं वह भी पचता है हमारी नाभि से? इस शरीर में जो शक्ति पैदा होती है वह भी नाभि से होती है।

[illegible] नाभि में कोई ऐसा गुण है जिसके कारण यह नाभि केन्द्र सक्रिय होता है। [illegible] शक्ति ग्रहण करती है। लेकिन नाभि में एक कमल है। वह कमल कहीं ऐसा भौतिक कमल नहीं है जो कि वनस्पति का बना हुआ हो। वह कमल है [illegible]। जिसे कोई कोई कहते [illegible]। ऐसा कमल है और वह [illegible] है। इस नासाग्रदृष्टि के द्वारा उस कमल को [illegible] है। [illegible]

(१५०)

हमारी नाभि सूर्य से ऊर्जा ले रही है और वह ऊर्जा हमारे भोजन को पचाने में सहयोगी होती है। इसलिये दिन में किया हुआ भोजन पचेगा और आपके शरीर में लगेगा और रात्रि में किया हुआ भोजन हमें शक्ति नहीं दे सकता क्योंकि वहाँ सूर्य की ऊर्जा नहीं मिल रही है। एक बात तो यह भोजन के संदर्भ में बतायी और दूसरी बात यह है कि अगर आपकी नाभि खिल चुकी है तो वह सूर्य से इतनी ऊर्जा स्टोर कर लेगी कि जिसको पा लेने के पश्चात् फिर आपको भोजन की आवश्यकता नहीं रह जाती।

आज के जमाने में इस बात को समझना कोई कठिन बात नहीं है। हमने एक इलेक्ट्रोनिक कालेज में जाकर देखा की बहुत-बहुत रिसर्च (खोज) हो रही है। वहाँ हमने देखा कि ऐसे-ऐसे बल्ब तैयार कर लिये गये हैं जिनमें धूप से ऊर्जा का स्टोर कर लिया जाता है। वहाँ पर सूर्य की ऊर्जा से ६० वाट का बल्ब जलाकर हमें दिखाया। अब भला बताओ एक ६० वाट का बल्ब जल सकता है धूप से, ऐसे ही और भी यन्त्र बने हैं जो कि आपके कमरों को ठंड के दिनों में भी गर्म कर सकते हैं। सूर्य की ऊर्जा से चलती हुई एक घड़ी भी हमने देखी है। उस घड़ी में चाबी भरने की जरूरत नहीं रहती। वह सूर्य की गर्मी से चलती है और दिन में वह इतनी गर्मी स्टोर कर लेती है कि फिर वह रात में भी चलती रहती है।

आज सारे विश्व के अन्दर ऊर्जा की जो इतनी कमी चल रही है उसके लिये यह खोज चल रही है कि सूर्य के प्रकाश से कैसे ऊर्जा को संग्रह किया जाय, आजकल कुछ रिक्शे ऐसे भी तैयार हो गये हैं जो कि सूर्य की ऊर्जा से चलते हैं।

तो कहते हैं कि अगर सूर्य की ऊर्जा से रिक्शे घड़ी वगैरह तक चल सकते हैं तो फिर उससे हमारी नाभि में उस ऊर्जा का स्टोर कर लेने पर शरीर के अन्दर की मशीनरी चल उठे तो उसमें क्या आश्चर्य है। इस नाभि केन्द्र के द्वारा जब सूर्य की ऊर्जा का स्टोर किया जाता है तो इसे कहा है आतापन—योग। इस आतापन योग के द्वारा आपकी नाभि सौर्य ऊर्जा का स्टोर कर लेगी और वह आपकी सारी मशीनरी को चलायगी। आप जब भोजन करते हैं तो इसको पचाने के लिये आपको शक्ति चाहिये। उसमें आपके दाँत काम करते हैं। आपकी आँतें काम करती हैं, आपका लीवर काम करता है तब

अगर ऊर्जा पैदा होती है और तब सीधे ऊर्जा मिल जाय तो फिर वह ऊर्जा सारे शरीर को मिलती रहेगी।

जितनी भी मशीनरी चलती हैं वे सामान्य रूप से ६ से ६ वोल्टेज से चलती हैं। इतनी ही ऊर्जा अगर शरीर को मिलती रहे तो वहाँ शरीर कृश न होगा। तो भगवान महावीर के पास यह पद्धति थी उन्होंने सारी ऊर्जा को स्टोर कर लिया था जिससे उनको खाने पीने की भी आवश्यकता न थी। जैसे गर्भ के अन्दर रहने वाले बच्चे को खाने पीने की क्या जरूरत? वह तो नाभि की ऊर्जा से ही सब कुछ पाता रहता है, उसको खाना पीना न मिलने से उसके शरीर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, इसी प्रकार भगवान महावीर ने जब सारी ऊर्जा को सीधे स्टोर कर लिया तो फिर उनके शरीर में कमजोरी कैसे आ सकती थी?

शरीर में अगर ऊर्जा की कमी होती है तो यहाँ आसन भी विचलित हो जाता है। आपको जो कमजोरी आती है, बीमारी आती है वह इसी लिए तो आती है कि जीवन के जो आवश्यक तत्व हैं वे इस बीमारी से कम हो जाते हैं। उन आवश्यक तत्वों के कम होने पर ही शरीर में ये सब बातें आती हैं।

इसलिये कहा कि जब ऊर्जा की कमी नहीं होती तो फिर शरीर कृष नहीं होता। शरीर थकता नहीं है एक बात। अब दूसरी बात यह है कि हमारे मस्तिष्क के अन्दर ग्लैन्ड्स है जिन्हे योग में चक्र के नाम से कहा सहस्त्रार।

उनसे जो रस झरता है वह अगर पेट में पहुँच जाय तो नष्ट हो जाता है। उसकी अपनी साधना है, वह साधना जो होती है वह ध्यान से होती है। यदि ध्यान के बाद वह शरीर में रस पूरे रूप में पहुँचता है तो बुढ़ापा नहीं आता।

क्या कारण है कि आज कल छोटे-छोटे बच्चों के भी बाल सफेद हो जाते हैं? भगवान महावीर तो ७२ वर्ष की आयु के हो गये थे पर उनके बाल अन्त तक सफेद नहीं हुये थे। तो बुढ़ापा किन कारणों से आता? इस कारण कि जैसे-जैसे चिन्तायें आती जाती है वैसे ही वैसे पेट काम करता है। बचपन में कुछ हारमोन्स काम करते हैं जवानी में और काम करते हैं और बुढ़ापा में और हारमोन्स काम करते हैं। कोई व्यक्ति बुढ़ापे में भी अगर चिन्तायें न रखे तो उसके बाल सफेद नहीं हो सकते। यह शरीर का तरीका है। वह योग से वैसा रखा जा सकता है जिससे कि बुढ़ापा न आवे।

तीसरी बात— भगवान महावीर ने सन्यास के लेते ही न अपना कोई गुरु बनाया। न किसी से कोई ग्रन्थ पढ़ा लिखा और न किसी से उन्होंने तत्व-चर्चा की। बारह वर्ष तक उन्होंने जो तपश्चरण किया वह भी हमारे लिये कोई महत्वपूर्ण बात नहीं है। महत्वपूर्ण बात तो यह है कि उनको सिद्धि कैसे हुई। सिद्धि होना महत्वपूर्ण बात नहीं किन्तु सिद्धि कैसे हो यह महत्वपूर्ण बात है। जिस विधि से उनको सिद्धि हुई उस विधि को हम अपना सकें यह महत्व-पूर्ण बात है।

तो उन्होने हमको क्या उपदेश दिया यह कोई हमारे लिये महत्व की बात नहीं। किन्तु वे बारह वर्ष तक कैसे जिये, कैसे रहे, यह हमारे लिये महत्वपूर्ण बात है। उससे हमे मार्ग दर्शन मिल सकता है। उन्होंने तत्व का क्या स्वरूप बताया वह हम नहीं जानना चाहते, किन्तु १२ वर्ष तक उन्होने क्या किया, यह हम जानना चाहते हैं।

बारह वर्ष तक उन्होंने ज्ञान का अर्जन नहीं किया, बारह वर्ष तक उन्होंने ध्यान किया। बारह वर्ष तक उन्होंने जो-जो भी आवरण थे उन सब को हटाया। बारह वर्ष तक वे प्रकृति के साथ जिये, बारह वर्ष तक उन्होंने जो साधना की उस साधना का सार है नाभाग्र। शरीर को बिल्कुल छोड दिया जाय और नाभि पर ध्यान केन्द्रित किया जाय।

धर्म है एक विज्ञान आपको आनन्द देने का, आपको अपनी सम्पत्ति जागृत कर देने का। धर्म पैदा नहीं होता, धर्म को उद्‌घाटित करना पडता है। वह धर्म तो अभी भी आपके पास है लेकिन आपको उसे परखना है। जैसे स्वर्ण जब खान से निकलता है तो वह पत्थर के रूप मे होता है लेकिन जब उसे अग्नि मे तपा कर उसका मैल दूर करके शुद्ध कर लिया जाता है तो वह स्वर्णत्व प्रकट हो जाता है ऐसे ही अपना धर्म अपने अन्दर है, उसको ढाकने वाले आवरणो को सिर्फ हटाने भर की जरूरत है, वह धर्म स्वयमेव प्रकट हो जायगा।

धर्म को आवरण करने वाले हैं ये रागद्वेषादिक विकार, इनको हटाना है। इनके हटने पर अपना धर्म प्रकट हो जायगा।

इन आवरणो को हटाने की एक विधि तो यह है कि हम ध्यान करें अपनी नाभि पर। यह ध्यान ऐसा है कि ६–६ महीने बीत जायें फिर भी भोजन की आवश्यकता नही पडती। भोजन लेना चाहे तो ले सकते है लेकिन कहीं ऐसा नहीं है कि भोजन कुछ दिन न मिले तो परेशान हो जायें।

कहा कि जैसे-जैसे चिन्तायें बढ़ती हैं वैसे ही वैसे बुढ़ापा आता है और जैसे-जैसे बुढ़ापा आता जाता है वैसे ही वैसे मानसिक तनाव बढ़ता जाता है जिससे वहाँ अशान्ति बेचैनी, परेशानी और भी अधिक बढ़ती जाती है। तो उन सारी परेशानियों से बचने के लिए ध्यान की बात यहाँ कही जा रही है। ध्यान के प्रसंग में सबसे पहले नाभि कमल की बात चल रही है। अपनी नाभि में एक कमल का ख्याल करें ताकि हमारे भीतर सोयें ऊर्जा प्रस्फुरित हो सके। उससे हमारे शरीर में न कोई बीमारी आयगी, न भूख प्यास लगेगी, न गर्मी-सर्दी लगेगी। भूख प्यास आदिक ये सब बीमारी ही तो हैं।

आपने देखा होगा कि बुढ़ापे में सर्दी अधिक लगती है और जवानी में कम। जो १८ प्रकार के दोष कहे गए—जन्म, जरा, मरण, निद्रा, भूख, प्यास, गर्मी, सर्दी आदिक, ये सब बीमारी ही तो हैं। नाभिकमल के विकास के पश्चात् ज्यों-ज्यों वह विकसित होता जाता है त्यों-त्यों रोग दूर होने लगते हैं।

किसी एक सीमा पर जाना है तो उसका उपाय क्या है ? उसका उपाय यही है कि हम ध्यान की पद्धति सीखें। ध्यान की पद्धति सीखने पर फिर उसको प्रयोगात्मक रूप दें तो वहाँ सौर्यऊष्मा प्रकट होगी जिससे शरीर से सम्बन्धित सारी बातें भी ठीक-ठीक चलती रहेंगी और साथ ही आत्मानुभव का काम भी चलता रहेगा। ये दोनों चीजें अगर चलती रहेंगी तो हम जीवन में आनन्द पा सकेंगे। इसके लिए हमे शक्ति चाहिए। शक्ति के बिना आनन्द नहीं आ सकता। शक्ति न होने पर फिर ध्यान का काम नहीं बन सकता। जैसे जब तक किसी व्यापार में आप धन नहीं लगाते तो व्यापार का काम चल नहीं सकता, इसी प्रकार शक्ति के बिना ध्यान का भी काम नहीं चल सकता।

ध्यान के लिए यहाँ नाभि से शुरू किया। जीवन के ये तीन केन्द्र हैं—बुद्धि (मस्तिष्क) हृदय और नाभि, बुद्धि तर्क देती है, हृदय प्रेम देता है और नाभि तो केन्द्र ही है। वह शक्ति देती है। सबसे पहले उस केन्द्र बिन्दु का विकास चाहिये।

———

शरीर रूपी वीणा

एक गाँव में एक बार कोई बाँसुरी वादित्य आया और उसने बाँसुरी बजाकर सबको आनन्द-विभोर कर दिया। जब प्रोग्राम समाप्त हो गया तो उसके बाद एक ग्रामीण के मन में आया कि देखूँ तो सही कि यह बाँसुरी है क्या चीज? जिसको ओंठों पर रखने पर ऐसी सुरीली आवाज निकलती है। इसी कौतूहल में उसने उस बाँसुरी को चुरा लिया और फिर उसे तोड़कर देखने लगा कि क्या चीज बोलती है इसमें? जब उसने उसे तोड़कर देखा तो वहाँ कुछ भी न था, सिर्फ बाँस ही बाँस था। इतने में ही जब उस वादित्य ने अपनी बाँसुरी की खोज की तो उसने देखा कि एक व्यक्ति ने उस बाँसुरी को तोड़ दी थी। पूछा कि भाई तुमने मेरी बाँसुरी क्यों तोड़ दी? तो उस व्यक्ति ने कहा मैंने इस बाँसुरी को तोड़ने के लिए नहीं तोड़ा, मैंने तो इसलिए तोड़ा कि देखूँ तो सही कि इसमें इतना अच्छा स्वर कहाँ से निकलता है और यह क्या चीज है जो इतना सुन्दर संगीत देती है। तो उस वादित्य ने समझाया कि भाई बाँसुरी से अलग संगीत कुछ नहीं है, संगीत बाँसुरीमय है।

तो इस ही प्रकार से यह शरीर भी एक बाँसुरी की तरह है। इसको अगर खोलकर देखा जाय तो कहीं संगीत नहीं दिखता है। किसी के दिल का अगर आपरेशन किया जाय तो कहीं संगीत नहीं दिखाई देगा, वहाँ तो खून, मांस, मज्जा आदि ही दिखाई देते हैं। ऐसे ही इस शरीर में कहीं प्रेम नाम की चीज भी दिखाई नहीं देती फिर भी सब लोग कहते ही हैं कि मेरा अमुक से बड़ा प्रेम है। आत्मा का संगीत आनन्द भी इस शरीर के माध्यम से ही पैदा होता है फिर भी आत्मा अलग चीज है और शरीर अलग चीज है।

तो मैं कहना चाहती हूँ कि यह शरीर धर्म का साधन है, आनन्द का साधन है। यह बात समझने की है कि शरीर कैसे साधन है? हम सोचते हैं उपवास होगा तो शरीर से, तपश्चरण होगा तो शरीर से, त्याग होगा तो शरीर से। दुनिया की जितनी फैक्टरी बनी हैं वे सब इस शरीर के अध्ययन से ही बनी हैं। तो इस शरीर को समझना जरूरी होगा।

इस शरीर में मुख्य तीन केन्द्र हैं। एक केन्द्र है नाभि जो शक्ति का केन्द्र है। एक केन्द्र है हृदय जो कि भाव का केन्द्र है। जब आप किसी से कहें कि मुझे आप से प्यार है तो उस समय आप का हाथ हृदय पर जाता है। याने भाव की बात जब करते हैं तो हाथ हृदय पर जाता है। और तीसरा केन्द्र है मस्तिष्क। जब हम कुछ विचार करते हैं, तर्क वितर्क करते हैं तो हमारा ख्याल जाता है मस्तिष्क पर।

इस तरह से ये तीन केन्द्र हुए और एक चौथा केन्द्र होता है सम्भोग का। वह केन्द्र साधना के लिए नहीं होता, वह तो भोग का, सम्भोग का केन्द्र है।

हमने तो इस जगत के अन्दर इन तीनों केन्द्रों के सम्बन्ध मे विचार किया है कि आज के युग मे सिर्फ बुद्धि केन्द्र पर सभी का ध्यान है, नाभि की ओर हृदय की सभी ने फिकर छोड़ दी। पर मैं बताऊँ कि इस मस्तिष्क मे ७ करोड़ सूक्ष्म तन्तु हैं। उनको अगर बिखेरा जाय तो वे पूरी पृथ्वी का राउन्ड ले सकते हैं। और इस मस्तिष्क मे सैकड़ों कोष हैं, विभाग हैं जो विभाग हर विषय से अपना अलग-अलग सम्बन्ध रखते हैं।

हमारे मस्तिष्क का चौथा हिस्सा सिर्फ काम करता है और वह चौथा हिस्सा भी उन लोगों का काम करता है जो कि बहुत ही बुद्धिमान जीव हैं। तीन हिस्सा हमारे मस्तिष्क का ऐसा पड़ा हुआ है जो कि बिल्कुल निष्क्रिय है, सोया हुआ है।

उन विभागों मे ज्योतिष विज्ञान की दृष्टि से अगर देखा जाय तो ज्योतिषी भी आप के मस्तिष्क को देख कर कहेंगे कि आप कोई धर्मात्मा व्यक्ति हो सकते हैं, आप कोई इन्जीनियर हो सकते हैं, या आप कोई सगीतज्ञ हो सकते हैं, ये सब बातें आपके मस्तिष्क को देखकर जानी जा सकती हैं। क्योंकि आप के मस्तिष्क मे कुछ भाग काफी उभरा हुआ दिखाई देता है और कुछ भाग कम उभरा हुआ दिखाई देता है, उसी से सब बात का निर्णय कर लिया जाता है।

मैं यहाँ यह कहना चाहती हूँ कि आज के जमाने मे मनुष्यो का सारा जोर इस मस्तिष्क केन्द्र पर लग रहा है। नाभि और हृदय केन्द्र की ओर तो कुछ ख्याल ही नहीं जाता। तभी तो देखने मे आता कि आजकल मानसिक रोग से पीड़ित लोगो की सख्या अधिक है। उन मानसिक रोगो का इलाज आध्यात्मिक औषधि से ही हो सकता है, यहाँ की ये औषधियाँ काम न करेंगी।

किसी को बहुत अधिक चिन्तायें हो और मानलो उसे कोई गोलियाँ खिलाई

चलें तो उनसे क्या होगा कि जो उनकी नाड़ियों में नये करने की शक्ति है वह क्षीण हो जाती है, और आदमी सो जाता है। जब तक उन औषधि का प्रभाव रहता है तब तक तो उसे नींद लिये रहते हैं और जब उन औषधि का प्रभाव खत्म हो जाता है तो फिर उसे नींद नहीं ले पाते।

तो आज के मनुष्य ने इस बुद्धि का बहुत विकास किया। इस विकास में जब मस्तिष्क पर प्रभाव पड़ता है तो नाभि पर भी उसका प्रभाव होता है। और नाभि पर प्रभाव पड़ने से नाभि की सारी क्रिया बिगड़ जायगी। इस आदमी को भोजन न पचेगा। पेट में मरोड़े आदि लग जायेंगे तब फिर उसका ध्यान पेट की तरफ जायगा उसको बड़ी चिन्ता होगी। उस चिन्ता के कारण उसके मस्तिष्क में तनाव आयगा, उस मानसिक तनाव के कारण शारीरिक तनाव भी आयगा जिससे उसके हृदय में शक्ति का संचार न होगा, उसका परिणाम यह होगा कि दिल और दिमाग की बीमारी उसमें आ जायगी।

मैं कहना चाहती हूँ कि आज के युग में हमारे जो तीन केन्द्र हैं उनमें इस मनुष्य ने बुद्धि के विकास की तरफ अधिक जोर दिया। आप सब जानते ही हैं कि जहाँ तीन चार साल के बच्चे हो गए वहाँ उनको विद्यालय में पढ़ने के लिए भर्ती करा दिया जाता है, इससे होता क्या है कि उनकी नाभि और हृदय का विकास रुक जाता है। उनको न तो मां-बाप से प्यार होता और न अपनी मां के स्तन से प्यार होता। मां के स्तन की ऊर्जा पाने से भी वे छोटे-छोटे बच्चे वंचित रह जाते हैं।

आजकल तो जब कोई बच्चा प्यार लेने के लिए मां की गोद में पहुंचता है तो मां उसे अपनी गोद का प्यार नहीं देती, मां कहती है—बेटे बाहर खेलो—अभी घर का तमाम काम निपटाने को पड़ा है। भला बताओ मां की गोद का प्यार न मिलने पर उस बच्चे की क्या हालत होगी? उसके मन में उस मां के प्रति तनाव आ जायगा तभी तो देखने में आता कि आजकल के बच्चों में माता पिता के प्रति प्रेम नहीं रहता। वे स्कूलों में तमाम प्रकार की खुराफात किया करते हैं, कहीं कुर्सियां तोड़ दी, कहीं आग लगा दी, कहीं अन्य कोई तोड़-फोड़ कर दी। उन बच्चों के हृदय में किसी के प्रति प्रेम नहीं पैदा होता। तो इस प्रेम को, प्यार को पाने के लिए हमें बुद्धि नहीं चाहिए, उसके लिए चाहिए मां के हृदय का प्रेम।

जीवन के पूरे विकास के लिए आवश्यकता इस बात की है कि बचपन में

बच्चे को माँ के स्तन का खूब दूध पिलाया जाय। दूध तो यद्यपि शीशियों से भी पिलाया जा सकता लेकिन माँ के हृदय की ऊष्मा, माँ के हृदय का प्यार उन शीशियों से पिलाने पर बच्चों को नहीं मिल पाता इसीलिये तो माँ के स्तन का दूध बच्चों को उनके बचपन की पूरी अवस्था तक पिलाते रहना चाहिये। यदि बचपन मे ही बच्चो को माँ की गोद का पूरा प्यार मिल जाता है तो उनका हृदय प्यार से भर जाता है, मन तृप्त हो जाता है, शान्त हो जाता है और वही बच्चे आगे चलकर माता-पिता के प्रति कृतघ्न होते है और उन्हे अपनी सेवायें देते हैं।

जब हम समाज मे बैठते हैं तो वहाँ बुद्धि की आवश्यकता है लेकिन भोजन के लिए और प्यार के लिए बुद्धि की आवश्यकता नही है। आपने देखा होगा कि जब कोई व्यक्ति प्रधान मन्त्री की कुर्सी पर बैठता है तो कुर्सी पर बैठकर तो उसके सब नियम चलते हैं लेकिन घर मे रहते हुए उसके सब नियम घर के ढंग से चलते हैं। वहाँ वह नियम लागू न होगा वरना घर के अन्दर जीना ही मुश्किल हो जायगा।

तो ऐसे ही बच्चों को नीति नियम वगैरह की शिक्षा जरूर दी जानी चाहिये पर उनका वह नियम अपने घर के अन्दर माँ-बाप के प्रति लागू न होगा। वहाँ तो परस्पर मे एक-दूसरे के प्रति प्यार मिलना चाहिये। उस प्यार के लिए बुद्धि की जरूरत नही पड़ती, वह तो हृदय केन्द्र से उत्पन्न होता है।

तो हृदय मे हमको प्यार चाहिए और नाभि मे शक्ति चाहिये, इसलिए बुद्धि मे हम रिलेक्स करें और नाभि मे शक्ति जागृत करें। हम आपको इस बुद्धि केन्द्र के द्वारा बाहरी-बाहरी बातो का तो पता है मगर हृदय केन्द्र का और नाभि केन्द्र का कुछ परिचय नहीं है। हम यह तो कह सकते हैं कि इसको कम क्रोध है, इसको अधिक क्रोध है लेकिन यह नही कह सकते कि इसको प्यार है। जब प्यार होता है तो थोडा द्वेष भी साथ मे हो ऐसा नही होता। यह तो खुशबू ही होगी या फिर बदबू ही होगी। इन दोनो मे से एक ही होगी, दोनो नहीं।

मैंने एक रबिया की बात पढी थी। वह एक कुटिया मे रहती थी और कुरान उसके सामने था। एक बार वह कुवें मे पानी भरने चली गई इसी बीच उसका एक मित्र फकीर हसन नाम का आया तो उसने क्या देखा कि उस कुरान मे एक वाक्य लिखा हुआ था उसको किसी ने काट दिया था—वाक्य

यह लिखा था कि "दुष्ट से भी घृणा मत करो।" तो इन्हीं में से ही कविता वाली लेकर आदमी तो बड़ा हैरान से पूछा – भरी बात इस पन्ने से यह वाक्य बराबर किसी ने इसको अंकित कर दिया ? तो कविता ने कहा—नहीं। क्यों ? ......इसलिये कि यह वाक्य मेरे लिये बेकार है। ... क्यों बेकार है ? ... इसलिए कि अब मुझे दुनिया में कोई दुष्ट नजर ही नहीं आता तो फिर उससे घृणा करने का प्रश्न ही नहीं उठता। यह बात तो उनके लिए कही गई है जिनको दुनिया में दुष्ट दिखाई पड़ते हों।

एक कहावत है ना कि चोर को सब चोर ही दिखाई देते हैं और साहूकार को सब साहूकार ही दिखाई देते हैं। अथवा जब हमारे हृदय में दूसरों के प्रति प्रेम होता है तो हमें सब जगह मित्र नजर आते हैं और जब हमारे हृदय में द्वेष होता है तो हमें सब जगह शत्रु नजर आते हैं। तो हमारे हृदय में या तो प्यार रहेगा या घृणा, दोनों बातें एक साथ नहीं रह सकतीं।

मैंने एक बात पढ़ी थी। एक नाई किसी राजा की हजामत बनाया करता था। एक बार उस राजा ने नाई से पूछा—क्यों नाई जी बताइये हमारे राज्य में प्रजा का क्या हाल है ? तो उस नाई ने कहा—राजन आपके राज्य में सारी प्रजा में त्राहि त्राहि मची है, सारी जनता भूखों मर रही है, घी दूध के तो कभी दर्शन ही नहीं होते। उस नाई की यह बात सुनकर राजा ने समझ लिया कि इन दिनों यह बड़ा दुखी है इसलिये इसे सब जगह दुख ही दुख नजर आ रहा, सो राजा ने उसके घर गाय भैंस आदि कुछ सम्पति भिजवादी और फिर दो चार महीने बाद जब नाई आया तो राजा ने पूछा कि अब क्या हाल है मेरी प्रजा का ? तो नाई बोला—महाराज आपकी प्रजा इन दिनों बहुत सुखी है, सब जगह बड़ा सुख चैन है, खूब हरा भरा है और घी दूध की तो नदियाँ बह रही हैं।

तो बात यह कही जा रही कि जिसके हृदय में प्रेम होता है उसको सब जगह प्रेम नजर आता है और जिसके हृदय में द्वेष भाव होता है उसको सब जगह शत्रु नजर आते हैं।

अब इसे धार्मिक दृष्टिकोण से देखें तो साधक जनों ने इस नाभि और हृदय स्थल को आत्मानुभव की साधना के लिये काम में लिया है। और जो बुद्धिजीवी हैं या जो वैज्ञानिक लोग हैं उन्होंने शास्त्रों का खूब अध्ययन किया, मनन किया और उसे अपनी बुद्धि में संजोया लेकिन हृदय केन्द्र और नाभि

केन्द्र को अछूता रहने के कारण उनकी बुद्धि मे तनाव आया, फिर उससे उनके जीवन मे विक्षिप्तपना आया, अहकार पैदा हुआ और फिर उनके हृदय का विकास हुआ। उनको आनन्द न आ सका।

एक वर्ग तो यह हुआ और एक वर्ग वह हुआ जिसको हम शरीरवादी कहते हैं या जिसको हम त्यागी कहते हैं या जिसको हम अन्य भाषा के अन्दर साधु कहते हैं। उन साधुओ ने कुछ त्याग किया। उन्होने शरीर के साथ कुछ किया। विद्वानो ने उसे बुद्धि मे सजो लिया और साधुओं ने शरीर के साथ उसकी प्रक्रिया की। जैसे भोजन किया तो एक बार भोजन करना शुरू किया, भोग छोड़ दिया, पञ्चेन्द्रिय के विषय छोड़ दिया, और शरीर को सताना, शरीर की साधना करना शुरू कर दिया, उसमे क्या हुआ कि जो ५ इन्द्रिय के विषय थे या पेट जो बाहर से कुछ शक्ति ले लेता था उन सब रसो को छोड़ दिया। अब रसो को तो छोड़ दिया पर क्या हुआ कि जैसे कोई वृक्ष हो और उसको अगर कोई पानी देना बन्द कर दे तो कुछ दिन तो वह हरा भरा दिखता है और उसके बाद फिर वह वृक्ष सूख जाता है सूखने पर क्या होगा कि उसको काट लिया जाता है। उसका मात्र ठूठ बन जाता है।

तो ये दो ही बातें हो सकतीं—या तो उस वृक्ष को काटकर गिरा दिया जाय या फिर वह वृक्ष जमीन के अन्दर ही अन्दर अपनी जडो को फैला ले और वहाँ से पानी खीचना शुरू कर दे। ये दो ही बातें हो सकती है, इसी प्रकार जो ५ इन्द्रिय के रस हैं इनमे हम कुछ शक्ति अर्जित कर लेते हैं।

अगर किसी साधु ने ५ इन्द्रिय के विषयो को छोड दिया तो वह कुछ दिन तो हरा भरा दिखेगा और कुछ दिन के बाद क्या होगा कि वह ठूठ हो जायेगा उसमे अकड पैदा हो जायेगी, अहकार आ जायगा। जरा-जरा सी बातो मे क्रोध आता रहेगा, क्योकि रस घट गये, शक्ति कम रह गई तो जरा-जरा सी बातो मे क्रोध कर बैठेंगे। चाहे कोई साधु हो या कोई गृहस्थ हो, क्रोध उन दोनों को ही आता है। क्रोध आने से फिर वह ठूठ सा बन जाता है। दूसरी विधि क्या है कि जब किसी ने पाँचो प्रकार के रस छोड दिया तो जो शक्ति आ रही थी वह छूट गई तब वह भीतर ही भीतर जल भुनकर बरबाद भी हो सकता याने वह अपने पथ से कुछ भी हो सकता। ये ही दो विधियाँ हैं, तीसरी कोई विधि नहीं।

आज की साधु परम्परा की ठीक यही हालत हो रही है, जब तक शक्ति

है शरीर के अन्दर तब तक तो उसकी साधना चलती है और जब शक्ति नहीं रह जाती तो वे गुप्त रास्ता निकालने लगते हैं। उस गुप्त रास्ते में चलने के कारण वह समाज से तिरस्कृत होता है। वह परिस्थितिवश करता है, करना नही चाहता, पर वह सूत्र तो खोजो कौन सा ऐसा सूत्र है जिसकी चूक हो जाने से उस साधक को वैसा होना पड़ा।

यहाँ साधना की सफलता पाने अथवा आत्मा का संगीत सुनने के लिये तीन बातें बतायी—मस्तिष्क को ढीला करके नाभि पर केन्द्रित करना, नाभि में शक्ति उत्पन्न करना और हृदय में प्रेम उत्पन्न करना ये तीन बातें आवश्यक हैं। चाहे कोई साधु हो या कोई गृहस्थ हो उसे ये तीन बातें करनी होंगी। नाभि का विकास चाहिये इसलिये आवश्यक भोजन दें। और फिर उस नाभि के आसन के लिये हम श्रम भी कुछ करें और तीसरी बात यह है कि नाभि के लिये ही हम गहरी श्वास लें।

तीन बातें हैं नाभि के विकास के लिये—पहली बात सम्यक भोजन हो, जिस भोजन से पूरे शरीर में शक्ति सप्लाई होती है वह उचित भोजन हो, और दूसरी बात है श्रम की, उसे आगे बताया जायगा कि कैसा श्रम हो। इसमें पहली बात जो शुरू की थी वह है सम्यक श्वास। जितनी गहरी श्वास होगी उतने ही मद विचार चलेंगे और जितनी मद श्वांस होगी उतने ही गहरे विचार चलेंगे। तो मैं तो यह कहूंगी कि आप खूब गहरी श्वास लेना शुरू कर दें ताकि आपके विचार शिथिल होने लगेंगे।

मैं तो इस बारे में यही कहूंगी कि जब भी आप श्वांस लें तो खूब गहरी श्वास लें। जिस समय आप श्वांस को अन्दर ले रहे हों उस समय आप का पेट खूब फूलना चाहिये और जिस समय आप श्वास को बाहर की ओर निकाल रहे हों उस समय आपका पेट बिल्कुल अन्दर पहुँच जाना चाहिये।

जैसे आप कुएँ से रस्सी खींचते हैं तो एक हाथ आगे की ओर बढ़ाते हैं और एक हाथ पीछे की ओर बढ़ाते हैं तो ऐसे ही अगर आप अपने पेट पर हाथ को फिरायें तो वहाँ क्या होगा कि पेट के अन्दर का जितना भी गैस होगा वह सब बाहर आ जायगा। यह एक विधि है। और जब गैस बाहर आ जाये तो फिर आप के भीतर वह गैस न रहेगी जिससे विचार शान्त हो जायेंगे।

अगर हम यह न करें और आसन लगा कर बैठ जावें तो वहाँ ध्यान

शक्तियाँ भी चाहिये, लेकिन जब तक ध्यान न होगा, जब तक योग न होगा जब तक योग न होगा तो ध्यान भी नहीं होगा।

आप कितना ही आत्मा का स्मृतिजन्य ज्ञान कर लें, कितना ही पाठ रट लें पर आपको यदि आत्मा का अनुभव न हो तो उसे याद करने से कुछ लाभ नहीं हो सकता, और किसी के पास पड़ा हो तो उसे मंत्रशास्त्र के द्वारा काटा भी जा सकता। इसलिये पहली चीज है नाभि।

सो उसकी सिद्धि के लिए मैं बता रही कि इस शरीर को बिल्कुल ढीला करके किसी भी आसन से सुखासन या पद्मासन से बैठा जायें और फिर बड़ी गहरी श्वासोच्छ्वास लें।

जैसे किसी ने पानी बनाने का फारमूला रट लिया। तो वह उस फारमूले का जब तक प्रयोग नहीं करता और उस प्रयोग से पानी बनाकर उससे अपनी प्यास नहीं बुझा लेता तब तक उससे उसे लाभ नहीं मिलता, इसी प्रकार नाभि के विकास का भी कोई फारमूला मात्र रट ले और उसको प्रयोगात्मक रूप न दे तो उससे कुछ लाभ नहीं होगा। जैसे प्यास बुझाने के लिये पानी बनाने की विधि का प्रयोग करना ही होगा इसी प्रकार नाभि केन्द्र के विकास के लिये उसकी विधि को प्रयोगात्मक रूप देना ही होगा।

स्वर्ण तो खान के अन्दर एक पत्थर रूप में पड़ा होता है। उसको प्राप्त करने के लिए जैसे विस्फोट तो करना ही होगा। विस्फोट किए बिना उसकी प्राप्ति नहीं हो सकती, इसी प्रकार इन सूक्ष्म स्थूल, कार्माण और तैजस शरीरों को तपाकर जब तक हम विस्फोट नहीं करेंगे तब तक भीतर की चेतना शक्ति, अनन्त वीर्य प्रकट नहीं हो सकता।

वह चेतना तो ट्रांसमीटर के अन्दर बन्द पड़ा हुआ है उसे खोल दें ताकि भीतर की चेतना का स्रोत फूट निकले। उसके लिये सबसे पहली विधि बतायी श्वासोच्छ्वासकी। इस विधि के द्वारा तैजस शरीर प्रकट हो सकता है। तैजस शरीर में अपने आप बहुत बड़ी शक्ति है स्थूल शरीर की अपेक्षा तैजस शरीर की शक्ति अधिक है और इस कार्माण शरीर की शक्ति उस तैजस शरीर की अपेक्षा भी महान है।

जो इस नाभि शक्ति को खोलकर उसे प्राप्त कर लेता है उसे फिर भोजन करने की भी जरूरत नहीं रहती। उसमें इतनी शक्ति स्वयं प्रकट हो जाती कि वह अपने आसन में केन्द्रित हो जाता है और आसन में केन्द्रित हो जाने पर फिर वह अपने ध्यान में भी केन्द्रित हो जाता है।

शरीर की ६ किस्म कही—जिसे दूसरे शब्दों में कहो संहनन। तो उन ६ प्रकार की किस्मों में से सबसे पहली किस्म है।

(१) **वज्रवृषभनाराचसंहनन**–जिनके शरीर की हड्डिया, शरीर की कीलियाँ, शरीर के जोड़ ये सब वज्र के होते हैं और वेस्टन (चमड़ा) भी वज्र हो उसे कहा जाता है वज्रवृषभनाराचसंहनन। ऐसे वज्र के शरीर को किसी चीज से भेदा नही जा सकता, ऐसा वज्र का शरीर जिसके होता है उसे कहते हैं वज्र-वृषभनाराचसंहनन वाला।

हनूमान जी का शरीर वज्रवृषभनाराचसंहनन वाला था तभी तो जबकि विमान ऊपर उड़ा जा रहा था और बालक हनूमान अपनी माँ की गोद में खेल रहा था, तो वह मैलता हुआ बालक विमान से नीचे जा गिरा। जब उसे देखा गया तो क्या देखने मे आया कि जिस पत्थर की शिला पर हनूमानजी गिरे थे वह शिला तो चकनाचूर हो गई थी पर बालक हनूमान अपने पैर का अगूठा चूस रहा था। तो बात वहाँ क्या थी कि हनूमान का शरीर वज्रवृषभनाराच-संहनन धारी था।

(२) दूसरा होता है **वज्रनाराचसंहनन**–इसमे शरीर तो वज्र का नहीं होता लेकिन वज्र के हाड व वज्र की कीलियाँ होती हैं।

(३) तीसरा होता है **नाराचसंहनन**—इस शरीर में कोई भी वस्तु भी वज्र की नहीं होती किन्तु वेस्टन और कीली सहित हाड होता है।

(४) चौथे प्रकार के शरीर को कहते हैं **अर्द्धनाराचसंहनन** जिसमे हाडों की सन्धि अर्द्धकीलित हो। हड्डियाँ ही परस्पर मे ऐसी अर्द्धकीलित कर दी गई हों जो निकल नही सकती। यह कहलाता है अर्द्धनाराचसंहनन।

(५) पाँचवा होता है **कीलकसंहनन**—जिसमे बिना कीलो के सिर्फ हड्डियों को ही भिड़ाकर जोड़ दिया गया हो। वह कीलक संहनन है।

(६) और छठा होता है **असम्प्राप्त सृपटिका संहनन**—जिसमे हड्डियाँ भी परस्पर मे ढंग से न भिड़ाई गई हों इसे कहते हैं असम्प्राप्त सृपाटिकासंहनन जिसमे जुदे जुदे हाड़ नसो से बँधे हों, परस्पर कीले हुए न हों।

यह शरीर एक ऐसी गाड़ी है जिसे हमे परखना होगा, तो इसे हम परखें और दूसरे हम यह देखें कि इस शरीर मे जरा सी भी सर्दी गर्मी लग गई या वात पित्त, कफ आदिक इसमे घर कर गये और हम अपनी साधना से च्युत हो गए तो हमारी गाड़ी बीच मे ही रह जायेगी। तो ऐसा करें कि इस जीवन की

[illegible]

जैसे यह मोटर १०-१५ घंटे लगातार चल चुकी है तो उसको बीच में बंद करके ठंडी कर दिया जाता है और यदि ठंडी न की जाये, बीच में उसे आराम न दिया जाये तो वह मशीन गुस्सा कर सकती है। ऐसे ही इस शरीर में भी हार्मोन्स हैं। तो जब शरीर ओवर थक जाता है, काम कर चुका है, वह तंग हो जाता है, तब निमित्त आता है तो आपको गुस्सा आ जाता है। वह गुस्सा आप नहीं कर रहे किन्तु शरीर कर रहा।

जरा सोचो तो सही कि आप सुबह शांत होते हैं तो क्यों आप शान्त हैं या आपका शरीर आपको शांति दे रहा है तब मानने की बात है। आप रोज-रोज सुबह नियम करें कि मैं गुस्सा नहीं करूँगा लेकिन शरीर में अगर रोग है, शरीर के हार्मोन्स अगर थक गए हैं तो आप न चाहें तो भी आपको गुस्सा आ जायगा। नियम लेने से कभी क्रोध शान्त न होगा, बीच-बीच क्रोध पैदा होता रहेगा।

तो हमें शरीर को विकसित करना है ताकि शरीर में अतिरिक्त ऊर्जा मिले। और शरीर थके नहीं तो क्रोध न आवे। शरीर की जो क्रोध करने वाली ग्रन्थियाँ हैं वे भी सीमित रहें ताकि क्रोध कम आ सके। शरीर क्रोध करा रहा, आप क्रोध नहीं कर रहे इसलिये शरीर को समझना जरूरी है। शरीर को समझे बिना आपके नियम कोई भी काम नहीं आ सकते।

तो शरीर की क्षमता हमको क्रोध कराती है, द्वेष कराती है, प्रेम कराती है। तो इस शरीर की क्षमता को हमें विशिष्ट रूप से विकसित करना होगा। अध्यात्म-साधना के लिये बताया कि जैसा हमारा शरीर होगा उसके अनुसार हम आसन की स्थिरता कर सकते हैं। तो शरीर की दृष्टि से शरीर की किस्म की जाती हैं।

समझें फिर उसको नष्ट करने का उपाय बतायें तब वह उपाय कार्यकारी हो सकता है।

हम आपके शरीर की जो विधि है उसको बदल दें क्योंकि हमारा जैसा शरीर है, जैसी रसायन है वैसे ही हमारे अन्दर विचार आते हैं, वैसी ही अनुभूति होती है और वैसा ही आचरण करते हैं तो फिर हम क्या करें कि इस शरीर की रसायन को बदल दें। कुछ रसायन वे होती हैं जो कि प्राकृतिक होती हैं और कुछ रसायन ऐसी हो सकती हैं कि जो बाहर से ग्रहण की जाती हैं जिनसे हमारे शरीर की प्रक्रिया बदल जाय। और शरीर की रसायन जब बदलने लग जायगी तब हमारे भीतरी विचार बदलने लग जायेंगे। थोड़ा विचार बदल गए, थोड़ा शरीर बदल गया, ये एक दूसरे के सहयोगी कारण हैं।

———

अधीन हो गए ? अच्छा शरीर होगा तो अच्छे काम करेंगे, और बुरा शरीर होगा तो बुरा काम करेंगे, जब हमारा शरीर बुरा है तो फिर हम अच्छे काम कर ही कैसे सकते ? यह एक प्रश्न है। तो यहाँ यह सब इसीलिये कहा है कि कारण कार्य आप सब जान जावें। जब कारण कार्य जान जायेंगे तो कार्य से कारण को आप बदल भी सकेंगे।

मान लो किसी रसोई घर में खूब धुंआ भरा हुआ है और खिड़की से बाहर आप बैठे हुए हैं और आप उस धुंए को बन्द करना चाहते हैं तो यदि आप खिड़की बंद करके उस धुंए को बंद करना चाहें तो इस विधि से वह धुंआ बन्द न हो पायगा। उस धुंए का कारण है ईंधन का गीला होना। अब उस धुंए को मिटाने के लिये कार्य करना होगा गीले ईंधन को उस आग में से निकालने का। इस विधि से वह धुंआ खतम हो सकता है। कहीं आपने खिड़की बंदकर लेने मात्र से वह धुंआ खतम न होगा।

तो ऐसी ही बात यहाँ है। हम कहते हैं कि हमको क्रोध आता है, घृणा आती है, द्वेष आता है तो यह भी आत्मा की एक बीमारी है। यह बीमारी किस कारण आती ? उस कारण को पहले समझना होगा तब उसके दूर करने के प्रति जो उपाय किया जायगा वह उपाय कार्यकारी होगा। किसी को हम ऐसा नियम नहीं दिला सकते कि भाई क्रोध न करने का तुम नियम ले लो। अगर मान लो कोई यह नियम ले भी ले कि आज मैं क्रोध नहीं करूँगा तो देखा क्या जाता कि जब वह अपने घर पहुँचता है तो वहाँ कोई प्रतिकूल प्रसंग आ जाने पर वह क्रोध करने लगता है। मान लो उस व्यक्ति को जाना था अपने काम पर। उधर घर में खाना तैयार न था तो वहाँ वह व्यक्ति अपनी स्त्री पर झल्ला उठता है कि मेरे को लेट हो रही है तूने अभी तक खाना क्यों नहीं तैयार किया ? तो क्रोध न करने के नियम की बात कैसे बन सकती ? अगर मान लो कोई नियम ले भी ले तो वह भले ही उस नियम लेने के कारण चुप बैठा रहे पर प्रतिकूल प्रसंग आ जाने पर वह बड़ा बेचैन हो जायगा और क्रोध का वेग उसका उमड़ पड़ेगा।

जैसे किसी के शरीर में कहीं फोड़ा फुंसी हो और उसमें पीप खूब भरी हो तो भले ही उसे कोई कितना ही ढाकने की कोशिश करे पर वह तो उसे बेचैन कर ही देगी इसी प्रकार क्रोध को कोई कितना ही ढाके पर वह बेचैन किए बिना रह नहीं सकता। तो उस क्रोध को उत्पन्न होने का कारण पहले

चौका एक पूजा है

प्राचीन काल मे एक आचार्य हुए हैं उनका नाम था पादलिप्त। वे आकाश की लम्बी यात्रा उड़कर किया करते थे। वे अपने पैरों में एक लेप लगाया करते थे, उस लेप मे वे उड सकते थे। उनकी इस प्रक्रिया को देखकर उस समय का एक रसायन शास्त्री जिसका नाम था नागार्जुन, वह बडा प्रभावित हुआ और उस विद्या को पाने के लिये उसने उस आचार्य का शिष्यत्व प्राप्त कर लिया और जब आचार्य आकाश से यात्रा करके लौटते तो नागार्जुन एक बर्तन मे उनके चरण प्रक्षालन करते थे, क्योंकि नागार्जुन रसायन शास्त्री थे। उन्हे वनस्पति के बहुत से रसो का ज्ञान था, इसलिये उस चरण प्रक्षालन के जल को वे सूंघते थे और चखते थे और वे उन जड़ी बूटियों का ज्ञान करते थे।

ऐसा करते हुये उन्हे बहुत समय बीत गया। धीरे-धीरे करके उस लेप मे डाली जाने वाली वनस्पतियों को जान लिया और उससे एक लेप तैयार किया। लेप तैयार करके उन्होंने अपने पैरों मे लगाया और जैसे ही उड़ना चाहा तो वे आकाश मे ऊँचे तो उड न सके पर मुर्गे की तरह से फुदकने लगे। वहाँ नागार्जुन को आश्चर्य हुआ कि यह सब कैसे हुआ, क्या कमी रह गई? तो अब वे आचार्य के पास गए और निवेदन किया तो वहाँ आचार्य ने बताया कि मैं तुम्हारी रसायन विद्या पर बहुत प्रसन्न हू। तुमने परखकर सब औषधियो को जान तो लिया है लेकिन उसमे अभी एक कमी रह गई है, वह कौन सी कमी रह गई कि उस लेप को चावल के माँड मे तैयार करना चाहिये। जडी बूटी तो सब जान लिया लेकिन किस मे तैयार करना यह नही जान पाया था। जब नागार्जुन ने चावल के माँड मे वह रसायन तैयार किया और फिर उसे पैरों मे लेप करके आकाश की यात्रा करना चाहा तो बडे आराम से यात्रा कर लिया। तो आचार्यों ने कहा—अचिन्त्य प्रभावो याने इन मणि आदिक औषधियो का बडा अचिन्त्य प्रभाव होता है। इस कथानक से दो बातें निकलती हैं। एक बात तो यह कि इन औषधियो का प्रभाव क्या है, और दूसरी बात

का सदुपयोग होता है, उसके बाद कुछ उपलब्धि होती है। जब शक्ति का उपयोग नही हो पाता तो फिर उसका उपयोग भोगादिक कर्म की बातो मे जाता है। और अगर उस शक्ति को किसी काम में लगा लेंगे तो वह कला बन जायगा। उससे सृजन होगा। उससे आनन्द आयेगा। और उस शक्ति को काम मे न लेंगे तो वह बाहरीऐश्वर्य की बातो मे जायेगा, भोगो मे जायेगा, वह निराशावादी बन जायगा। इन सब प्रकार की शक्तियों का विनाश होता हैऔर विनाश के पश्चात् आदमी को पश्चाताप होता है। तो हम इन शक्तियो को काम मे लायेंगे और उसमे प्रसन्नता जागृत करें।

अगर हम अपने देश की दृष्टि से देखें तो वहां तो काम ईमानदारी से करें। अगर किसी मजदूर को ८ घण्टे काम करने को बताया जाय तो वह ईमानदारी से बड़ी प्रसन्नता से पूरे समय वह कार्य करे। शिक्षक लोग भी अपनी पूरी ड्यूटी प्रसन्नता के साथ अदा करें। अक्सर देखा यह जाता कि शिक्षक लोग विद्यालय मे कुछ स्पीच देकर अपनी ड्यूटी पूरी कर देते हैं, न वहाँ शिक्षक ही विद्यार्थियो की कुछ परवाह करता है और न विद्यार्थी ही शिक्षक की परवाह करते है, पर वही शिक्षक जब किसी को ट्यूशन पढाता है तो वह बड़ी मेहनत से, लगन से पूरे समय तक पढ़ाता है और उस विद्यार्थी की परवाह करता है। फैक्ट्रियो मे भी आप देख लीजिये, प्राइवेट फैक्ट्रियो मे तो काम ठीक चलता है मगर सरकारी फैक्ट्रियों मे देखो तो वहाँ बड़ी बेईमानी चल रही है। पहुंचना तो है मानो ६बजे ड्यूटी पर मगर वहाँ १०बजे जा रहे तो कहीं ११ बजे, और फिर थोड़ा घूम घाम कर कहीं से कहीं टल जाते हैं। कुछ काम नही करना चाहते। यह देश के प्रति धोखे बाजी है।

तो कहा है कि आदमी में श्रम के प्रति उपासना का भाव न रखने से वह अधर्म है। एक ओर तो सरकार को धोखा दे रहे और एक ओर प्रजातन्त्र के नारे लगा रहे। प्रजातन्त्र का मतलब ही यह है कि मालिक भी अपना कर्तव्य पूरा करे और मजदूर भी अपना कर्तव्य पूरा करे, शिक्षक भी अपना कर्तव्य पूरे करे, यो ही हर एक कोई अपने अपने कर्तव्य पूरे करें तभी उन्हे अपने कार्यों मे सफलता मिल सकती है। जैसे सास सोचती कि ये काम तो बहू निपटा लेगी, बहू सोचती कि सास निपटा लेगी। सास सोचती कि बेटी निपटा लेगी, बेटी सोचती कि भाभी निपटा लेगी, इस प्रकार की बातें जिन

है । इसलिये ज्ञानी वह होता है, जो अनुभवी होता है और जिसके भीतर अमृत का झरना फूट चुका है । इसको जो ज्ञान होगा वह शब्द तो बाहर के लेगा लेकिन अनुभव उसका अपना होगा और पंडित वह होता है जो कि इन स्मृतियों को अपने भीतर में संजो लेता है और उन कंकड़-पत्थरों से अपने ज्ञानजल को गदला बना लेता है । उसका वह जल भी बाहर का होता है भीतर का नहीं ।

तो कहते हैं कि पण्डित बनने के लिये आपको सूत्र, सिद्धान्त वगैरह याद करने पड़ेंगे और ज्ञानी, अनुभवी बनने के लिये आपको शब्द बाहर निकालकर फेंकने पड़ेंगे । तो पहले स्तर पर शब्द को बाहर निकाला, तो क्या करें प्रक्रिया ? आप ऐसा ख्याल करें जैसे मानो हमारे सिर से कोई चीज निकाल-कर फेंकी जा रही हो । कुछ सम्वेदनायें हमारे मस्तिष्क तक जाती हैं और कुछ मस्तिष्क तक पहुँचती हैं फिर मस्तिष्क अपना सुझाव देता है । यह प्रक्रिया इतनी जल्दी-जल्दी होती है कि कुछ पता नहीं लगता । लेकिन पहले सूचना जाती है, फिर निर्देश मिलता है और तब क्रिया होती है । इसी प्रकार कोई सूचना आपके मस्तिष्क में गई हो, आपको निर्देश मिला हो तो आप उसे दूसरा सुझाव दे सकते हैं । यह सूचना आपके मस्तिष्क में आई है तो आप मेरा क्या बात सोच रहे हैं । ये शब्द निकलते चले जा रहे, बिलकुल बहे चले जा रहे । कभी-कभी आप ऐसा प्रयोग करके भी देख लेना । बहुत से ऋषियों ने नदी के किनारे बैठकर इन विचारों से मुक्ति प्राप्त की थी । आप भी अगर इसका प्रयोग करके देखेंगे तो आप को पता पड़ेगा कि सचमुच नदी के किनारे बैठकर ध्यान करने से इन विचारों की शृंखला कम हो जाती है । तो बात यही क्या है कि जब नदी बह रही हो तो वहां यह ध्यान हो जाता कि जैसे ये लहरें बहती जा रही हैं ऐसे ही हमारे अन्दर आने वाले विचार भी बहते जा रहे हैं, वे टिकते नहीं हैं ।

मानस चक्षु से देखें कि आप किसी नदी के किनारे बैठे हैं और वहां नदी का जल बह रहा है, कोई झरने फूट रहे हैं, उसमें सांय-सांय की आवाज भी आ रही है, ऐसी नदी के किनारे बैठकर जब आप ध्यान करेंगे तो वहां आपके मन में विचारों का तनाव कम होगा और जब आपके अन्दर नाना प्रकार के विचार, विकल्प-तरंगें नहीं उठेंगी तो वहां आपको बड़ा विश्राम सा प्राप्त होगा । आप अपने अन्दर बड़ी शान्ति का अनुभव करेंगे और वहां आप

अगर नींद लेना चाहें तो नींद भी आने लग जायेगी। इस प्रयोग से आपको नींद आ सकती है।

और दूसरा उपाय यह भी कर सकते हैं कि हमारा दिमाग नीचे की ओर को बह रहा है। जो भी विचार आपके आ रहे उन्हें रोकें मत, चाहे अच्छे विचार आएं चाहे बुरे विचार आएं, उन्हें सिर्फ बहने दें, उनके भले-बुरे का कुछ ख्याल न करें। जैसे नदी ऊपर से नीचे की ओर बहती है ऐसे ही वहाँ यह ख्याल करें कि हमारे अन्दर के ये विचार विकल्प सब ऊपर से नीचे को हम नदी के जल के साथ बहे जा रहे हैं, और जैसे नदी के जल के साथ तमाम प्रकार की गन्दगी बह जाती है उसी प्रकार हमारे अन्दर आयी हुई यह विचारों की गन्दगी भी बही जा रही है, इस प्रकार का ख्याल करें।

मानो आने वाले विचारों को यह सलाह देना है कि ऐ विचारों, तुम खूब बहे जाओ। अथवा जैसे किसी पहाड़ी का झरना ऊपर से नीचे को झर रहा हो तो देखकर भी ऐसा ख्याल कर सकते कि मेरे विचार उस झरने वाले जल के साथ बहे जा रहे हैं।

ये शब्द मात्र परिग्रह हैं, ये बाहर से आये हैं, विकल्प हैं, तो जैसे कहते हैं ना कि कांटा तो कांटा ही है चाहे वह बबूल का हो या सोना आदिक धातुओं का हो, वह तो लग जाने पर वेदना ही पैदा करेगा। इसी प्रकार ये शब्द तो विकल्प हैं, ये कांटे की तरह हैं, चाहे शुभ हो या अशुभ हो, ये तो वेदना ही पैदा करेंगे। लोक व्यवहार में काम चलाने के लिये तो ये शब्द चाहियें पर अध्यात्म के लिये इन शब्दों की कोई आवश्यकता नहीं है। अध्यात्म की पहुंच के लिये अनुभूति चाहिये।

परम्परागत ज्ञान से मुक्ति

जितने भी संसार में दार्शनिक हुए उनको दो कोटियों में विभक्त किया गया है। एक को कहते हैं विचारक और एक को कहते है द्रष्टा। भारतीय ऋषि विचारक न थे, द्रष्टा थे। विचार परोक्ष वस्तु के विषय में किया जाता है और दर्शन प्रत्यक्ष वस्तु का होता है, विचार में उस वस्तु का अनुभव नहीं होता और दर्शन में उस वस्तु का अनुभव होता है। विचार कोई भी पदार्थ को तोड़कर देखता है और दर्शन उस समग्र को अनुभव करता है। बुद्धि किसी भी पदार्थ को तोड़कर वर्णन करती है अखण्ड का वर्णन कर ही नहीं सकती।

तो उसके लिये विचार सत्य के निकट नहीं होता, किन्तु दर्शन सत्य के निकट होता, इसलिये जैन दर्शन में कहा कि सम्यग्दर्शन धर्म का मूल है। सम्यक् विचार धर्म का मूल है ऐसा नहीं कहा। सम्यग्दर्शन क्या कि जैसा कि आपने भीतर देख लिया था और देखने की विधियां कई तरह की होती हैं जैसे कि आप चखकर देखते हैं, छू कर देखते हैं, सूंघ कर देखते हैं आदि, ये वस्तु के निकट होते हैं और वह एक विधि होती है कि जिसे कहते हैं सुख प्रेम आदिक का अनुभव। उसे न छू कर देखते हैं न चखकर लेकिन फिर भी देखते हैं।

जैसे आप एक पुष्प के विषय में विचार करें तो पहले उसकी एक कली लेंगे, फिर उसका गंध और स्पर्श लेंगे। अब उस पुष्प से सब चीजें निकाल कर बाहर रख दीजिये तो बताओ अब वह पुष्प कुछ रहा क्या? अरे वह तो समाप्त हो गया, मुर्दा हो गया, शव रह गया जिसमें प्राण नहीं है। जैसे एक शरीर की अगर बाजू कहीं डाल दी जावें, आँखें कहीं डाल दी जावें तो बताओ वह शरीर शरीर है क्या? नहीं है। तो ऐसे ही हमने सत्य को कहीं एक भाग का डाल दिया। ऐसे टुकड़े करके और उसे बुद्धि में बिखेर दिया। बिखेर देने पर वह धर्म का शव तो है उन लेकिन अंगों में प्राण नहीं है।

संसार में पदार्थ तीन प्रकार के होते हैं ज्ञात, अज्ञात और अज्ञेय। ज्ञात उसको कहते हैं जिसे आप जानते हैं, अज्ञात उसे कहते हैं जिसको आप जानते नहीं हो लेकिन जान सकते हो, और अज्ञेय उसे कहते हैं जिसको आप जान नहीं सकते। संसार में बहुत सी चीजें हैं जिन्हें आप जानते हो और बहुत-सी चीजें ऐसी हैं कि जिनको न जानते हो पर जान सकते हो और कुछ पदार्थ ऐसे हैं जिनको जाना ही नहीं जा सकता है, उनको अज्ञेय कहते हैं। तो आत्मा अज्ञेय है; सत्य अज्ञेय है, उसको बुद्धि के द्वारा जाना नहीं जा सकता। वह इन्द्रिय के पार है, मन से अतीत है, मन का वह विषय ही नहीं इसलिये मन से कैसे जानेंगे? कहना कि सम्यग्दर्शन किससे होता। श्रुत ज्ञान से नहीं होता, सम्यग्ज्ञान कैसे होता? मति ज्ञान पूर्वक होता है। सम्यग्ज्ञान सविकल्प भी नहीं होता किन्तु निर्विकल्प होने से होता है और निर्विकल्पता आती है ध्यान से। ध्यान से निर्विकल्पता आती है, ध्यान से श्रुत ज्ञान दूर होता है, और जब सम्यग्दर्शन होता है तो उसके लिये बुद्धि की आवश्यकता नहीं होती किन्तु ध्यान की आवश्यकता होती है।

एक अन्धा व्यक्ति महात्मा बुद्ध के पास गया और कहा कि आप मुझे समझाइये कि प्रकाश होता कि नहीं होता और फिर होता तो कैसे होता है? तो उन्होंने कहा कि मैं न यह कहूँगा कि प्रकाश होता है और न यह कहूंगा कि प्रकाश नहीं होता, मैं इन दोनों ही स्थितियों को नहीं कहना चाहता हूँ। तो फिर उस व्यक्ति ने पूछा—तो फिर आप क्या कहना चाहते हो? तो महात्मा बुद्ध ने कहा—प्रकाश होता भी है और नहीं भी होता है। मैं कैसे कहूं कि प्रकाश नहीं होता क्योंकि प्रकाश तो खिला हुआ दिखाई दे रहा है। तो महात्मा बुद्ध की यह बात सुनकर लोगों को कुछ अटपट सी बात लगी आखिर उस अन्धे व्यक्ति से किसी ने कहा कि भाई तुम तो अपनी आँख का इलाज करवा लो, आँखों का इलाज हो जाने पर तो आप स्वयं यह प्रकाश अपनी आखों देखकर जान सकोगे। सो उस व्यक्ति ने जब आँखों का इलाज करवा लिया तो उसे सब कुछ दिखने लगा, धीरे-धीरे उसके हाथ की लाठी भी छूट गई अब वह दौड़ता हुआ महात्मा बुद्ध के पास पहुचा और बोला—आप तो कहते थे कि प्रकाश नहीं भी होता सो कैसे? प्रकाश तो देखो प्रकट रूप में दिखाई दे रहा है। तो वहां महात्मा बुद्ध ने कहा कि अगर मैं कहूँ कि प्रकाश होता है तो यह भी मान ली गई बात है और अगर कहूँ कि प्रकाश नहीं

होता यह भी मान ली गई बात है। वस्तुतः इस प्रकाश से मेरा कोई मतलब नहीं होता। बात यह नहीं है कि प्रकाश है कि नहीं किन्तु बात यह है कि जब ध्यान का इकाग्र हो जाता है तो उस प्रकाश को प्रत्यक्ष रूप से जान लिया जाता है।

जो इस आगम से मान लेते हैं कि आत्मा है वे इस संसार के अंदर आस्तिक कहलाते हैं और जो नहीं मानते वे नास्तिक कहलाते हैं। इस आत्मा का जो आस्तिक हैं उन्होंने भी नहीं देखा और जो नास्तिक हैं उन्होंने भी नहीं देखा, यह सब माना हुआ है।

जैसे गणित में कहते हैं ना कि मान लिया कि मूलधन एक हजार है, अरे है तो वहाँ कुछ नहीं पर कल्पना से मान लिया, ऐसे ही सिर्फ मान लिया कि कोई एक आत्मा है। तो इस प्रकार से मान लेना और चीज है, जानना और चीज है, मानना परोक्ष से होता है पर जानना प्रत्यक्ष से होता है। इसलिये मैं कहना चाहती कि जो हम पढ़ लेते हैं उसको पढ़कर हम मान लेते हैं कि आत्मा है और उसे तर्क वितर्क करने लगते हैं, वह केवल काव्य का आनन्द देता है लेकिन सत्य का आनन्द नहीं देता। इसमें जो हमने मान लिया यह ज्ञान है, यह सत्य का ज्ञान है तो यह हमने ऐसा कल्पना से मान लिया है। इस भ्रम को छोड़ दें।

मेरे बताने का प्रयोजन यह है कि इस भ्रम को छोड़ दें कि जो हमने शब्द संचय कर लिया है वह ज्ञान है। यह केवल माना हुआ है, जाना हुआ कुछ नहीं है, जानना कब होगा? जब कि हम यह छुटपुट जानना उठाकर रख देंगे और निर्विकल्प हो जायेंगे।

अनुभव बुद्धि का विषय नहीं है। अनुभव बुद्धि से अतीत होता है। हम उस को बुद्धि में सजोना चाहते हैं और अनुभव सत्य असीम है। जिन्दगी में जो जो भी हमें महत्वपूर्ण चीजें उपलब्ध होती हैं वे बुद्धि के बिना होती है, ध्यान से होती हैं, जितने भी लोगों ने जो उपलब्धि की है वह ध्यान से की है। आइन्सटीन को, लिंकन को या किसी को जो भी असली सूझ आयी है वह बुद्धि से नहीं आयी, जब शान्त होकर प्रतीक्षा करके बैठ गए तो उन्हें सूझ आने लगी।

ज्ञान तो भीतर से प्रकट होता है, बाहर से ज्ञान नहीं आ सकता। बाहर से जो ज्ञान आयेगा वह सब उधार होगा, जड़ होगा, और जो भीतर से आयेगा वह सजीव होगा, अपना होगा, उसे छीना नहीं जा सकता। इसलिए

मैं यह नहीं कहती कि शास्त्र और सिद्धान्त व्यर्थ हैं और मैं यह भी नहीं कहना चाहती कि ये पूरे रूप में सार्थक हैं, ये केवल हम आपको संकेत देते हैं। ये तो केवल विधियाँ बताते हैं, अब उन विधियों को रटकर मत बैठ जाना। इनको ज्ञान मत समझना। ज्ञान वह है जो हमारे अन्दर से आता है।

मानलो कोई इन विधियों को तो रट ले और उनका प्रयोग न करे तो वह रटना किस काम का? जैसे कोई तैरने की कला की विधि शब्दों से खूब रटले कि पानी में इस तरह से गिर जाना चाहिये फिर हाथ पैर इस इस तरह से फटकारना चाहिए, फिर पानी में इस इस तरह से छलांग लगाते हुए बढ़ना चाहिये ये सब बातें जो खूब रटते पर प्रयोगात्मक रूप से उसका अभ्यास न करें तो उसका क्या हाल होगा? यदि वह किसी तेज बहती हुई नदी में तैरने के लिये छोड़ दिया जायेगा तो वह डूब जायेगा।

इसलिए मैंने कहा कि जो अपने को समर्पण कर देता है, जो प्रतीक्षा करता है वह तैर जाता है और जो मात्र शब्द रट रटकर उसका कुछ जान कार हो जाता है वह तैर नहीं सकता, वह तो उस नदी में डूब जायेगा। ऐसे ही शान्ति के मार्ग में जो उस शान्ति पाने की विधियों का प्रयोग कर लेता है वह तो शान्ति पा लेता है और जो उन विधियों को याद करता रहता है वह डूब जाता है।

दो चीजें यहाँ कही गई हैं ज्ञान और ध्यान। ज्ञान तो उस परमात्मा की सूचना देता है, अब उस सूचना भर में उलझ जाने की जरूरत नहीं है, कोई उस सूचना की विधि को समझ ले और फिर उसका प्रयोग करे तो इससे उस ज्ञान की सार्थकता है, ज्ञान का अर्थ है कि आप उन विधियों को जानें इतना ही पता लग जाय तो काफी है, फिर उनका प्रयोग करें।

जैन पुराणों में एक कथा है शिवभूति मुनि की। शिव भूति मुनि को बहुत समय हो गया तप-श्चरण करते हुए। वे बहुत याद करें पर उन्हें कुछ याद हो न हो। तपश्चरण उन्होंने शरीर में किया था। देखिये ज्ञान की दृष्टि से तप, ज्ञान और ध्यान ये तीन बातें कही जाती हैं। तो ज्ञान की दृष्टि से उन्हें कुछ नहीं आता था। उन शिव भूति मुनि के कितने ही साथी बड़े बड़े ज्ञानी हो गए लेकिन शिवभूति सब के सामने अपने को बिल्कुल मूर्ख समझते रहे। तो एक दिन की बात है कि

वे किसी घर आहार के लिए गए तो उन्होंने किसी स्त्री को धान छोड़ते, हाथ से मल मल कर छिलके उतारते हुए देखा। उस दृश्य को देखकर मानों ही उनके अन्दर ज्ञान जग गया कि जैसे यह धान अलग है और छिलका अलग इसी प्रकार से मेरा आत्मा अलग है और जिन शब्दों को मैं रटता फिरता हूँ वे शब्द अलग हैं। इस प्रकार के भाव के आते ही उनके भीतर की जो ग्रन्थियाँ थीं वे टूट गईं थीं और उनको केवल ज्ञान हो गया था।

तो स्मृतियाँ आपको परमात्मा की ओर न ले जायेंगी उनको बिल्कुल छोड़कर रख देना होगा। जैसे किसी व्यक्ति को दिल्ली जाना हो तो उसे यही तो कहेंगे कि भाई यहाँ बस अड्डे से बस पर बैठना वहाँ चाँदनी चौक में उतर जाना फिर वहाँ से बायें हाथ को मुड़ जाना वहाँ कुछ दूर जाने पर एक फव्वारा आयगा, वहीं इनके मन्दिर के मकान को पूछकर पहुँच जाना। तो बताओ इस तरह का पाठ रट लेने मात्र से तो वह दिल्ली नहीं पहुँच पायगा, उसे तो उस विधि का प्रयोग करना पड़ेगा तब ही दिल्ली पहुँच पायगा।

तो मैं आपको यह सूत्र बता रही हूँ कि हम जिस ज्ञानको इकट्ठा कर लेते हैं वह ज्ञान मोक्ष-मार्ग में सहायक नहीं है। पहले तो थोड़ा सा सहायक सा बन जाता है विधि बताने के लिये मगर मुख्य रूप से सहायक होता है ध्यान। इस ध्यान की विधि को जो हमने बताया था उसे कोई कम पढ़ा लिखा हो वह भी समझ सकता है और बात भी कुछ ऐसी है कि जितना जितना कोई आदमी अधिक पढ़ जाता है उतना-उतना उसको तनाव अधिक हो जाता है और जो कम पढ़ा लिखा होता है उसमें सरलता रहती है, श्रद्धा रहती है। उस श्रद्धा के ही कारण वह ध्यान में जल्दी आगे बढ़ जाता है।

मैं यह कहना चाहती हूँ कि मुक्ति ज्ञान से नहीं किन्तु ध्यान से पैदा होती है। ज्ञान विकल्प है, परोक्ष है और ध्यान निर्विकल्प है। ध्यान अनुभव से लिया जाता है। आत्मा तो इन्द्रियका विषय है ही नहीं, वह स्वरूप है, उसमें हम ध्यान से पहुँच सकते हैं, इसलिये हम ध्यान की महत्ता को समझें, ज्ञान की नहीं। ज्ञान तो एक व्याकरण की तरह से सहयोगी हो सकता है। जैसे कोई विद्यार्थी अंग्रेजी पढ़ता है तो वह व्याकरण सीखता है तो अंग्रेजी भाषा का लिखना पढ़ना और बात करना सीखता है। तो यह व्याकरण जैसे पढ़कर छोड़ने के लिये होती है ऐसे ही ज्ञान भी समझकर छोड़ने के लिये होता

है। तभी तो समयसार में कहा कि निश्चयनय भी विकल्प है और व्यवहारनय भी विकल्प है, ये दोनों ही विकल्प हैं। आत्मा तो निर्विकल्प है। निर्विकल्प में पहुंचने के लिये हमें ध्यानका आश्रय लेना होगा, और वह ध्यान अनपढ आदमी भी कर सकता है और पढ़ा भी। उसके लिये पहले आवश्यक है श्रद्धा और फिर दूसरी आवश्यकता है धैर्य की। जैसे कागज के फूल से दरवाजे बहुत जल्दी बनाये जा सकते लेकिन असली फूल की सुगन्ध मिलने मे समय लगता है।

अगर ध्यान करने बैठे तो कहा कि उस समय बड़ा शान्त मन हो। देखिये मन अभी निर्विकल्प नही हुआ, उसके लिये बडी प्रतीक्षा करनी होगी। बड़े धैर्य से बीज भूमि मे डाला जाता है लेकिन उसका फल छ महीने मे आता है। उसका फल पाने के लिये छ महीने तक इन्तजार करना पड़ता है। इसी लिये अमृतचन्द्र सूरि ने कहा कि इस अनुभव को पाने के लिये आपको कम से कम छ महीने चाहिये। हम कहते हैं कि एक दिन ध्यान मे बैठ जायें। तो एकदम निर्विकल्प हो जायें ऐसा हो नहीं सकता, उसके लिये चाहिये श्रद्धा और धैर्य। लौकिक कार्य भी इन दो के बिना नही हो सकते। विश्वास पूर्वक करें और फिर उसे निरन्तर करते जायें, एक दिन भी न छोड़ें।

ध्यान के लिये धैर्य चाहिये आप रोज-रोज आसन लगाकर बैठें और कभी ऐसा भी होता है कि आप धैर्य को छोड़कर ऐसी प्रतीक्षा करते हो कि अभी नहीं आया ध्यान तो यह फल की आकांक्षा भी आपके ध्यान मे बाधक बन जाती है। जैसे कोई आदमी भूमि में बीज बोता है, अब यदि वह उसे बीच-बीच मिट्टी के अन्दर खोल खोलकर देखता रहे कि अभी बीज अंकुरित हुआ कि नही, तो फिर वह बीज कभी अंकुरित नहीं हो सकता ऐसे ही कोई सोचे कि मैंने ध्यान तो किया पर देखूं तो सही कि शान्ति मिली या नही तो बीच-बीच ऐसे विकल्प का होना यह भी ध्यान मे बाधक बनता है। ऐसे ही आप रात मे सोते हैं तो सोने से पहले आप नाना प्रकार के विचार करते है। तो जब तक आप विचार करते रहेंगे तब तक आपको नींद न आयगी। जब तक आप सोचेंगे कि नींद आ जाय तब तक नींद न आयगी और यदि चारपाई पर लेटने के पश्चात् आप ये विचार छोड़ दें तो फिर यह पता नहीं कि कब नींद आ जाय।

ध्यान भी ऐसी ही चीज है। एक बार आपने समझ लिया कि ध्यान एक विधि है आत्मा मे प्रवेश की, शान्ति की, तो आप बैठ जायें और बैठकर फिर

ाप पूछें कि अब क्या करें तो वहाँ आप कुछ न करें, सिर्फ बैठ जायें। यदि ाप वहाँ कुछ सोचने लगे तो फिर नींद की तरह से ध्यान भी न होगा। वहाँ ाप कुछ न करें।

जापान में एक आश्रम था। एक बार वहाँ का राजा उस आश्रम को खने गया तो उस आश्रम के गुरु ने सब जगह जा जाकर आश्रम के अन्दर ी सारी चीजें दिखा दिया। वह गुरु सब जगह बताता जाता था कि देखो स स्थान मे ध्यानार्थी ध्यान करते हैं, यहाँ भोजन करते हैं, यहाँ स्वाध्याय रते हैं इस प्रकार से दिखाता जाता था और उसी बीच मे राजा भी पूछता ाता था कि इस बीच के होल मे क्या होता है तो वहाँ वह गुरु मौन हो ाता था, कोई उत्तर ही नही देता था। यही बात अनेक बार राजा ने पूछा र गुरु मौन रह जाता था। बाद मे राजा ने गुरु मे पूछा कि जब मैं बीच-बीच आप से पूछता था कि इस होल मे क्या होता है तो वहाँ आप मौन क्यों ो जाते थे ? तो गुरु ने कहा जब उस होल मे कुछ हो तब तो बतायें, वहाँ यही मौन रहने का काम होता है। तो राजा की समझ मे वह बात भी आ गई कि गुरु मौन क्यो हो जाते थे तो ध्यान की बात कही जा रही कि जैसे नींद लेने के लिये साधन बताये जाते हैं ऐसे ही ध्यान के लिये भी यही साधन है कि आप विश्राम से एक स्थान पर शरीर को ढीला करके बैठ जायें, वहाँ किसी प्रकार का विचार विकल्प तरंग मन मे न लायें, सिर्फ गहरा-गहरा श्वासोच्छ्वास करें। उस श्वासोच्छवास मे आप ऐसा ध्यान करें कि मेरे अन्दर उठने वाले विचार विकल्प ये सब इस श्वास के साथ बहे जा रहे।

ध्यान की स्थिति मे तो सजगता रहती है और निद्रा की स्थिति में मूर्छित दशा रहती है। तो सजगता की स्थिति में, ध्यान की स्थिति मे ही स्वका अनुभव होता है। इस स्वके अनुभव से ही हमें शान्ति मिलती है यह शब्द रूपा गाय कही ऐसा दूध नहीं दे सकती कि जिसे पीकर हम तृप्त हो सकें। उसके लिये तो इस ध्यान की प्रक्रिया को ही अपनाना होगा। इसलिये कहा कि जितना भी जीवन का महत्त्वपूर्ण तत्व है वह ज्ञान के द्वारा नहीं आता किन्तु ध्यान के द्वारा आता है। इस ज्ञान के द्वारा जो अतीन्द्रिय तत्व है उस समझा नही जा सकता और जो ज्ञान हमने अपनी बुद्धि मे संजोया है वह केवल सूचना दे सकता है। असली विधि है ध्यान की उसमे भी प्रतीक्षा करें उसमे धैर्य और विश्वास के साथ प्रवेश हो तो कोई दिन ऐसा भी आयगा कि जिस दिन ये लेश्यायें क्षीण होंगी और स्वानुभूति की (सम्यग्दर्शन) की प्राप्ति होगी।

सम्प्रदाय-विचारों के घेरे में

विज्ञान जीवन को बाहर से पाने की विधि है, एव धर्म जीवन को भीतर से पाने की प्रक्रिया है। जो लोग धर्म को जानते नही, धर्म के विषय मे विचार करते हैं वे लोग धर्म की बातें करते हैं धर्म का प्रचार करते हैं और धर्म को सुनते हैं, इसी कारण से इस पृथ्वी पर अनेक बार धर्म के नाम पर लड़ाई हुई। जिस चीज को आपने देखा नही उस चीज के बारे मे अगर आप अपना तर्क देते हैं और यह भी नहीं कि वह तर्क आपका उस सत्य के अनुरूप हो या उस सत्य को सिद्ध हो कर सके, इस अनुरूप ही हो।

भीतर ऐसा देखा गया है कि जो बात सत्य होती है उस बात को विशेष कहने की आवश्यकता नहीं होती। आपको भी उस बात मे चाव हो और मुझे भी चाव हो, बस बात खतम। इसके आगे कोई विचार की आवश्यकता नहीं है। अगर आपने आम न खाया हो और मैंने चखा हो तो मैं आपसे आम के बारे में बात कहूँ, आपको उसके स्वाद के बारे मे दिग्दर्शन कराऊँ तो वहाँ कोई विवाद न होगा लेकिन वहाँ विवाद खडा हो जाता है जहाँ कि न आपने आम खाया हो और न मैंने। जब मैंने आमका स्वाद चखा हो और फिर मैं उसके स्वाद की बात बताऊँ तो फिर वहाँ कोई विवाद आपके सामने आ ही नही सकते। इसी प्रकार की बात सम्प्रदाय के सम्बन्ध मे है। जब किसी ने सम्प्रदाय की बात को भली-भाँति समझ लिया हो और वह कोई बात बताये तो विवाद का वहाँ कोई प्रसग नहीं, पर किसी ने समझा न हो और वह उसकी बात बनाये तो वहाँ विवाद खड़े हो जाते हैं।

ये सम्प्रदाय भी केवल विचार के हैं, सत्य के नही हैं। जब कोई कहता कि मैंने देखा है कि पुराण में ऐसा लिखा है, बाइबिल मे ऐसा लिखा है, वही उसका प्रमाण है, आप कैसे कहते कि ऐसी बात नहीं है। तो वहाँ मैं उस व्यक्ति से यह बात पूछती हूँ कि तुमने शास्त्र मे लिखा तो देखा है पर अपने

अनुभव से क्या देगा है ? हो सकता है कि वह बात किसी दूसरे सन्दर्भ मे कही गई हो

जैसे एक बार महात्मा बुद्ध की सभा लगी हुई थी और उस सभा उ
स्थान पर महात्मा बुद्ध के अतिरिक्त जो श्रोता थे वे तीन जाति के थे, ए
तो साधु थे था, एक वहा वेश्या भी आयी थी और वही पर एक चोर भ
बैठा हुआ था । तो सभा हुई, उपदेश चल रहा था, सभी ने मनोयोग से उ
उपदेश को सुना । जब रात्रि के करीब १२ बजने को हुये तो वहा महात्म
बुद्ध ने सभा विसर्जन करते हुये सकेत दिया कि जावो अपना अपना का
करो तो महात्मा बुद्ध के इस वाक्य को सुनकर भिन्न-भिन्न श्रोताओ के भिन्न
भिन्न विचार हुये । जैसा भाव होता है वैसा ही इन शब्दो से अर्थ निकाल
है । जब साधु न महात्मा बुद्ध के वे शब्द सुना तो उसने यह अर्थ लगाया कि
रात्रि का मध्यरात्र होने को आया है सो ध्यान लगाने के लिये कहा, औ
वहा जो वेश्या बैठी थी उसने यह अर्थ लगाया कि देखो तुम्हारा कोई प्रेम
आया होगा वह प्रतीक्षा करता होगा, जावो अपना काम करो, और वहा ज
चोर बैठा था उसने यह अर्थ लगाया कि चोरी करने जाने का समय आ गय
सो उनके लिये यह रहे कि जावो अपना काम करो।

अब देखिये शब्द तो एक ही थे पर अभिप्राय का पता न होने से भिन्न
भिन्न लोगो ने भिन्न-भिन्न प्रकार के अर्थ लगाये । ऐसे ही सम्प्रदाय के नाम प
भी किसी कही हुई बात के अभिप्राय का पता न होने से लोग अपने-अप
अभिप्राय के अनुसार भिन्न-भिन्न अर्थ लगाते हैं और वहा झगडे खडे ह
जाते हैं ।

जिन विषयो का हमे अनुभव होता है उस विषय मे हम कभी चर्चा नह
करते न ही उस सन्दर्भ मे विवाद की आवश्यकता एव सम्भावना होती । परन्
जिस विषय का हमे अनुभव का प्रत्यक्ष नही होता उस के विषय मे ह
अन्धेरे मे हाथ मारने वत् अनुमान के आधार पर चर्चा एव विवाद करते हैं
नाना प्रकार से विविध अटकलें लगाते है । उसी से सम्प्रदाय खडे हुये है
अनुभवी चर्चा नही करते, गैर अनुभवी चर्चा तर्क करते है । विचार मौलि
नही होता अनुभव मौलिक होता है ।

इस संदर्भ मे मैं आपको मस्तिष्क केन्द्र की बात बता रही कि आप
मस्तिष्क के जो तार ढीले हो गए हैं वे कसे होने चाहिये । धर्म शान्ति
प्रकट होता है अशान्ति से नही । जो तनावयुक्त है वह धर्म को पाने क

अधिकारी नहीं है और शान्त होने के लिये हमें जो चौबीसों घंटे अनुभव हो रहा वह शान्ति का नहीं होता बल्कि क्रोध का होता है, घृणा का होता है। क्रोध और घृणा ये हमारे हृदय में अनुभव से आते हैं। विचारों का केन्द्र है मस्तिष्क और भावों का केन्द्र है हृदय।

जब किसी का बुढ़ापा आता है तो लोग कहते कि इससे तो मेरा बचपन अच्छा था। तो बात वहाँ क्या है कि बचपन में तो महत्वपूर्ण चीज थी सरलता और फिर सारे जीवन रहा मन में तनाव। सो उस सरलता की बातों का याद करके वह कहता है कि इससे तो बचपन अच्छा था।

बड़ी उमर हो जाने पर ज्यों-ज्यों मस्तिष्क में तनाव बढ़ता जाता है त्यों-त्यों उसके भीतर गुस्सा बढ़ता जाता है। उसकी स्थिति क्या बनी रहती कि वह भीतर से तो कुछ होता और बाहर से कुछ। जरा सी भी कोई प्रतिकूल घटना मिल जाये तो वहीं उसका क्रोध उबल पड़ता है। बड़ी शक्ति उस क्रोध में खर्च हो रही है पर उसका पता नहीं पड़ता।

तो जो क्रोध हमारे भीतर आ रहा है उसे हम शान्ति और आनन्द के रूप में रूपान्तरित कर सकते हैं। पहले हमें इस क्रोध को समझना होगा अगर इस क्रोध से मुलाकात नहीं होती है तो फिर इस क्रोध को आप रूपान्तरित कैसे कर सकते? आपको मालूम होगा कि जब तक हम बिजली का आविष्कार नहीं हुआ था तब तक बादलों में चमकने वाली बिजली से लोग भय करते थे। वे सोचा करते थे कि यह चमक क्यों होती है और यह भारी गड़गड़ाहट क्यों होती है, लेकिन जब उसका विश्लेषण किया गया और उसके रहस्य को जान लिया गया तो अब उनका भय दूर हो गया और समझ लिया कि जो विनाशकारी चीज थी वही सृजन भी कर सकती है।

एक बिजली आकाश में चमकती है और एक बिजली हमारे भीतर भी चमकती है, वह बिजली है क्रोध की, घृणा की, द्वेष की और जब बहुत-बहुत क्रोध आता है तो उसे मिटाने के लिये हम किसी क्लब वगैरह में जाते हैं, वहाँ अपने उपयोग को बदल कर उस क्रोध को शान्त कर लेते हैं। इसीलिए तो पहली आवश्यकता है कि जब आपको क्रोध आये तो आप एकान्त में चले जायें। वहाँ आप सोचिये कि क्रोध है क्या चीज। अगर आप उस क्रोध को समझ सकें, जागृत हो सकें तो क्रोध विदा हो जायेगा और जो शक्ति आपकी क्रोध में खर्च हो रही थी वह अब शान्ति में खर्च होने लगेगी।

तो यह क्रोध क्यों आता है इसको समझने से पहले यह समझें कि क्रोध क्या है? उसके प्रति सजगता लायें फिर सोचें कि क्रोध क्यों होता है किन

कारणों से हमारे भीतर क्रोध होता है ? तो बताया कि क्रोध तब होता है जब कि हमारा व्यक्तित्व टूटता है अब व्यक्तित्व क्यों टूटता ? इस कारण कि कोई हमेशा एक जैसा व्यक्तित्व नहीं रहता । सुबह कुछ व्यक्तित्व रहता, दोपहर को कुछ शाम को कुछ । और कभी-कभी ऐसा होता है कि आप बैठे बैठे शान्ति का अनुभव करते और कभी क्रोध का । तो यह सब क्यों होता है ? क्यों हमारे भीतर इतनी विकटता होती है उसके दो कारण हैं—एक कारण तो यह है कि जो आदमी निराशा से भरे रहते हैं उन आदमियों को क्रोध जल्दी आता है । जो आदमी जीवन में शिकायतों से भरा रहेगा वह निराशा-वादी होगा और उसे क्रोध निश्चित रूप से आयेगा । वह बैठा रहता और उसे लगता कि यदि यह छत गिर गई तो पता नहीं मेरा क्या हाल होगा । देखिये छत गिरती नहीं है अनेक वर्षों से ज्यों की त्यों मजबूत खड़ी है फिर भी उसे लगता कि यदि यह छत गिर गई तो क्या होगा, अथवा टैंक फट गया तो पता नहीं क्या होगा ? इन टैंक वालों को भी यही परेशानी है । जो निराशा सहित भयभीत रहता है और फिर उसे गुस्सा जरूर आयेगा ।

एक नगरी में कोई एक ऐसी झोपड़ी बनी हुई थी कि जिसमें अक्सर करके दो साधु ठहरा करते थे और उसी में अपना चातुर्मास व्यतीत किया करते थे एक बार वे जब उसी झोपड़ी मे पहुँचे तो क्या देखा कि उस झोपड़ी के एक तरफ का छप्पर टूट फूटकर उड़ गया था, बिल्कुल ऊपर से खुल गया था तो उस स्थान को देखकर उनमें से एक जवान साधु सोचने लगा कि अब मैं समझ गया कि भगवान कहीं नहीं है । मैं नहीं मानता कि भगवान है । यदि भगवान होता क्यों न हमारी तरफ कुछ ध्यान करता ? आखिर हम रात दिन उसका ध्यान करते हैं तो वह भी हमारी तरफ क्यों न ध्यान करता आखिर रात को जब वे दोनो साधु वहीं ठहरे तो उस जवान साधु को सारी रात नींद नहीं आयी वह बड़ा बेचैन हुआ और सुबह उसने अपने गुरु से कहा गुरुजी मैं नहीं मानता भगवान वगवान को मुझे तो आज सारी रात इस खुले में नींद नहीं आयी । तो गुरु ने कहा—बेटा हमें आज रात को बड़ी अच्छी नींद आयी । हम तो मानते है भगवान को । हम तो रात मे यही सोचते रहे कि इस खुले आकाश मे सोने से चन्द्र की तारों की चमकती हुई छटा का आनन्द मिल रहा और सोच रहा था कि यदि बारीश होने लगती तो उसकी बूँदों की आवाज का सुरीला गायन सा सुनकर आनन्द मिलता तो यह सब सोचता

हुआ आज मैं सारी रात खुले आकाश में बड़े आराम से सोया। तो देखिये— चीज एक ही थी पर एक साधु को शान्ति मिली और एक को मन मे तनाव पैदा हो जाने से अशान्ति मिली।

हम आपको दूसरों की शिकायत करने की आदत सी बन गई है इस कारण निराशावादी बन गए हैं। हमें चाहिये कि इन शिकायत की बातों को भुलाकर अनुग्रह से भरे और आशावादी जीवन बनायें। हमें जो मिले उसके प्रति अनुग्रह का भाव करें तो हमारे अन्दर प्रेमसरिता प्रवाहित हो सकेगी। इस निराशावादी जीवन से हमारा व्यक्तित्व खण्डित होता है।

दूसरी बात यह है कि हम आपको क्रोध क्यों आता है? क्योंकि इस सम्पूर्ण सौरमण्डल के अन्दर तरगें हैं। यहाँ कोई भी स्थान ऐसा नहीं है जहाँ तरगें न हों। हमारे अन्दर भी तरगें हैं और बाहर भी इन तरगो का सागर है और उनको हम यत्रो के द्वारा ग्रहण कर सकते है। उन तरगों का कम्पन हम आपके भीतर भी होता रहता है। कान के कम्पन ३२४७० हैं। वे कम्पन वैसे तो अनेक प्रकार के होते, पर मूलत. दो प्रकार के होते हैं एक कम्पन तो होता है संक्लेश रूप और एक होता है शान्त रूप। उन कम्पनों मे हमारे शरीर के अन्दर जो उपयोग होता है उनकी प्रक्रिया ऐसी होती है कि हमारे शरीर में दो प्रकार की नाड़ियाँ हैं–एक ज्ञानवाही नाड़ियाँ और एक क्रियावादी नाड़ियाँ। ज्ञानवाही नाड़ी ऐसी होती कि जैसे पैर मे काँटा चुभा हो तो वह मस्तिष्क तक पहुँच जाता है और फिर वह मस्तिष्क निर्देश देता है कि यह काँटा निकाल दो, फिर हमारे हाथ वह काटा निकालने के लिये तैयार हो जाते हैं। तो जब तक मस्तिष्क काँटा निकालने के लिये निर्देश नहीं देता तब तक वे परिस्पंद नही बहते और जब तक परिस्पंद नहीं बहते तब तक हाथ काँटा निकालने के लिए तत्पर नही होते। इसी प्रकार हमारे अन्दर जो यह क्रोध का काँटा लग जाता है उसे भी निकालने के लिये यह मस्तिष्क निर्देश देता है। जब तक मस्तिष्क निर्देश नहीं देता तब तक परिस्पद नहीं बहते और यह ग्रन्थियों मे इस क्रोध की गाँठ सी पड़ जाती है और जैसे ही इस मस्तिष्क का निर्देश मिलता वैसे ही परिस्पद की वे सब क्रियायें पहले से उल्टी हो जाती हैं।

जैसे काटा चुभा हो तो मस्तिष्क आपको उसकी सूचना देता है तो वहाँ कहीं इतना पर नहीं है कि आप दुखी हो गए बल्कि आपकी क्रिया वहाँ

ऐसी होती कि कांटा ही तो चुभा है कहीं सुई तो नहीं चुभी, कभी कोई बार नहीं ऐसा विचार करते ही क्या होता कि आपके भीतर क्रोध न आयगा। हाथ पाँव कांटा चुभ गया, खून निकल आया, ऐसा निर्देश अगर आप दे रहे हैं तो आपके भीतर भय, क्रोध, निराशा आदि पैदा होंगे और अगर आप निर्देश दे रहे हैं कि कांटा ही तो चुभा है तो आप सोचेंगे कि क्या है, ऐसे कांटे तो रोज रोज चुभते ही रहते हैं, तब आपके भीतर क्रोध न आयगा। इससे क्या होगा कि आपके स्नायुओं की शक्ति सबल हो जायगी क्योंकि ज्यों-ज्यों उनके दर्द को सहन करने की क्षमता आप में बढ़ती जायगी त्यों-त्यों आप उसे मुस्कराते से सहते जायेंगे और जितना जितना आपका नाड़ी संस्थान शक्तिशाली होगा, जितना-जितना आपके ऊपर आशावाद का प्रभाव पड़ता जायगा उतना उतना आपका क्रोध कम होता जायगा और जितना जितना आपके जीवन में निराशा कम होगी उतने उतने अंश में आप हृदय के अन्दर प्रेम के भावों से भरे रहेंगे।

तो इसकी विधि मैंने आपको बतायी कि आप निर्देश निराशावादी विचारों को अपने हृदय में स्थान न दें अनुग्रह के भाव दें जिससे कि हमारा नाड़ी संस्थान शक्तिशाली हो और हमारे हृदय में प्रेममयी भावनायें पैदा हों। यह प्रेम इस मनुष्य को मनुष्य से जोड़ता है इतना ही नहीं बल्कि जीवमात्र से जोड़ता है। जब हृदय में प्रेम होता है तो वहाँ फिर लड़ाई का अवकाश नहीं होता। वह जीवन का आनन्द लेता है। जो प्रेम से भरा हुआ है वह भलाइयों का सृजन करता है और जो द्वेष से घृणा से भरा होता है वह बुराइयों का सृजन करता है।

एक घटना है कि एक आदमी ने अपनी जिन्दगी भर अपने गाँव की सेवा की थी। सभी लोग उसका बड़ा सत्कार करते रहे। आखिर वृद्धावस्था में वह एक संत की तरह गाँव से बाहर एक कुटिया में रहने लगा। एक दिन की बात कि उस कुटिया में कोई अतिथि आया और उसने वहाँ अरे बुड्ढे बताना कि यह गाँव कैसा है तो वह वृद्ध पुरुष बोला यह गाँव तो अच्छा है, बड़े अच्छे ईंट पत्थरों का बना है। तो फिर वह अतिथि बोला मैं ईंट पत्थरों की बात नहीं पूछता-मैं पूछता हूँ कि यहाँ के लोग कैसे हैं? क्योंकि मैं इसमें बसना चाहता हूँ। तो वह वृद्ध पुरुष बोला-भाई यहाँ के लोग तो बहुत खराब हैं, कहीं भूलकर भी नहीं चले जाना यहाँ तो ईंट पत्थरों से मार मार कर

भगा देंगे और देख लो मुझे भी ईंट पत्थरों से मार मार कर भगा दिया है तभी इस गाँव से बाहर पड़े हैं, आखिर वह अतिथि वापिस चला गया। थोड़ी ही देर में दूसरा मुसाफिर आया तो उसने भी पूछा कि बाबा जी यह गाँव कैसा है तो उस वृद्ध पुरुष ने उत्तर दिया, बेटा इस गाँव के लोग बहुत अच्छे हैं, यहाँ के सभी लोग सबका बड़ा सत्कार करते हैं, यदि आप इस गाँव में पहुँच जायेंगे तो वहाँ के लोग आपको हाथों हाथ लेंगे।

जब इस प्रकार की बातें कोई एक युवक सुन रहा था तो वह सोचने लगा कि मामला क्या है कि अभी-अभी तो एक आदमी से गाँव के लोगों की बुराई बता रहे थे और अब अच्छाइयाँ बता रहे हैं, बड़े आश्चर्य में पड़ा। आखिर पूछ ही बैठा कि बाबाजी यह क्या बात है कि आपने एक आदमी से तो सारे गाँव को बड़ा बुरा कहा और एक आदमी से बड़ा भला कहा? तो वहाँ उस वृद्ध पुरुष ने बताया कि देखो पहले जो आदमी आया था वह स्वयं खराब था, उससे यदि मैं बता देता कि गाँव अच्छा है और वह यहाँ बस जाता तो सारे गाँव में खराब वातावरण पैदा करके गाँव को खराब कर सकता था इसलिए हमने उससे गाँव को बड़ा बुरा बताया था और जिससे गाँव को बड़ा अच्छा बताया था वह व्यक्ति स्वयं अच्छा था, भला था वह यदि इस गाँव में बस जाता तो गाँव में एक अच्छा वातावरण पैदा करके सारे गाँव को अच्छा बना सकता था।

तो अच्छा आदमी संसार को अच्छा बनाता है। जैसा आपका मन होता है वैसा ही आपको सर्वत्र दिखाई पड़ता है। अगर आपके मन में क्रोध है तो आपको दुनिया क्रोधी दिखेगी और अगर आप शान्त हैं तो आपको दुनिया शान्त दिखेगी।

इसलिये मैं आपको आज दो सूत्र दे रही। हमारे हृदय के तार ढीले हो चुके हैं उनको कसना है, मस्तिष्क के तार कसे हैं उनको ढीला करना है। तो हृदय के तार ढीले करने की बात बता रहे हैं। पहली बात यह है कि हम जीवन की शिकायतों से भरे हुए न हों, जो कुछ मिला है उसके प्रति अनुग्रही हों। और दूसरी बात यह है कि कोई कष्ट की स्थितियाँ आ जायें तो उन स्थितियों में जो हमें ज्ञान वाही नाड़ी मस्तिष्क में इसकी सूचना देती है, वहाँ स्वयं निर्देश देने जैसी सूचना आयी है तो उसके अनुरूप संदेश न दें, उससे उल्टा संदेश दें।

अगिर क्रोधी हो जायगा, वह आदमी पागल हो जायगा जिसमे वि
जीवन का रस सूख जायगा और अगर किसी आदमी ने सयम नहीं कि
वह ध्यान करने लगे तो ध्यान असम्भव है।

सयम के बिना ध्यान नहीं हो सकता क्योंकि जब तक आपक
मस्तिष्क के ऊपर नियन्त्रण नहीं है तब तक आप बताओ कैसे आप
हो सकता है ? तो पहले आपको बाहर मे संयमित करना होगा उसके
आपको ध्यान हो सकेगा, ये दोनो बातें भी बनाने में आगे पीछे है लेकि
मे एक साथ होती हैं। जैसे दवाई जब तैयार की जाती है तो कहा ज
अमुक अमुक चीजें लाकर दवाई तैयार करो तो उन सब चीजो को मि
घोल दो तब दवाई तैयार होगी इसी प्रकार जीवन में भी अमृत तैया
के लिये हमे दोनो विधियां एक साथ अपनानी होंगी।

उनमे मैं आपको बता रही—पहला सूत्र तो यह है कि सयम करे
दूसरा सूत्र यह है कि ध्यान करें। ध्यान के लिये हमको पहले शरी
क्रियाओ को देखना होगा ताकि हम निर्देश को बदल सकें। अगर नहीं
सकते, अगर हमने शरीर को नहीं देखा है तो निर्देश को बदल नहीं स
अगर स्वामित्व की भावना जागृत न हो तो आप नाडियों को प्रक्रिय
बदल सकते और अगर नाडियो की प्रक्रिया नहीं बदल सके तो फिर मस्ति
के रसायन भी न बदलेंगे और रसायन न बदलेंगे तो फिर भाव न ब
और भाव न बदलेंगे तो भीतर मे जो कषाओं का बल है उसमें परिवर्त
आयगा और जब तक उसमे परिवर्तन न आयगा तब तक चेतना इस घे
मुक्त नहीं हो सकती।

तो उसे मुक्त करने के लिये पहली चीज चाहिये कषाओ की हीनत
ताकि हमारे हृदय की किरणें बाहर स्वच्छ रूप मे आ सकें। तो ऐसी कषा
मे हीनता कभी कभी होती है।

जिन लोगो को भोगों की तीव्र कामना होती है वे कहते हैं कि मैं तो र
मे पिक्चर देखने जाता हूं और वहां से आकर सो जाता हूं तो सुबह देर से
कर उठता हूं इसलिये सुबह प्रवचन में नहीं आ पाता हूं, पर जिनके मन
थोड़ा आत्म कल्याण की भावना हुई है वे लोग बड़ी उत्सुकता के साथ प्रवच
सुनने आते हैं इस भावना को हमारे यहां कहा है विशुद्धलब्धि। इस विशु
लब्धि होने के बाद आपका पुरुषार्थ चलेगा।

जब शरीर की कोई वेदनायें मस्तिष्क तक पहुंचती तो उनको देखते ही आपके मन मे कुछ विचार आते हैं और उन विचारों का आप अनुभवन नही करते तो आपने भले ही क्रोध छोड दिया हो, नियम ले लिया हो फिर भी आपको क्रोध आ जायगा। क्रोध आपके साथ साथ आपके नियम के बावजूद भी प्रकट हो जायगा।

तो पहले स्पंदनों का अनुभव करना होगा। शरीर मे सूचना जो आयी है वह साक्षी होकर देखना कि यह स्पदन आया है लेकिन इसको हम आज्ञा नहीं देते। एक ही बात होनी है। एक ही बात के देखने के ऐंगिल होते हैं। आप किसी भी ढंग से देख सकते। कोई एक बच्चा सीढी पर चढ रहा था तो उसके किसी पडौसी महिला ने कहा—अरे बच्चे सीढी पर मत चढ नहीं तो गिरकर सिर फट जायेगा। अब उसकी यह बात सुन लिया उस बच्चे की माँ ने और दादी ने। लेकिन इन दोनो की प्रतिक्रिया अलग-अलग हुई। बात तो एक थी और एक ही बच्चे के सन्दर्भ मे कहा जा रहा था पर प्रतिक्रिया अलग अलग हुई। वहा दादी ने यह समझा था कि वह पडोसिन इस बच्चे को गाली बक रही है कि तू सीढी से गिर जा और तेरा सिर फट जाय सो वह दादी उस पड़ोसिन पर बिगडने लगी कि तू इस बच्चे को गाली क्यो बकती ? और उधर उस बच्चे की माँ बोली—अरे तुम उस पड़ोसिन को क्यों डाटती हो ? उसने ठीक ही तो किया। इस बच्चे को सीढी पर चढने से मना ही तो कर रही।

तो देख लीजिये एक ही बात पर दादी को तो क्रोध आया पर मा को क्रोध नही आया। अब क्या कारण है कि एक ही बात पर किसी को तो क्रोध आता है और किसी को नही ? इस कारण को खोजिये। तो कारण यह है कि आदमी के अन्दर कल्पनायें होती हैं। जो सजग होता है उसको तो क्रोध नहीं आता और जो सजग नहीं होता उसे क्रोध आ जाता है।

तो मैं कहना चाहती हू कि हम इस शरीर का निरीक्षण करें। शरीर के साक्षी बनें, फिर मन और इन स्थूल स्नायियो के साक्षी बनें, उसके बाद हम स्पंदनों को निर्देश दें। एक सोचने का ढग होता है निषेधात्मक और एक होता है विधात्मक। हम अगर कहें कि किसी जीव को न सताना तो हो सकता कि कोई सताया जाता हो तो उस सताने वाले को भी वह गाली न दे बाहर से,

पर भीतर मे दे। और हो सकता कि वह अन्दर से पानी देने पर भी आनन्दित न हो सके।

मैं कहू कि भाई जीवो की रक्षा करो। जहा रक्षा का भाव होगा वहाँ हिंसा न आयगी। इसलिये मैं कहती कि चाहे आप सत्य की साधना न करो, पर प्रेम की साधना करो। कोई प्रेम से भरा हुआ आदमी हो तो उसे सब ससार मे प्रेम ही दिखाई देता है और जो क्रोधी हो उसे क्रोधी ही दिखाई देता है। प्रेम जीवो की हिंसा न करायगा बल्कि जो दुःखी होगा उसकी रक्षा करेगा इसलिए आपका हृदय अमृतमय सरोवर रहेगा। आनन्द हृदय के अन्दर की बात है। हृदय मे आनन्द कैसे आये उसकी विधि बता रहे कि हम अपने मस्तिष्क का जो नियन्त्रण कक्ष है वहाँ से प्रेम की भावनायें प्रसारित करें। सोचने का ढग बदल दें। हर चीज को आप प्रेम के ऐंगिल से देखें तो आपके भाव बदल जायेंगे।

अभी तो घृणा के द्वेष के भाव बनाने की आदत पड़ी है। इस आदत से नाड़ियो मे भी यही आदत पड़ जायगी और जब ऐसी नाड़ी संस्थान की आदत पड़ जाती है तो भीतर मे जो कषाय का स्टोर पड़ा हुआ है उसको भी खाली किया जाता है।

तो पहले आदत बदले नाड़ियो की, फिर नाड़ियो पर अपना अधिकार हो जाने पर सूक्ष्म शरीर पर भी अधिकार हो जाता है और चेतना पर भी अधिकार होता है तो वह पर से मुक्त हो जाता है। स्थूल भाषा मे कहा जाय तो यह कहा जायगा कि हमारे अन्दर सब जीवो के प्रति प्रेम हो, जड़ वस्तु के प्रति प्रेम हो। प्रेम के अन्दर एक क्षण के अन्दर १६०० रक्त के कण बढ जाते हैं और जब गुस्सा मे हो तो १५०० रक्त के कण घट जाते हैं। एक क्षण के अन्दर आप देखिये कि इस शरीर मे क्या से क्या होता है।

आज के जमाने मे तो सबका एक दूसरे से प्रेम ही टूट गया सभी तो एक कमरे मे घर के दो चार प्राणी भी नही रह सकते। सबके लिए अलग-अलग कमरे चाहिये। अब भला बताओ जहाँ ऐसी बात है कि कोई अपने कमरे मे अपने घरवालो को भी नही ठहराना चाहता तो फिर अतिथियों को कौन ठहरने देगा? तो आज आदमी आदमी का प्रेम टूट गया। सो जहाँ आपस मे प्रेम नही रहा उससे बड़ा अधर्म और क्या हो सकता है?

मन्दिर की उपासना धर्म नहीं है, वहाँ उपासना से हम प्रेम का पाठ सीखते हैं और उसका प्रयोग करना है घर में दूकान में या आफिस वगैरह मे। मंदिर तो पाठशाला है वह पाठ सीखने की जगह है पर उसका प्रयोग बाहर मे सर्वत्र करना है। आपकी ये जो डिग्रियाँ कालेजों मे दी जाती हैं तो उन डिग्रियो से भी लाभ तब समझिये जबकि उनका उपयोग करके बाहर मे कुछ धनार्जन करें इसी प्रकार मंदिर मे उपासना करके जो प्रेम का पाठ सीखा उससे फायदा तब है जबकि उसका उपयोग बाहर मे करें। सबके साथ प्रेम का व्यवहार करें।

हर आदमी मे कुछ न कुछ गुण होते है ऐसा कोई नही होता जिसने मानो दोष ही दोष हो इसलिये हमारी आदत गुणग्रहण करने की होनी चाहिये। जब हम किसी के गुण देखेंगे तो उसको ऊँचा उठाने मे सहयोगी होगे और जब दोष देखेंगे तो उसका पतन कराने मे कारण होंगे।

हम किसी को अच्छा भी बना सकते और बुरा भी। हम किसी को प्रेम से देखेंगे तो आनन्दित होगे और द्वेष मे देखेंगे तो हमारे अन्दर तनाव होगा। हमारे द्वारा किसी का भला होता है तो हमारे प्रेम के भाव से और बुरा होता है तो हमारे घृणा के द्वेष के भाव से।

तो मैं उसके सदुपयोग की बात बता रही। आपके अन्दर प्रेम कैसे आयगा? जबकि आप सब में गुण देखें, दोष न देखें। प्रेम की बात तो होनी चाहिये लेकिन जब तक आप दूसरो के दोष देखते रहेगे तब तक आप मे प्रेम नहीं आ सकता। हर आदमी मे गुण भी होते हैं और दोष भी। यहाँ कोई आदमी ऐसा नही होता जिसमें सारे गुण ही गुण होते हो। दोष और गुण ये दोनो साथ-साथ होते हैं, अब आप किस चीज को बटोरते हो यह आपकी योग्यता पर निर्भर है। अगर आप किसी के गुण बटोरते हो तो आप गुणग्रहण करते हो और अगर आप गुण ग्रहण करते हो तो समझो कि उसके साथ आप उस आदमी के गुणो को बढ़ावा देते हैं।

जैसे किसी बच्चे को आप स्टेज पर बोलने के लिये कहे, अब उसने कभी स्टेज पर बोला न हो तो वह तो स्टेज पर आते आते ही काँप जायगा। वह कुछ ढंग से बोल न सकेगा फिर भी आप उसके हौंसला बढ़ाने के लिये शाबाशी देते हैं, उसकी पीठ ठोंकते हैं, कहते हैं, बहुत अच्छा, तो इससे क्या होता कि उस बच्चे का बोलने के लिये हौंसला बढता हैं और धीरे-धीरे वह आगे चलकर बोलने की कला मे निपुण हो जाता है और उसी बच्चे को अगर आप यह

कह देते कि अरे क्या बकता, तू बोलना नहीं जानता, चल हट ''' तो आपकी इस बात का असर उसके ऊपर इतना पड़ता कि वह फिर उत्साहहीन हो जाता, वह बोलने की कला सीखने से वंचित रह जाता।

आप यह भी तो देखते हैं कि जब कोई बच्चा कहीं खेलने हुए गिर जाता है, उसके पैरों में चोट आ जाती है, वह रोने भी लगता है तो उस समय आप कहते हैं—अरे उठो बेटे, तुम तो बड़े बहादुर हो'''' तो बहादुर शब्द सुनकर वह बच्चा झट उठकर खड़ा हो जाता है और उसका रोना बन्द हो जाता है।

तो कहा कि हमें दूसरों के गुण देखना चाहिये, दोषों पर हमारी दृष्टि नहीं होनी चाहिये। दूसरों के गुण देखने से खुद में भी गुणों का विकास होता है और दूसरों में भी गुणों का विकास होता है।

हम किसी के गुण देखकर उसको अच्छा भी बना सकते और दोष देखकर उसे बुरा भी बना सकते। हम एक दूसरे से जुड़े हुए हैं इसलिये हम जो सोचते हैं उसका प्रभाव दूसरों पर भी जाता है और दूसरे लोग जैसे हैं उनका प्रभाव हम में भी आता है। तभी तो अगर आप स्वयं शान्त होते तो घर पहुंचने पर आपको सब शान्त दिखते और जब आप स्वयं क्रोध से भरे हुए घर जाते हैं तो आपको भी घर के सब लोग वैसे ही दिखते हैं अथवा जब आप शान्त होते हैं तो घर में कदाचित क्रोध का वातावरण बन जाए फिर भी शान्त हो जाता है और अगर आप क्रोध में होते हैं तो घर में शान्त वातावरण में भी अशान्ति पैदा हो जाती है। तो कहा कि हम जब किसी के गुण देखेंगे तो वहाँ सबमें प्रेम पैदा होगा और अगर हम दोष देखेंगे तो सब में घृणा द्वेष के भाव पैदा होंगे।

एक बार किसी साधु की कुटी में एक चोर आया, साधु उस समय कुछ लिख रहा था। करीब आधी रात का समय था। तो उस चोर को देखकर साधु ने कहा—आइये मित्र बैठिये—सो जब वह चोर बैठ गया तो साधु ने कहा—मित्र आराम से बैठिये—मैं अभी तो यह पत्र लिख रहा हूँ। इसको लिखकर बाद में आपसे बात करूँगा। और वह चोर बैठा रहा। पत्र लिख चुकने के बाद साधु ने पूछा—कहो मित्र तुम्हारा आना कैसे हुआ? तो वह उस समय झूठ न बोल सका और सीधे यों ही कह दिया कि मैं तो चोरी करने आया था। तो फिर वह साधु बोला—अरे यहाँ तो मैं एक फकीर जैसा हूँ। मेरे पास तो इस समय तो कुछ भी नहीं है। यदि तुम्हारे आने का हमें पहले से ही पता होता तो कहीं से कुछ सामान लाकर रख देता। और कुछ बात नहीं,

अभी मेरे पास एक व्यक्ति द्वारा मिले हुए १०) रहे हैं सो मैं तुम्हें दिये देता हूँ। यह कहकर साधु ने उसे १०) दे दिया। उसके बाद फिर साधु बोला—अब तो मेरे पास जो कुछ थे वे तुम्हें दे दिया पर मैं तुमसे १) उधार माँगता हूँ इसलिये कि शायद कल के दिन अचानक ही कोई जरूरत पड़ जाय। सो चोर ने साधु को १) वापिस कर दिया और झट वहाँ से भग लिया।

अब भग तो लिया पर कुछ दूर जाकर उसने सोचा कि अरे मगने का क्या काम? हम को तो ये रुपये साधु ने अपने आप दिया। फिर भी वह आदत वश कुछ न कुछ भागता ही गया।

एक दिन वही चोर किसी चोरी के आरोप में पकड़ा गया और उसके मुकदमे की पेशी पड़ी। वहाँ किसी गवाह की जरूरत थी। उस केश में कोई ऐसा सूत्र न था जिसके आधार पर उस चोर को दण्ड दिया जा सके बस उसका सूत्र एक गवाह ही हो सकता था।

तो उस पेशी में वह साधु भी गवाही के लिये बुलाया गया था। वहाँ जज ने उस साधु से पूछा—कहिये महाराज आप इस व्यक्ति के विषय में क्या जानते हैं? तो वहाँ साधु बोला—यह तो मेरे एक मित्र है जो कि एक रात मेरे पास आए थे और इनसे मैंने १) उधार माँगा था वह रुपया भी अभी मुझे देना बाकी है। आखिर जज ने उस चोर को साफ-साफ बरी कर दिया।

इस घटना से उस चोर के ऊपर एक बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा। उसी दिन से उसके चोरी करने के परिणाम पलट गए और झट एक दिन उसी साधु की कुटियाँ में जाकर बोला—महाराज—एक आप ही मुझे ऐसे मिले जिसने दुनिया में मुझे अपना मित्र कहा और मैं पहली बार तो आया था आने के लिये और अब इस बार मैं आया हूँ न आने के लिये। और आपका वह मित्र शब्द मेरे कानों के सामने हमेशा गूँजता रहता है। तो देखिये यह मित्र शब्द कितने महत्व का है कि किसी शत्रु के परिणामों को भी बदल सकता है।

इसलिये कहा कि आप जब भी देखें तो दूसरों के गुण देखें, किसी के दोष देखने की अपनी आदत न बनायें। एक अनोखी बात और भी है कि जब हम किसी के दोष बखानते हैं तो वहाँ एक अंगुली तो दूसरे की ओर संकेत करती है और तीन अंगुलियाँ अपनी ओर संकेत करती हैं तो मानो वे अंगुलियाँ यह संदेश देती हैं कि अरे तू क्या किसी का दोष देखता है। तेरे से तीन गुने दोष तो तेरे अन्दर भरे हैं।

मैंने आपको जीवन के तीन केन्द्र बताये थे—नाभिकेन्द्र, हृदयकेन्द्र और मस्तिष्क केन्द्र। इनमें हमारे नाभिकेन्द्र और हृदयकेन्द्र विकसित नहीं हैं। मस्तिष्क केन्द्र पर अधिक बल दिया गया है। अब हम नाभिकेन्द्र और हृदय-केन्द्र को विकसित करने का पूरा ध्यान रखें ताकि हमें जीवन में आनन्द की प्राप्ति हो सके।

हम आज को सुन्दर बना लें और यही कदम हमारे पूरे जीवन को भी आनन्दपूर्ण बनायगा क्योंकि हमारा वर्तमान के एक क्षण का परिणाम अगले परिणाम का कारण बनता है और जिसके वर्तमान का परिणाम आनन्द का कारण होगा उसका अगिला परिणाम भी उसके अनुरूप होगा और जैसा परिणाम दूसरे क्षण का होगा वैसा ही तीसरे क्षण का होगा। जो तीसरा क्षण बीत गया वह भी हमारे आत्मा का नहीं। इसलिए इस आत्मा का दूसरा नाम समय है समय का अर्थ है कि आप एक क्षण में हैं दूसरे क्षण तो है ही नहीं। जो क्षण आयगा वह अभी आया नहीं है और जो क्षण है वही आपके पास है। एक क्षण में आत्मा है और दूसरे क्षण में आत्मा नहीं है, इसलिए इस आत्मा का नाम है समय। आप एक समय के पुरुषार्थ को भर दें ताकि आपका पूरा जीवन आनन्द से भर जायगा। अगर एक एक कदम उठाया तो पूरे जीवन की लम्बी यात्रा आनन्दमय ही हो सकती। और अगर एक जीवन को रोकर उठाया तो जीवन की पूरी यात्रा रुदनपूर्ण हो सकती है।

तो प्रेम भी एक ज्योति है, एक महक है। जैसे फूल खिलता है तो उसकी महक सर्वत्र फैलती है ऐसे ही प्रेम की सुगंध भी सर्वत्र फैलती है और सबको आनन्दित करती है। जहाँ प्रेम होता है वहाँ क्रोध नहीं रहता। जहाँ मृदुलता आ जाती है तो वहाँ प्रेम होता ही है। इसलिये हृदय के तार व्यवस्थित करने के लिये जहाँ हमें जागरूक होने की आवश्यकता है वहाँ हमारी दृष्टि गुणग्रहण की होनी चाहिये।

नाम की महिमा

लोक में हम जो भी कार्य करते हैं उसके पीछे हमारा लक्ष्य होता है कि हम यह कार्य क्यों करें ? इसी प्रकार से धर्म का मूल में क्या उद्देश्य है, क्यों करें ? यह प्रश्न पैदा हो जाता है। धर्म का उद्देश्य है आनन्द का पाना। जो हमारी असीम शक्ति है उसे जागृत करना।

मछली भी अगर असीम सागर से बाहर निकाल ली जाए तो वह देखो कैसा छटपटाती है कि मैं कैसे पहुँच जाऊँ उस जल में, इसी प्रकार हम सबकी चेतना भी असीम है, अनन्त शक्तिशाली है, पर उसका पता न होने से वह निरन्तर आनन्दित होने के लिये बेचैन रहता है।

एक बार की बात थी कि एक धनिक पुत्र पितृविहीन हो गया और उस बेटे के बारे में उसका पिता जानता था कि मेरा यह बेटा कमाने वाला नहीं है किन्तु खोने वाला है, यह निश्चित ही एक दिन दरिद्र हो जायगा। इसलिये उसने अपनी सम्पत्ति का बहुत भाग हीरे जवाहरात के रूप में मकान के किसी कोने में छिपा दिया था और उसकी सूचना उस बेटे को न दी थी।

मरने से पहले पिता सूचना दे गया था अपने एक मित्र को उस धन की। समय बीतता गया। धीरे धीरे एक दो वर्ष व्यतीत हो गए, इसी बीच जितनी सम्पत्ति उस बेटे के हाथ में थी वह सब उसने खाने पीने व मित्रादिक के पीछे गवा दी और वह दरिद्र हो गया।

एक दिन उसके पिता के मित्र ने कहा—बेटा तुम भूखों मर रहे हो लेकिन तुम तो हजारों आदमियों को खिलाकर खाने वाले हो, ऐसी तुम्हारी हस्ती है। तो वह लड़का बोला – अरे चाचाजी, तुम क्यों मेरी दिल्लगी करते हो, मेरे पास खाने पहिनने तक को भी नसीब नहीं फिर भी तुम इस तरह कहते। तो फिर वह चाचा बोला—अरे बेटा मैं ठीक कहता हूँ, तेरे पास तो करोड़ों का खजाना है, तू कैसे कहता कि मैं दरिद्र हूँ ? तुझे उस खजाने का पता न होने से तेरी यह हालत बन रही है। तो लड़के ने पूछा—कहाँ है वह खजाना ? तो चाचा ने बताया कि तेरे घर के आँगन का जो पूर्व दिशा वाला कोना है उसे तू खोद डाल, फिर तुझे वह खजाना मिल जायगा। तो इस प्रकार के प्रेम भरे

शब्दों को सुनकर वह लड़का चाचा की बात टाल न सका और उसे घर का कोना खोदना पड़ा।

तो उसे घर खोदने के लिये सबसे पहले तो चाचा की बात का विश्वास चाहिये, फिर उसे धैर्य भी चाहिये, क्योंकि उसके खोदने मे खतरा भी हो सकता। सो उसने विश्वास और धैर्य पूर्वक खोदना शुरू कर दिया। खोदते खोदते एक जगह उसका फावड़ा रुक गया एक बड़ी आवाज के साथ, उस आवाज को सुनते ही उस लड़के का चाचा के प्रति अनुग्रह का भाव भर गया और उसे खोदकर उसने रत्नों का खजाना प्राप्त कर लिया।

अब मैं आपसे पूछूँ कि वह लड़का एक बड़ी विभूति का स्वामी था कि नहीं ? ·· था, लेकिन उसको पता न होने से वह दरिद्रता का अनुभव कर रहा था। अब उसका ज्ञान हो जाने पर से भी काम नहीं चल सकता, उसे तो खोदने से ही काम बनेगा। तो जैसे खुद के ही घर में बड़ा भारी खजाना भरा था पर जब तक उसका ज्ञान नहीं था तब तक वह कैद मे था, बद था, इसी प्रकार से हम आपके शरीर के अन्दर भी अनन्त खजाना भरा पड़ा है, कैद मे है, बंद है, उसे प्राप्त करने के लिये उस शरीर के कैद से छूटने की विधि बताई जाती है आचार्यों, शास्त्रों के माध्यम से। अगर उनकी बात सुन लें कि तू महान है परमात्मा सदृश है, शक्तिशाली है, लेकिन तू दरिद्र हो गया है तो इतनी बात की जानकारी हो जाने पर भी यदि उस खजाने को खोदें नहीं तब तो दरिद्र रहेंगे ही।

तो ज्ञान सिर्फ इतना ही काम करता है कि जो हमारे रास्तों की सूचना देता है लेकिन ध्यान वह काम करता है कि आप का खजाना खोद निकालें। ज्ञान सूचना देने के लिये है और ध्यान खोदने के लिये है। इस विधि को काम मे लें तो खजाना निकल पड़ेगा।

हम मे तीन प्रकार के शरीर हैं, एक यह दिखने वाला स्थूल शरीर और दूसरा इससे सूक्ष्म है तैजस शरीर। और तीसरा शरीर है कार्माण शरीर जो कि उस तैजस शरीर से भी सूक्ष्म है।

इन तीनों प्रकार के शरीरों के पार हमारी चेतना होती है। जो स्थूल शरीर है वह आंखों दिखाई देता है लेकिन तैजस शरीर उसमें छिपे हुए है, विद्युत जैसा है। उसमें तेज होता है। वह हमको आंखों दिखाई न देगा, उसके लिये मानस चक्षु चाहिये, और उसके बाद जो हमारा कार्माण शरीर है वह भी

उसकी अपेक्षा और भी सूक्ष्म स्पदनों का बनता है। वह जब तेजी से घूमता है तो उसमे ऊर्जा पैदा हो जाती है।

तो ऊर्जा तैजस शरीर है और जो गति स्पदन है वह कार्माण शरीर है और उनकी सघनता यह स्थूल शरीर है। इन तीनो प्रकार के शरीरों के पार चेतना होती है। तो जो कुछ भी हमारे साधन हैं वे अगर इस स्थूल शरीर पर ही रहते हैं तो फिर चेतना की अनुभूति हम को नहीं हो सकती। हमारी साधना, हमारा जागरण इन तीनों शरीरो के पार पहुंचना चाहिये तब ही हमे आत्मा की अनुभूति हो सकेगी।

इसलिये हमने आपको पहला चरण बताया था कि आप स्थूल शरीर को देखें। आत्मा को आत्मा के द्वारा देखना है। बाहर के कंकड पत्थर हाथ से फेंके जाते हैं लेकिन भीतर के कंकड पत्थर विचार से मन से फेंके जाते हैं, ज्ञान से दूर किये जाते हैं। तो उस कंकड पत्थर को निकालने के लिये जागना काफी है। और जागने के लिये पहले हम शरीर पर जागें, शरीर के बाद हम श्वास पर जागें। आत्मा को आत्मा के द्वारा देखना यह आत्मा तक पहुंचने का उपाय है और अगर इसी आत्मा के द्वारा नही देखते तो हम आत्मा तक नही पहुंच सकते।

जब आत्मा से बाहर आते हैं तो सूक्ष्म कार्माण शरीर, तैजस शरीर और स्थूल शरीर मे भी अगर हम भेद करें तो सबसे पहले हमारा मन आता है, उसके बाद यह स्थूल शरीर आता है। और जब हमे बाहर से भीतर की तरफ जाना होगा तो सबसे पहले यह स्थूल शरीर आयगा।

तो उसमें यात्रा कैसे होगी? बाहर मे सबसे पहले यह स्थूल शरीर आयेगा, उसके बाद मन, इस क्रम से आप भीतर पहुंचेंगे।

जब आप अन्दर से बाहर की ओर को अपनी यात्रा शुरू करें तो सबसे पहले चेतना आयगी, फिर सूक्ष्म कार्माण शरीर, फिर तैजस शरीर इस प्रकार से यात्रा होगी और जब बाहर से अन्दर की ओर यात्रा करेंगे तो सबसे पहले यह स्थूल शरीर आयगा फिर मन, सूक्ष्म कार्माण शरीरादिक।

इसलिये हम इस आत्मा के द्वारा शरीर को देखें और फिर इस अपने मन का, विचार का निरीक्षण करें और उनके साथ हम चेतना के केन्द्रो को देखें, अपनी ग्रन्थियों को एक-एक को परखें क्योंकि एक-एक ग्रन्थि मे चेतना समायी हुई है और जब इनको देखेंगे तो फिर जो मन के स्पदन हैं उनको

से जो हमारे भीतर पुद्गल परमाणु आते है, आत्म प्रदेशों मे जो सूक्ष्म स्थूल शरीर का निर्माण करते है वे उसी के अनुरूप अशुद्ध परमाणु होते है या शुद्ध परमाणु होते हैं तो उसी से हमारे सूक्ष्म शरीर का निर्माण होता है। वे परमाणु माया के होते है, मन के होते हैं और शरीर के होते हैं। और इन्द्रिय के परमाणु विभिन्न प्रकार के होते हैं।

असंख्याते प्रकार के परमाणु कहे गए हैं। तो हमारे कठ मे जैसे परमाणु लगे होते हैं वैसी ही हमारी सुरीली या बेसुरीली आवाज निकलती है। इसी लिए तो आपने देखा होगा कि कोई आदमी ऐसा होता है कि यह किसी को गाली दे तो भी ऐसा लगता है कि मानो यह उससे प्यार करता हो, एक कठ की ही तो बात है और एक आदमी ऐसा होता कि चाहे वह किसी को भली बात कहता लेकिन उसका कंठ सुरीला न होने से ऐसा लगता है कि जैसे मानो लाठी मार रहा हो।

तो आज मैं यह बताना चाहती हूं कि तप के द्वारा हमारे भीतर हमारे सूक्ष्म शरीर मे जो शुद्ध परमाणु है वे गलकर झड जाते हैं तो सूक्ष्म परमाणु आते हैं। तब जो हमारे भीतर अशुद्ध परमाणु है और अशुद्ध परमाणु से जो सूक्ष्म परमाणु बनाये गये हैं वे हमारे भीतर जो ग्रन्थियाँ बनायेंगे वे शुद्ध बनायेंगे और उनमे वैसा ही रसायन बनेगा और जैसा रसायन बनेगा उसी के अनुसार हमारे भाव बनेंगे। इसलिये कहा कि लाखो कोशिश करें फिर भी हमारे अशुभ भाव दूर न होंगे। अशुभ भाव दूर करने के लिये हमे अपने अन्दर रासायनिक परिवर्तन करना होगा। उसके लिये ग्रन्थियो मे अन्तर आना चाहिये और उसके लिये सूक्ष्म शरीर मे अन्तर आना चाहिये और सूक्ष्म शरीर मे अन्तर आने के लिये मैं बता रही हू मन्त्र की बात।

सूक्ष्म शरीर मे परिवर्तन आता है ध्यान से और मन्त्र से। मन्त्र क्या चीज है ? आज मैं आपको यह बताऊँगी कि ये मन्त्र किससे बने हैं ? ११ स्वर और ३३ व्यंजन होते हैं, इनके संयोग से ये मन्त्र बने हैं। कोई पूछे कि ऊँ ह्रीं आदिक मन्त्रो का अर्थ क्या होता है तो कहा कि इन वर्णो के अन्दर बड़ी विस्फोटक शक्ति होती है, इसको कहा गया है बीजाक्षर।

जैसे बीज बड़ा छोटा होता है लेकिन उसका फल महान होता है। देखने में तो छोटा होता लेकिन परमाणु वट वृक्ष की तरह से होता है। बीज को देखकर कहेंगे कि यह कुछ भी नहीं होता लेकिन बीज को बो दें तो उससे

बहुत कुछ मिलेगा, सब कुछ मिलेगा, ऐसे हो ये बीजाक्षर कहलाते हैं। इन वर्णों का शब्दार्थ तो कुछ नही होता, इन्हे तोडकर देखें तो वहाँ मिलता कुछ नही मगर इनका उपयोग उचित ढग मे किया जाय तो उसका परिणाम बडा असीम होगा।

तो यह ऐसा है कि जैसे कि कोई हारमोनियम बजाना सीखने वाला व्यक्ति स रे ग म आदिक सरगम सीखता है। उस सरगम का यो तो कुछ अर्थ नहीं होता लेकिन उससे कितनी ही प्रकार की ध्वनियाँ निकलती हैं।

तो मैं बता रही कि वैसे तो सरगम का कुछ अर्थ नही होता लेकिन उनके समायोजन से बहुत प्रकार के स्वर निकलते हैं। आपके जो ये क ख ग आदिक वर्ण हैं वे एक स्पदन पैदा करते हैं। आपने क बोला तो क का अपना एक स्पंदन है, वह तरग पैदा करता है। इस तरग के अन्दर चार बातें होती हैं स्पर्श, रस, गध, वर्ण। आपका जो टेलीविजन (T V.) आता है वह भी क्या है ? एक तरंग ही तो है। उसका जब कोई विशिष्ट प्रकार से समायोजन होता है तो पिक्चर दिखने लगती है।

तो तरंग जो है वह अगर आप क बोलते हैं तो उस क का स्वाद और कुछ होगा, उसके मुख की स्वाद और कुछ होगी और स बोला तो मुख में रस आ जायेगा। वर्णों का अपना-अपना स्वाद होता है और जहाँ स्वाद है, जहाँ रस होता है वहाँ गंध भी होती है। इन वर्णों का अपना-अपना गध भी होता है और स्पर्श भी होता है।

इन वर्णों के अन्दर भी रस होता, गध होता और काले, पीले, नीले आदिक रग होते हैं। इन वर्णों से जैसे-जैसे हम उच्चारण करते हैं उनके अनुसार हमारे शरीर के स्नायुओं मे विशिष्ट प्रभाव होता है आप देखे कि जितने भी वर्ण हैं जब कि ये कहे गये कठ तालू आदिक से जैसे क ख ग आदिक तीन अक्षर बोला तो ये बोले तो जाते कठ तालू आदिकसे लेकिन उनमें भी उच्चारण अक्षर अलग-अलग हैं। थोडा-थोडा अन्तर है। तो देखिये—
कितने स्वर हैं हमारे कठ के अन्दर। जिनका अनुमान इन स्वरों से किया जा सकता है। शरीर की जो स्नायु व्यवस्था है कि कौन सी व्यवस्था है कौन सी अव्यवस्था है और उसके लिये कौन से शब्द का उच्चारण उसमे उपयोगी है, तो उसके समझने के लिये कहा कि जैसे एक धागा अनेक धागों मे उलझा होता है तो उसे सुलझाने के लिये

क्या करना होता है कि जो अनेक धागें हैं। उन सबको पकड़कर धीरे से एक धागे की गाँठ खोल देते हैं, केवल एक ही धागा पकड़कर खींचने से वह गाँठ नहीं खुलती बल्कि वह और भी अधिक उलझ जाता है तो ऐसे ही आपको उन वर्णों के चारों ओर भिन्न-भिन्न स्थल होने के कारण से एक-एक तरंग को दूर करने के लिये भिन्न-भिन्न प्रकार के वर्णों का आश्रय लेना होगा इसलिये अनेक प्रकार के मन्त्रों का निर्माण हुआ।

अभी तो वर्णों के स्पर्श, रस, गंध, वर्ण बताया, इनके स्पर्श, रस, गंध, वर्ण भिन्न-भिन्न होते हैं आपके शरीर के अन्दर अगर ऊष्मा की कमी है तो आपको उस वर्ण का उच्चारण करना चाहिये जिसका कि ताप वर्ण हो। जो वर्ण बोला जाता है वह उष्णता को उत्तेजित करता है। इन वर्णों के अन्दर लिंग भी होते हैं—कोई स्त्रीलिंग, कोई पुलिंग और कोई नपुंसक लिंग होते हैं। इनमें जिस-जिस जाति का वर्ण आपने उच्चारण किया है उस-उस जाति की भावना आपके भीतर पैदा हो जायेगी क्योंकि वह वर्ण आपके हार्मोंस को उत्तेजित करता है।

और भी सोचिये कि इन वर्णों के अन्दर कोई वर्ण दग्धाक्षर होता है याने मृत्यु के करीब ले जाने वाला होता है और कोई वर्ण शुभ होता है। उनके साथ एक जुड़ने वाला वर्ण भी चाहिये ताकि उनकी शक्ति बनी रहे। जैसे किसी भीत में ईंट सीधी उल्टी दोनों तरह से लगायी जाती है तो उसमें अधिक मजबूती आ जाती है, अगर सब ईंटें सीधी-सीधी ही भीत में रखते चले जायें, तो उसमें वह मजबूती नहीं रहती, इसी प्रकार जहाँ शान्ति-शान्ति ही हो वहाँ मजबूत नहीं होता है जब प्यास लगती है तभी तो कुआँ खोदने की जरूरत पड़ती है और प्यास न लगे तो कुआँ खोदने की क्या जरूरत? ऐसे ही जब कोई बीमारी हो तो उसको नष्ट होने के लिये दग्धाक्षर चाहिये। वह दग्धाक्षर बीमारी को नष्ट कर देता है, लेकिन अधिक दग्धाक्षर हो तो क्या होगा कि वह आपके रस को भी नष्ट करने लग जायेगा।

तो इन वर्णियों के भेद बन जाते। अगर किसी मन्त्र के अन्दर कोई [illegible] वर्ण आ जाय तो वह विनाश भी कर सकता, भीतर के सारे स्नायुओं को भी तोड़ सकता।

मन्त्र में प्रत्येक वर्ण अगर गलत हो जाय तो उसका परिणाम गलत हो जाता है क्योंकि आपकी जबान है वह स्नायुओं में विस्फोटन करती है और उसमें

रासायनिक विकास होने से मन में तनाव आ जाता है और फिर उससे भावो मे विकृतियाँ हो जाती हैं और जब वर्णों का समायोजन सही हो जाता है तो फिर वह सारी प्रक्रिया बदल जाती है।

एक बार एक व्यक्ति मेरे पास आया और बोला—मैं बड़ा परेशान हू कोई उपाय बताइये जिससे मेरी परेशानी दूर हो। तो मैंने उससे पूछा—क्या तुम कोई जाप करते हो ? तो उसने बताया हाँ मैं एक जाप जरूर करता हूं पर मैंने देखा कि जबसे वह जाप जपना शुरू किया था तब से हमको परेशानी और भी बढ गई। तो मैंने उससे पूछा कि कौन सा मन्त्र जपते हो ? तो उसने हमे लिखकर दिखाया। वहाँ हमने देखा कि उसमे एक वर्ण गलत था और उसे सुधारकर दे दिया। उसके बाद फिर उसने उसी मन्त्र का जाप किया तो उसकी वह परेशानी दूर हो गई।

तो कहा कि जो बात जिस विधि से होनी चाहिये वह उसी प्रकार किया जाना चाहिये तब उस कार्य की सिद्धि होगी। हर काम की अलग-अलग विधि होती है। जैसे—

मान लो आपको हलुआ बनाना है तो उसके लिये आपको विधि बता दिया कि उसमे इतनी-इतनी मात्रा मे आटा, घी, मीठा और पानी लगेगा और इस-इस विधि से बनेगा। अब यदि कोई न तो उस मात्रा पर ध्यान रखे और न उसके बनाने की विधि पर ध्यान रखे और यो ही अटपट ढग से उन चारों चीजो को मिलाकर हलुआ बनाना चाहे तो नही बना सकता। वहाँ जितनी मात्रा मे जो चीज बतायी जाये उतनी ही मात्रा मे वह चीज पड़नी चाहिये और फिर जिस-जिस विधि से हलुआ तैयार किया जाता है उसी विधि को अपनाना चाहिये तब हलुआ तैयार किया जा सकता है इसी प्रकार मन्त्रो के

। मे भी क्रम होता है कि कौनसा वर्ण पहले होना चाहिये और कौन सा

. मे, उन वर्णों के बीच मे थोड़ा अन्तर होना चाहिये। जैसे हलवा बनाने के

कि इस-इस क्रम मे इतनी-इतनी मात्रा मे ये सब चीजे डालो तो

च मे अन्तर [illegible] जाता है उसी प्रकार का अन्तर वर्णों मे भी

की बात कही जाय तो उसको सर्वांग

के सारे अंग किसी के सुन्दर हों पर

काम चल सकता पर दिल न हो

[illegible] होता है कि ये बोल [illegible] हैं। इस मन्त्र को [illegible] और [illegible] को [illegible] देते हैं, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नहीं [illegible] और भी अधिक उत्साह [illegible] है तो ऐसे ही [illegible] वर्णों के चारों ओर भिन्न भिन्न स्पन्दन होने के कारण से [illegible] तरंग को [illegible] करने के लिये भिन्न भिन्न प्रकार के वर्णों का आश्रय लेना होगा इसलिये [illegible] प्रकार के मन्त्रों का निर्माण हुआ।

अभी तो वर्णों के नाम, रस, गंध वर्ण बताया, इनके [illegible] रस, गंध, वर्ण भिन्न-भिन्न होते हैं आपके शरीर के अन्दर अगर उत्साह की कमी है तो आपको उस वर्ण का उच्चारण करना चाहिये जिससे कि [illegible] वर्ण हो। जो वर्ण बोला जाता है वह उत्साह को उत्तेजित करता है। इन वर्णों के अन्दर लिंग भी होते हैं—कोई स्त्रीलिंग, कोई पुल्लिंग और कोई नपुंसक लिंग होते हैं। इनमें जिस-जिस जाति का वर्ण आपने उच्चारण किया है उस-उस जाति की भावना आपके भीतर पैदा हो जायेगी क्योंकि वह वर्ण आपके हार्मोन को उत्तेजित करता है।

और भी सोचिये कि इन वर्णों के अन्दर कोई वर्ण दग्धाक्षर होता है यानी मृत्यु के करीब ले जाने वाला होता है और कोई वर्ण शुभ होता है। उनके साथ एक जुड़ने वाला वर्ण भी चाहिये ताकि उनकी शक्ति बनी रहे। जैसे किसी भीत में ईंट सीधी उल्टी दोनों तरह से लगायी जाती है तो उसमें अधिक मजबूती आ जाती है, अगर सब ईंटें सीधी-सीधी ही भीत में लगी चली जायें, तो उसमें वह मजबूती नहीं रहती, इसी प्रकार जहाँ शान्ति-शान्ति ही हो वहाँ सृजन नहीं होता है जब प्यास लगती है तभी तो कुआ खोदने [illegible] पड़ती है और प्यास न लगे तो कुआ खोदने की क्या जरूरत ? [illegible] कोई बीमारी हो तो उसको नष्ट होने के लिये दग्धाक्षर चाहिये बीमारी को नष्ट कर देता है, लेकिन अधिक दग्धाक्षर हो तो वह अच्छे रस को भी नष्ट करने लग ज[illegible]

तो इन ध्वनियों के अनेक रूप बनाये। मन्त्र [illegible] के [illegible]
अधिक वर्ण आ जाये तो वह विनाश भी कर [illegible] को भी तोड़ सकता।

मन्त्र में एक भी वर्ण अगर गलत हो जाय [illegible] है, क्योंकि जो उसकी तरंग है वह स्नायुओं में [illegible]

सामाजिक विकास होने से घर में तनाव आ जाता है और फिर उससे भावों में विकृतियाँ हो जाती है और जब वर्णों का समायोजन नहीं हो जाता है तो फिर वह सारी प्रक्रिया बदल जाती है।

एक बार एक व्यक्ति मेरे पास आया और बोला—मैं बड़ा परेशान हूँ कोई उपाय बतादें जिससे मेरी परेशानी दूर हो। तो मैंने उससे पूछा—क्या तुम कोई जाप करते हो? तो उसने बताया हाँ मैं एक जाप जरूर करता हूँ पर मैंने देखा कि जबसे वह जाप अपना शुरू किया था तब से हमारी परेशानी और भी बढ़ गई। तो मैंने उससे पूछा कि कौन सा मन्त्र जपते हो? तो उसने हमें लिखकर दिखाया। वहाँ हमने देखा कि उसमें एक वर्ण गलत था और उसे सुधारकर दे दिया। उसके बाद फिर उसने उसी मन्त्र का जाप किया तो उसकी वह परेशानी दूर हो गई।

तो कहा कि जो बात जिस विधि से होनी चाहिये वह उसी प्रकार किया जाना चाहिये तब उस कार्य की सिद्धि होगी। हर काम की अलग-अलग विधि होती है। जैसे—

मान लो आपको हलुआ बनाना है तो उसके लिये आपको विधि बता दिया कि उसमें इतनी-इतनी मात्रा में आटा, घी, मीठा और पानी लगेगा और इस-इस विधि से बनेगा। अब यदि कोई न तो उस मात्रा पर ध्यान रखे और न उसके बनाने की विधि पर ध्यान रखे और यों ही अटपट ढंग से उन चारों चीजों को मिलाकर हलुआ बनाना चाहे तो नहीं बना सकता। वहाँ जितनी मात्रा में जो चीज बतायी जाये उतनी ही मात्रा में वह चीज पड़नी चाहिये और फिर जिस-जिस विधि से हलुआ तैयार किया जाता है उसी विधि को अपनाना चाहिये तब हलुआ तैयार किया जा सकता है इसी प्रकार मन्त्रों के वर्णों में भी क्रम होता है कि कौनसा वर्ण पहले होना चाहिये और कौन सा बाद में, उन वर्णों के बीच में थोड़ा अन्तर होना चाहिये। जैसे हलवा बनाने के लिये बताया कि इस-इस क्रम से इतनी-इतनी मात्रा में ये सब चीजें डालो तो उनमें बीच-बीच में अन्तर आता जाता है उसी प्रकार का अन्तर वर्णों में भी होना चाहिये।

जैसे किसी को सर्वांग सुन्दर होने की बात कही जाय तो उसको सर्वांग सुन्दर ही होना चाहिये। मान लो शरीर के सारे अंग किसी के सुन्दर हों पर एक आँख न हो तो वहाँ भी किसी हद तक काम चल सकता, पर दिल न हो

तब तो काम नहीं कर सकता। इसलिये हार्ट तो कम्पन से ही सही है, उसके बिना तो शरीर बिल्कुल बेकार है, ऐसे ही मंत्रों में अगर एक वर्ण भी कम या अधिक हो जाय तो उसका जो फल है वह सम्यक् रूप से शुभ नहीं आ सकता।

हमने एक कथा श्रुत पंचमी की पढ़ी है। कहते हैं कि भगवान महावीर के निर्वाण के पश्चात् ५०० वर्ष बीत गये, लोगों की बुद्धि कम हो गई। लोगों ने उनकी ध्यान पद्धति को छोड़ दिया। अनेक कारणों से ऐसा हुआ कि जो भगवान महावीर की ध्यान परम्परा थी वह निर्जीव होने लगी। और बहुत सा ज्ञान लुप्त हो गया तो उस समय धर सेनाचार्य ने सोचा कि इस ध्यान की पद्धति को लिख दिया जाय लेकिन लिखने के लिये अधिक समय न था, क्योंकि वे वृद्ध हो गये थे। तो उन्होंने सोचा कि इस ध्यान करने की विधि को किसी को बता जावें ताकि महावीर स्वामी की ध्यान करने की परम्परा कायम रहे।

यह सोचकर धर सेनाचार्य ने किसी मुनि संघ के पास सूचना भेजा कि मैं कुछ शिष्यों को भगवान महावीर की ध्यान की विधि सिखाना चाहता हूं ताकि वह परम्परा आगे चलती रहे तो उस मुनि संघ से दो दिगम्बर साधु धरसेनाचार्य के पास ध्यान की विधि सीखने के लिये चल पड़े। मार्ग में अनेक प्रकार के उपसर्ग भी उन्होंने सहे, खैर किसी भी तरह से वे जब धरसेनाचार्य के पास पहुंचे तो क्या देखा कि वे ध्यानस्थ बैठे थे तो वे साधु भी उनके निकट बैठ गये और वे इस बात की प्रतीक्षा करने लगे कि महाराज कब अपनी आंखें खोलें, ध्यान से उठें और फिर हम उनसे कुछ निवेदन करें।

उधर धरसेनाचार्य ने भी पहले से ही समझ लिया था कि मेरे पास कोई दो शिष्य ध्यान की विधि सीखने आये हैं पर उनके धैर्य की परीक्षा लेने के लिये जानबूझकर बराबर तीन दिन तक ध्यानस्थ रहे। तीन दिन के बाद जब उन्होंने अपनी समाधि खोला तो क्या देखा कि वे दोनों शिष्य भी बराबर तीन दिन तक ज्यों के त्यों बैठे रहे। उनके धैर्य की परीक्षा हो जाने पर समझ लिया कि ये दोनों शिष्य ध्यान की विधि सीखने के पात्र हैं। वे दोनों शिष्य थे पुष्पदन्त और भूतदन्त।

वहां आचार्य देव ने उन दोनों शिष्यों को एक ही मन्त्र दिया और वे उस मन्त्र की साधना भी करने लगे। कुछ ही दिनों बाद उसका गलत प्रभाव उनको

दिखाई पड़ा, क्या प्रभाव हुआ कि पुष्पदन्त के तो हाथी का जैसा एक दांत मुख से बाहर हो गया और भूपदन्त के एक आंख कानी हो गई। आखिर वे दोनों शिष्य इस खोटे प्रभाव का कारण पूछने के लिये आचार्य देव के पास गए तो वहां आचार्य देव ने क्या देखा कि उनके मन्त्र में एक-एक शब्द की हीनाधिकता थी। आखिर मन्त्र के वर्णों की हीनाधिकता को आचार्य-देव ने दूर किया। उसके पश्चात् जब उन दोनों शिष्यों ने साधना किया कि उनका वह खोटा परिणाम भी दूर हुआ और ध्यान की सिद्धि हुई।

उसके बाद फिर आचार्य देव ने पूछा—कहो ध्यान की सिद्धि ठीक-ठीक अब हो गई ना? तो उन दोनों शिष्यों ने कहा—हा अब तो हमे ध्यान की सिद्धि ठीक-ठीक हो गई, पहले हमारी ही असावधानी से वर्णों मे हीनाधिकता हो जाने से उसका खोटा परिणाम देखने को मिला था।

तो वहा आचार्य देव ने बताया कि मैंने वर्णों की हीनाधिकता का खोटा फल मिलता है इसकी सीख देने के लिये और उस मन्त्र की परीक्षा लेने के लिये ही वर्णों की हीनाधिकता करके तुम दोनों को मन्त्र दिया था।

तो यहाँ कह रहे कि मन्त्रो मे वर्णों की हीनाधिकता हो जाय तो उनका खोटा परिणाम देखने को मिलता है। जैसे कोई हलुवा मे कोई चीज मात्रा से अधिक डाल दे तो वह भी नुकसान करेगा और यदि कोई चीज मात्रा मे कम डाले तो वह भी सही हलवा न बन पायगा इसी प्रकार मन्त्रो मे वर्णों की हीनाधिकता होने से भी उसका खोटा परिणाम देखने को मिलता है।

मन्त्र शास्त्र मे कहा कि आप कौन से मन्त्र का जाप करें। यह नही कि जो अभी भी कर लें। हो सकता कि आपके नाम मे आपके स्वभाव की प्रकृति के अनुसार आपको वह मन्त्र अनुकूल न पड़े। हो सकता है कि एक ही मन्त्र किसी के लिये उपयोगी हो और किसी के लिये अनुपयोगी हो। परन्तु णमोकार मन्त्र के लिये ऐसा नहीं है कि इसे कोई विशेष व्यक्ति जपे उसके लिये उपयोगी होगा। अरे इसे तो कोई भी जपे, सबके लिये उपयोगी होगा। जैसे पानी पीना सबके लिये उपयोगी होता है और हर अवस्थाओं मे स्वास्थ्यप्रद होता है इसी प्रकार यह णमोकार मन्त्र भी हर एक के लिये हर अवस्थाओं मे उपयोगी होता है।

प्राचीनकाल मे ऐसा था कि किसी को उपदेश नहीं दिया जाता था। कोई भी शिष्य गुरु के पास जाता था तो गुरु उसे मन्त्र देता था।

तो गुरु के द्वारा दिये गये मन्त्र को यदि शिष्य श्रद्धापूर्वक ग्रहण करे और उसे जपे तो उसके प्रभाव से उसके भीतर की सारी बीमारियाँ, गन्दगी, मलिनतायें दूर हो जाती थी। तो जो आपके भीतर तनाव है वह उस मन्त्र के द्वारा दूर हो जायगा, अशुद्ध की जगह शुद्ध रसायन आपके अन्दर पैदा होगा, और वह शुद्ध रसायन आपके शरीर के अन्दर की ग्रन्थियों मे पहुँचेगा तो उसमे आप के स्वभाव में बडा अन्तर आ जायेगा।

विशाल ज्ञान हमारे भीतर पड़ा हुआ है लेकिन उसको खोलने के लिये, उसको जागृत करने के लिये मन्त्र उपयोगी होते हैं। जैसे कोई बन्द शीशी हो और उसके ऊपर कार्क लगा हो तो उसके खोलने के लिये उसमे झटका लगाना चाहिये, वह झटका उसमे सहयोगी होता है इसी प्रकार इस ज्ञान की गाठ को खोलने के लिये मन्त्र सहयोगी होता है। उस मन्त्र के द्वारा आपके भीतर छिपा हुआ खजाना प्रकट हो सकता है।

———

ध्वनियों के चमत्कार

एक समय ऋषियों को ध्वनि विज्ञान के सारे रहस्यों का ज्ञान था, उस जमाने में लोगों को साधु ऋषी या संत कोई भी मन्त्र दे देते थे। कोई भी शिष्य अगर आता तो उसको त्याग विशेष नहीं बताया जाता था। उसको मंत्र दीक्षा दी जाती थी। गुरु उस शिष्य को कोई मंत्र दे देता था तो वह शिष्य बड़ी श्रद्धा और एकाग्रता के अनुसार जाप किया करता था, लेकिन आज हमारे हृदय में श्रद्धा नहीं रह गई। आज हम तर्कवादी बन गए, तो जब लोग तर्कवादी बन गए तो वे तर्क रखते कि ये मंत्र हम क्यों जपें, इनके जपने से क्या होगा? रोज रोज एक ही शब्द की आवृत्ति करने से क्या मूर्छा न आ जायगी? हमको उन प्रश्नों का उत्तर देना पड़ा। उसकी साइंस क्या थी वह बताना पड़ता है। और उसी सन्दर्भ में आज मैं आपको बता रही ध्वनियों की बात।

एक होती है भाषा और एक होती है ध्वनि। मन्त्रों का अर्थ गद्य में नहीं ठहर पाता, पद्य में गाकर पढ़ा जाय तो वहाँ शब्द खो जाय, ध्वनि रह जाय, और वह ध्वनि एक तरंग बन जाय।

हमारे शरीर में दो तरह की विद्युत होती है—(१) पार्थणिक और (२) धारावाही। धारावाही विद्युत तो भावों से आती है और पार्थणिक विद्युत कण्ठ तालू, जिह्वा आदिक के माध्यम से पैदा होती है। वह है तरंग। जब मंत्र नहीं जपा जाता है तो यह देखा गया है कि उन दोनों प्रकार की धाराओं में कोई साम्य नहीं होता, विषमता होती है और जब मंत्र जपा जाता है तो उसके पश्चात् उस विद्युत में साम्य आ जाता है। फिर मन में स्थिरता या शान्ति आ जाती है।

दूसरे ढंग से मैं इस बात को कहूँ आज के इस साइंस के युग में हमने यह जान लिया है कि प्रत्येक पदार्थ चाहे वह कंकड़ हो चाहे पत्थर, उससे किरणें निकल रही हैं। इस ही प्रकार से हमारे आत्मा में भी किरणें निकल रही हैं। जो जड़ पदार्थों से किरणें निकलती हैं वे एक जैसी होती हैं, एक जाति की होती हैं। जिस पदार्थ से निकलती हैं उस अनुरूप जाति की होती हैं और सदा

एक समान रहती है। लेकिन आत्मा से बहने वाली जो किरणें हैं वे कषाय और मिथ्यात्व भाव के भीतर से गुजरकर के रेखायें एक जैसी नहीं रहती हैं। कभी ये दीर्घकालीन होती है और कभी लघुकालीन होती है। कभी वे सघन होती हैं और कभी बिखरी हुई होती हैं। कभी किसी जाति की होती हैं और कभी किसी जाति की, कभी किसी रंग की होती है और कभी किसी रंग की। विविधता और परतन्त्रता चलती रहती है इस कारण जैसे जैसे हमारे भाव होते हैं उनके अनुसार उन किरणों मे परिवर्तन होता रहता है। तो वे किरणें कषायों के कारण से रंगीली हो जाती हैं, इस कारण उनका रंग कभी काला, कभी पीला, कभी नीला और कभी सफेद हो जाता है, इसका नाम कहा गया है आभामण्डल।

ऋषी महापुरुषो के चारों तरफ हमें जो प्रकाश सा दिखता है वह है आभा-मण्डल। यह आभामण्डल सिर्फ उन ऋषी महापुरुषो के ही नहीं होता किन्तु आपमें भी होता है पर वह आभामण्डल स्वच्छ नहीं होता। हमारा आभा-मण्डल काला, पीला, नीला, गुलाबी ऐसे रगों का होता है इस कारण हमारे आभामण्डल मे वह स्वच्छता नही आ पाती। आजकल ऐसे ऐसे रासायनिक खोज हो रहे हैं जिनके द्वारा इस आभामण्डल को देखा जा सकता है। रूस मे अभी जल्दी ही एक ऐसा केन्द्र बनाया गया है कि जिसके द्वारा आपके आभा-मण्डल की रंगीन फोटो ली जा सकती है।

देखिये एक कैमरा तो वह होता है जो आपका चमडी का फोटो लेता है, एक कैमरा वह होता जो आपकी चमडी को छोडकर शरीर के अन्दर की हड्डी का फोटो लेता है, जिसे एक्सरे आदि कहते हैं और एक कैमरा वह होता है कि जो आपके ऊर्जा की, आभा की फोटो लेता है। उसका फोटो लेने पर फिर यह नहीं हो सकता कि कोई चोर आपके सामने झूठ बोल जाय, या कोई हत्यारा हत्या करके आया हो और वह किसी कोर्ट में जज के सामने पहुच जाय तो वह अपनी करतूत छिपा सके, ऐसा नहीं हो सकता, क्योंकि अगर उसके आभा-मण्डल मे कालिमा उतर आयी है तो निश्चित है कि उसके हिंसा के परिणाम आये हैं अगर किसी के आभामण्डल मे नीला रंग आया हो तो उसका अर्थ होगा कि उसने किसी को मारने के भाव नही किए किन्तु दूसरों को खसोटने के भाव किए। अगर किसी के आभामण्डल में नीला (आसमानी) रग आया हो तो इसका अर्थ होगा कि वह अपना बचाकर, दूसरो का कुछ छुड़ाकर

आनन्दित हो गया। और अगर किसी की आभा पीले रंग की होगी तो उसका अर्थ है कि वह सात्विक प्रकृति का होगा। वह अपना भी सुख चाहता और दूसरों का भी। और अगर वह दूसरों का नुकसान करने की कोशिश भी करे तो उसके वैसा भाव न आयगा, क्योंकि उसकी आभा के अन्दर नुकसान करने का रंग है ही नहीं।

तो जो अपना सुख दूसरों को पहुचाना चाहता है उसका अर्थ है कि उसकी आभा गुलाबी रंग की है और जो अपना सुख देकर दूसरों को सुख पहुचाता है उसका अर्थ है कि उसका आभामण्डल सफेद रंग का आयगा। इसी आधार पर लेश्याओं के रंग रखे हैं। कोई आदमी जब मरता है तो मरने से ६ महीना पहले उसकी फोटो आभामण्डल पर उतर जाती है। आभा अगर सिकुड जाती है तो आदमी ६ महीने के बाद मर जायगा, क्योंकि उसकी मृत्यु उसके स्थूल शरीर पर उतर आयी है।

कोई भी मृत्यु जब घटित होती है तो पहले आभामण्डल पर उतरती है। उसके बडे स्थूल शरीर के परिणाम होते हैं, इसलिये कहा कि जो स्वर्ग में देवता होते हैं उन्हें मृत्यु के ६ माह पूर्व ही पता पड जाता कि अब हमारी मृत्यु होने वाली है। आत्माजागृति के द्वारा भी इसका पता लग सकता और आभामण्डल के द्वारा भी। जब आभामण्डल कुछ छितरा वितरा सा होता है तो उसे देखकर पता पड जाता कि अब हमारी मृत्यु होने वाली है।

किसी के शरीर में कोई बीमारी आने से पहले आभा पर बीमारी आ जाती है, इसलिये आदमी बीमार तो दो तीन महीने पश्चात् होता लेकिन बीमारी का पता आभा द्वारा कुछ महीने पूर्व से ही हो जाती है और आभा से जानकर अगर अपने को स्वस्थ कर लिया तो फिर वह बीमारी न आयगी। यह एक विधि है।

किसी के कान में या सिर में दर्द हो तो वह बीमारी शरीर के किसी भी अग से प्रकट हो सकती है। जैसे जब कभी ज्वालामुखी फटता है तो जमीन का जो हिस्सा कमजोर होता है वहाँ वह फटकर बाहर आ जाता है ऐसे ही सारे आभामण्डल पर बीमारी उतर जाती है और जो शरीर का कमजोर भाग होता है वहाँ प्रकट होती है तो हम उस भाग का इलाज करते हैं। हमने कान का इलाज किया है लेकिन जहाँ से बीमारी आ रही उसका इलाज नहीं किया,

इसलिये क्या हुआ कि कान ठीक हो जाता तो सिर मे दर्द हो जाता और सिर का इलाज करते तो पेट मे दर्द हो जाता।

वास्तविक इलाज यह है कि आप अपने आभामण्डल का इलाज करें और उसकी पद्धति है मत्र। मत्र आपके आभामण्डल को रूपान्तरित करते हैं, मत्र आपके आभामण्डल को शक्तिशाली बनाता है, मत्र आपके आभामण्डल को व्यवस्थित करता है। मत्र के द्वारा जो सूक्ष्म रूप से शक्ति रूप बनकर आभामण्डल मे प्रविष्ट होता है तो वहाँ के अशुद्ध परमाणु झड जाते हैं और मत्र के द्वारा शुद्ध परमाणु उसमे प्रविष्ट होते हैं तो उससे क्या होगा कि आपका आभामण्डल स्वस्थ हो जायगा, फिर आप शरीर से स्वस्थ हो जायेंगे और अगर शरीर से स्वस्थ हो जायेंगे तो आपके विचार भी स्वस्थ हो जायेंगे।

आपका आभामण्डल अगर काला सा हो गया है तो आप मे हिंसा के विचार पैदा हो जायेंगे। अगर आपका आभामण्डल सफेद हो गया है तो आप मे विश्वकल्याण की भावना जागृत हो जायगी। दो बातें होगी—(१) परकल्याण की बात और (२) दूसरी शक्तिशाली। शक्ति नही होती है तो हम दरिद्र होते हैं। गुस्सा आती है। हमारे भीतर क्रोध का रसायन होता है तो वह क्रोध आता है।

तो यह मत्र हमारे आभामण्डल को बदलता है और जब वह रासायनिक हमारी स्नायुवो मे आता है तो उससे हमको क्रोध नही आता। और क्रोध नही आता है तो फिर हमारा स्वभाव बदल जाता है और जब स्वभाव बदल जाता है तो फिर हमारे आचरण मे भी बदल आ जाती है क्योंकि जैसी अनुभूति है वैसे विचार हैं और जैसे विचार हैं वैसा ही आपको आचरण करना होता है।

इसलिये हमको क्या बदलना चाहिये ? तो साधना हमारी यह है कि हम अपनी आभा को बदल दें। आभा के परिवर्तन से हमारे मे आध्यात्मिक परिवर्तन भी आ सकता है। अभी तो हमने यह स्वभाव का और शरीर का परिवर्तन बतलाया लेकिन आध्यात्मिक परिवर्तन भी आ सकता है। आभा को और भी शक्तिशाली बना दें तो आप अपने कार्माण शरीर के प्रति भी जागृत हो सकते हैं। और जब जागृत हो जायें तो उसके भी अशुद्ध परमाणु झड जाते हैं और उसके बाद इन शब्दो से ध्वनि, ध्वनि से (लहरें), लहरों से आभा आभा से ऊर्जा और फिर ऊर्जा से चेतना का अनुभव होता है, यह विधि है। हमने तो अभी तक यह समझा कि मंत्र जो है वह हमे लौकिक शक्तियाँ देता है

लेकिन सिर्फ लौकिक शक्तियाँ ही नहीं, वे शक्तियाँ सदा तटस्थ होती हैं, उनका उपयोग आप पर निर्भर है मंत्र एक शक्ति जागृत कर सकता है। वह विनाश के काम में भी आता और सृजन के काम मे भी आता है।

वह शक्ति जब तैजस शरीर के रूप में प्रकट होती है तो बडी विनाशकारी होती है जैसे कि द्वीपायन मुनि के जब तैजस शक्ति प्रकट हुई तो उससे सारी द्वारिकापुरी भस्म हो गई थी। वही शक्ति जब आहारक शरीर के रुप में प्रकट होती है तो वह बडी बडी शंकाओं का समाधान करती है, और बडे बड़े रोगो को दूर करती है। चीज एक ही है मगर क्रोध से निकली हुई चीज विनाश करती है और प्रेम से निकली हुई शक्ति रक्षा करती है। ऐसा ही आध्यात्मिक रूप में बताया और ऐसा ही दूसरे रूप मे बताया। जितने भी हमारे अन्दर रोग पैदा हो रहे हैं, स्नायुविक या मानसिक वे सब इस आभामण्डल की विकृतियों से पैदा होते रहते हैं, इसलिये आजकल कही कही हाम्पेटलो मे (अस्पतालों में) संगीत की ध्वनियों की व्यवस्था की गई है। जिससे कि मरीजो का आभामण्डल बदल सकें। उस संगीत की ध्वनियो के द्वारा हम आपके चित्त की दशा बनती है।

यह हमारा जीवन ऊर्जा पर चलता है। मन्त्र ऊर्जा भी देता है, और वह मन्त्र ऊर्जा होने की व्यवस्था को तोड भी देता है, एक व्यक्ति यहाँ बैठकर मन्त्र जपता है और हजारो मील की दूरी पर बैठे हुए आदमी का जहर उतर जाता है, क्योंकि मन्त्र के द्वारा जिसका लक्ष्य करके तरंग की है वह इच्छा शक्ति के द्वारा पहुच जायगी, और वहा जाकर उस अंग तक अपनी जो ध्वनि दिया है उसके प्रभाव से वहाँ अशुद्ध परिणाम झड़ जायेंगे और शुद्ध परमाणु प्रतिष्ठित हो जायेंगे। तो ऐसे मन्त्रों के द्वारा जीवन मरण हो सकता है रोगी व्यक्ति स्वस्थ हो सकता है। इन मन्त्रो का प्रभाव सिर्फ मनुष्यों पर ही नहीं पहुँचता किन्तु पेड़ पौधों पर भी पहुँचता है।

एक बार सर जगदीश चन्द्र बोस की प्रयोगशाला देखने के लिये गांधी जी भी गये थे क्योंकि जगदीश चन्द्र बोस ने कहा था कि ये पेड़ पौधे भी सुनते हैं। तो वहाँ जब गांधी जी ने देखा कि शाम हो गई तो उनके प्रार्थना का समय था क्योंकि उनकी प्रार्थना करने का समय निश्चित था। जब वे उस प्रयोगशाला के अन्दर प्रार्थना करने लगे तो उन्होंने क्या देखा कि उस ध्वनि

से वहा के छोटे-छोटे पौधे भी आनन्दित हो गये थे क्योंकि ध्वनि पौधों में भी परिस्पदन पैदा करती है।

आजकल तो दूध की डेरियों मे भी जहा कि गाय, भैंस आदिक पशु दूध देते हैं वहां भी इन ध्वनियों का इन्तजाम किया जा रहा है। उन ध्वनियों को सुनकर उन पशुओं का मन आनन्दित हो उठेगा, उनका हृदय वात्सल्य से भर जायगा और वे अधिक मात्रा मे दूध देने लगेंगे, इस ख्याल से उन डेयरियों मे भी संगीत की ध्वनियों का इन्तजाम किया जा रहा है।

इतना ही नहीं और भी लीजिये, जिस व्यक्ति को यह भी पता न हो कि कहाँ कौन सा राग चल रहा, ध्वनि चल रही उसके पास यदि कोई देशभक्ति से सम्बन्धित ध्वनि बजा दे तो उस व्यक्ति की भुजायें फड़कने लग जायेंगी। और अगर कोई हिप्पी टाइप वाले की ट्यून दे दी जाय तो उसे सुनकर उसके पैर उछलने लगेंगे और अगर कोई शान्त रस की ध्वनि हो तो उससे इसके मन मे शान्ति बहने लग जायेगी।

तो ध्वनि का चाहे ज्ञान न हो लेकिन उसका प्रभाव और उसका अनुभव आप जरूर करते हैं। यह बात चौबीसों घण्टे हो रही है। आपका चित्त ध्वनि से आरोपित होता है।

आप अगर इस पृथ्वी तत्व का आलम्बन लेकर ध्वनि बजा रहे हैं—स रे र से, तो वहाँ अग्नि पैदा होती है। र शब्द का उच्चारण हो तो उससे तो शक्ति पैदा होती है वह उष्ण होती है इसलिये र को उष्ण कहा गया है। और यह तरग पैदा करेगा।

एक बार अकबर की बेटी बीमार हुई, उसके शरीर में उर्जा की बड़ी कमी हो गई थी, वह अपने जीवन की अन्तिम श्वासें ले रही थी। तो उसके प्राणों की रक्षा के लिये तानसेन को बुलवाया गया। तो वहाँ तानसेन ने राजा के कहने पर अपने उसी मन्त्र की ध्वनि का प्रयोग किया जिससे कि उसके अन्दर ऊर्जा उत्पन्न हो सकती थी। आखिर क्या हुआ कि उस लड़की के शरीर में वह उर्जा पहुंच गई और वह लड़की ठीक हो गई। मगर उस मन्त्र का प्रभाव तानसेन पर यह पड़ा कि तानसेन के अन्दर भी वह अग्नि प्रज्वलित हो गई। वह पागल सा हो गया।

तो एक अग्नि वह होती जो कि पानी से बुझाई जा सकती और एक अग्नि वह होती जो कि चन्दन से शान्त हो सकती, लेकिन भीतर की अग्नि को वे सब

मिलकर भी शान्त नहीं कर सकते। क्योंकि वह अग्नि ऊर्जा की है।

आखिर ऊर्जा अग्नि से प्रज्वलित हुआ तानसेन एक बार किसी दूसरे गाव गया। वहां एक कुवें पर कुछ स्त्रियां पानी भर रही थी। वहीं पानी पीने के उद्देश्य से तानसेन भी पहुंचा, पर वहा पहुंचते ही वह मूर्छित होकर गिर पड़ा। वहाँ किसी महिला ने उसे पहचान लिया कि यह वही तानसेन है और उसने यह भी समझ लिया कि इसको क्या बात है और कैसे यह ठीक हो सकता है, सो उसने झट एक अपनी सहेली से कहा कि इस व्यक्ति के पास बैठ कर बड़ी अच्छी ध्वनि मे मल्हार गाओ। आखिर उस स्त्री ने मल्हार गाया तो उसकी मधुर ध्वनि सुनने के परिणामस्वरूप उसकी उष्ण ऊर्जा शान्त हो गई।

तो आज के सन्दर्भ मे हमने बताया कि इन मन्त्रों का प्रभाव आध्यात्मिक जगत में क्या होता है। उस मन्त्र का प्रभाव हमारे आभामण्डल पर पड़ता है और फिर उस आभामण्डल के प्रभाव से हमारे शरीर के अन्दर में स्नायुवों की प्रक्रिया बदल जाती है। उस प्रक्रिया के प्रभाव से हमारे विचार भी वैसे ही बनने लगते हैं, फिर वैसे ही भाव और वैसे ही आचरण बनने लगते हैं। यह तो उन मन्त्रों का एक व्यक्तिगत रूप से प्रभाव कहा, अब यह कहा जा रहा कि इन मन्त्रों का प्रभाव पृथ्वी, जल आदिक सौरमण्डल पर भी पड़ता है।

यह मन्त्र हमारे भीतर तो तरंग पैदा ही करता है लेकिन यह इस सौर मण्डल को भी रंजित करता है। इसलिये जिस तरह का मन्त्र हम जानते है वह हमारे भीतर ही नहीं किन्तु बाहर तक भी अपना प्रभाव डालता है। उन तरंगों का जोड़ मिला दे तो बाहर भी वर्षा हो सकती बाहर भी अग्नि लग सकती··· जैसे वायु से जल बरस सकता है ऐसे ही आकाश से चन्दन भी बरस सकता है, केसर भी बरस सकता है। उस प्रकार के मन्त्र होना चाहिये और उनमे उस प्रकार की तन्मयता होनी चाहिए।

यदि आप सोचें कि हम तो एक दो बार दो ही मन्त्र को पढ़ डालें, इतना काफी है तो इससे आपको उस मन्त्र की सिद्धि नहीं हो सकती। मन्त्र की सिद्धि तो तब हो सकती है जबकि आप उसके तन्मय हो जायें।

देखिये अभी हमने आपको यह विधि नहीं बताया कि आप उस मन्त्र का पाठ कैसे करें—यह बात तो आगे बतायेंगे अभी बात तो यह बताना कि इन मन्त्रों का शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक प्रभाव कैसा होता है।

मन्त्र का अर्थ है ध्वनि और ध्वनि का अर्थ है तरंग। जरा देखो ?

शक्ति और वह शक्ति हमारे आभामण्डल को बदल देती है। अगर न बदले तो समझो कि अभी हमारे मन्त्र में कोई कमी रह गई है। उस आभामण्डल के बदलने से हमारे अन्दर व्यावहारिक और आध्यात्मिक प्रभावना आती है तथा हमारा यह भौतिक जगत भी परिवर्तित हो जाता है।

इसलिये कहा कि मन्त्र दो प्रकार के होते है— (१) सकाम और (२) निष्काम। सकाम मन्त्र वे होते हैं जो किसी बीमारी को, उपद्रव को शान्त कर देते हैं और निष्काम मन्त्र वे होते हैं जोकि हमें शान्ति देते हैं, पुष्टि देते है।

मन्त्र जप के चार पाथेय

मन्त्र केवल भौतिक सिद्धियों का ही साधन नहीं है। मन्त्र शब्द के द्वारा अशब्द तक पहुंचने की विधि है। अवलम्बन के द्वारा निरावलम्बन तक पहुंचने का प्रकार है। तनावों से मुक्ति कैसे मिले, इसका सुन्दर तरीका है।

कुछ रोग शारीरिक होते हैं और कुछ आध्यात्मिक होते हैं। शारीरिक रोगों से तो आप परिचित ही हैं आध्यात्मिक रोग की बात आप और समझ लीजिये। आध्यात्मिक रोग तीन प्रकार के होते हैं (१) आवरण (२) विकार और (३) अन्तराय। इनको दूर करने के लिये मन्त्रों का आश्रय भी लिया गया है। आप इस सन्दर्भ में अगर विचार करें तो हमारा सारा जीवन का जो अनुभव है वह स्पन्दनों का अनुभव है, और कुछ नहीं।

अगर आप मिठाई खाते हैं, रसगुल्ले खाते हैं लड्डू खाते हैं तो उसका जो स्वाद आपको आता है सो वह वहीं उस मिठाई का नहीं आता, किन्तु स्पन्दनों का आता है। मिठाई और जिह्वा के स्पर्श से जो स्पन्दन पैदा होते है वह मस्तिष्क तक पहुंचते हैं और उसका आपको अनुभव होता है तो आप कहते हैं कि यह मिठाई बड़ी अच्छी है। इसी तरह से हमारे हाथ पैर आदिक को जब किसी चीज का स्पर्श होता है तो उससे हमारी चमड़ी में कुछ घर्षण होता है, वह भी हमारे अन्दर स्पदन पैदा करता है वह हमारे मस्तिष्क तक पहुंचती है और हम सुख या दुःख का अनुभव करते हैं। तो किसी भी विषय में ले ले बात पाँचों प्रकार की इन्द्रियों के अनुभव की है। और कुछ नहीं जिस समय आप के अन्दर क्रोधादिक विकारों का स्पदन होता है उस समय आप उन विकारों का अनुभव करते हैं, और जब आपके अन्दर शान्त भावों का स्पदन होता है तो उस समय आप शान्ति का अनुभव करते हैं।

आजकल ऐसी ऐसी ध्वनियों की खोज की गई है कि जिनसे वीतरागता के भाव उमड़ते हैं। उन ध्वनियों से हमारे शरीर के अन्दर आत्मप्रदेशों में कुछ स्पंदन होता है। कुछ तरंगें आती हैं जिससे वीतरागता के भाव उमड़ते है। अब उन तरंगों को किस विधि से पैदा किया जाये? अगर किसी विशिष्ट

विधि से जब स्पंदन हमारे शरीर में पहुंच जाए तो उनसे हम उस वीतरागता का अनुभव कर सकते हैं और उन स्पन्दनों की खोज में ही इन मन्त्रों का निर्माण हुआ है।

मन्त्र के स्पन्दनों से दो काम होते एक तो शुभ की अनुभूति होने लगती है और उस शुभ की अनुभूति होने से हम सारे शरीरमण्डल में जितने शुभ परिणाम हैं वे सब भाव से प्रतिबिम्बित होने लग जायेंगे और भाव में जो अशुद्ध परमाणु हैं वे झड़ने लग जायेंगे। इसलिये कहा कि "एसोपंचणमोक्कारो सव्वपावप्पणासणो। मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं हवइ मंगलं।" यह मन्त्र ऐसा है जो कि सब पापों का नाश करता है।

अब यहाँ क्या होता कि जो भी पाप हमारे आभामण्डल में आते हैं उनको दूर करने के लिये इन मन्त्रों का विधिवत पाठ किया जाता है। उन मन्त्रों के पाठ से हमारे आभामण्डल में शुभ तरंगें उठने लगती हैं। उन शुभ तरंगों के उठने से अशुभ भाव दूर होते हैं और शुभ भाव भीतर से उमड़ने लगते हैं। जब शुभ परिणाम करते हैं तो बाहर फैले हुए अशुभ स्पन्दन झड़ने लगते हैं और शुभ स्पन्दन हमारे भीतर उतरने लग जाते हैं और जिस समय शुभ भाव करते हैं तो हमारे भीतर सारे शरीर मण्डल में शुभ स्पन्दन उतरने लग जाते हैं।

तो मन्त्र दोनों तरह की अनुभूति करा सकता है। जिस तरह का मन्त्र लिया उस तरह का स्पन्दन होता है और वैसी ही अनुभूति होने लग जायगी। तो यह मन्त्र अध्यात्म में प्रवेश की विधि है।

आज इस संदर्भ में बताना चाहती हूँ कि मन्त्र का उच्चारण सही होना चाहिये। कोई चाहे यह न जाने कि स्वर क्या होता है लेकिन उसकी अनुभूति तो एक अज्ञानी आदमी को भी हो जाती है। अगर कोई बाजा बेसुरा बजा रहा हो तो वह भी कहेगा कि क्या बाजा बजा रहे? ठीक-ठीक बजाओ और यदि कोई अच्छे स्वर में बाजा बजा रहा हो तो वहाँ उसका जानकार भी उसे सुनकर आनन्दित हो जायेगा और न जानकार भी आनन्दित हो लेगा।

पुस्तकों में बड़े-बड़े मन्त्र लिखे हुए हैं तो लोग कहने लगते हैं कि इन मन्त्रों का पाठ तो हम किताब से ही कर लेंगे, यहाँ किसी गुरु की जरूरत नहीं; कोई-कोई लोग तो ऐसा भी तर्क रखते कि परमात्मा के स्मरण की बात उन मन्त्रों में होती है तो परमात्मा का स्मरण तो हम किसी भी भाषा में शब्दों

द्वारा कर सकते। यह जरूरी थोड़े ही कि हिन्दी या संस्कृत के ही शब्दो में परमात्मा का स्मरण किया जाय। तो बात उनकी किसी हद तक ठीक है मगर बात यह है कि वहाँ भाषा से कुछ मतलब नहीं है। मतलब है उस ध्वनि से। आपके कंठ मे कौन सा स्वर पैदा होना चाहिये, इसका महत्व है। कंठ की जो ध्वनि होती है वहाँ आपकी भाषा खो जाती है, सिर्फ ध्वनि रह जाती है। आपको जैसे किसी रिकार्ड की ध्वनि सुनाई देती है तो उन ध्वनि को आप अनेक रूपों में सुन सकते। उस समय आपके मन मे जैसे भाव होगे वैसे शब्द आप उस ध्वनि में सुन सकते हो। तो इन मन्त्रो के द्वारा भी ध्वनि पैदा की जाती है और उन मन्त्रो के सही उच्चारण के लिये गुरु का सान्निध्य चाहिये।

इन मन्त्रो के तीन परिणाम होते हैं :—(१) भौतिक (२) आध्यात्मिक और (३) दैविक। पृथ्वी, जल, अग्नि वगैरह भौतिक पदार्थों से सम्बन्धित परिणामों का भौतिक परिणाम कहते हैं और आध्यात्मिक परिणाम वे हैं जोकि आपके भीतर तीन प्रकार के शरीर (स्थूल, तैजस और कार्माण) है उनके अन्दर जो विस्फोटक शक्ति के द्वारा इनका भेदन करते हैं और भीतर इन तरगो से जो परे है उनकी अनुभूति कराने मे सहायक होते हैं और हमारे आध्यात्मिक द्रव्यों को जागृत करते हैं, हमारे तनाव को दूर करते हैं। हमारे विकारों को रूपान्तरित करते हैं, और दैविक परिणाम वे होते हैं जिनके द्वारा या तो जो दैविक शक्तियाँ हैं जल, अग्नि, वायु, आदिक उन पर प्रभाव पड़ता है, या किसी देवता की प्रकृति अग्नि प्रधान हो, किसी की जल प्रधान हो और किसी की वायु प्रधान हो तो वह ध्वनि उस को प्रभावित करेगी। जैसी तरग होगी वैसी ही प्रकृति उस देवता को प्रभावित करेगी।

तो मैं कहना चाहती हूं कि आध्यात्मिक सिद्धि के लिये वह मन्त्र जपने की विधि क्या है ? आप लोगो मे बहुत से लोग हमसे कहते कि हम तो णमोकार मन्त्र का पाठ बीसो वर्षों से नियमित करते आ रहे पर कोई सिद्धि नजर नहीं आती। तो मैं उनसे कहती हू कि उनके उस पाठ मे कहीं कोई कमी है जिससे सिद्धि नहीं हो पा रही। उस कमी को दूर करना होगा। तब सिद्धि अवश्य होगी। तो यहाँ प्रश्न यह उठता है कि कौन सी कमी रह गई। तो उस कमी को बताने के लिये कहा जा रहा कि मन्त्र तीन ढंगों से जपा जाना चाहिये पहला ढग है पार्थिवजय दूसरा उर्मांशुजय और तीसरा है मानसिक जप।

लगते कि यह मन्त्र तो हम रोज-रोज जपते है। आप तो कहते हैं कि हम रोज रोज णमोकार मन्त्र जपते पर मैं कहती कि आप श्रद्धापूर्वक एक बार भी विधि से पाठ नहीं करते। बीच-बीच आप कभी कुछ सोचने लगते कभी कुछ।

श्रद्धा मूल चीज है, श्रद्धा बिना किसी भी कार्य की सिद्धि नहीं हो सकती। जब तक श्रद्धा का रसायन नहीं डाला जाता तब तक मंत्र के बीज फल नहीं देते।

आत्म जागरण के लिये यह मन्त्र एक परम औषधि है। इस ही के प्रताप से समस्त राग द्वेषादिक विकारो के रोग हटकर आत्म-कल्याण की उपलब्धि हो सकती है।

नमस्कार मंत्र

आचार्य कुन्द कुन्द ने कहा कि जो अरहत का ध्यान करता है वह अरहत हो जाता है। यह बात किस ढंग से सत्य होती है? रोज-रोज हम अरहत भगवान के प्रतिबिम्ब का दर्शन करते हैं और हम अरहत नहीं हुए। क्या विधि रही होगी जिससे अरहत का ध्यान करने से अरहत हो जाते है। इस संदर्भ में मैं आपको बताना चाहती हूँ।

आचार्य नेमीचन्द ने द्रव्य संग्रह ग्रन्थ में कहा है कि आत्मा में जो प्रदेशो का बन्धन होता है वह किन-किन कारणों से होता है, उन कारणों को बताते हुए उन्होंने कहा कि— योग से प्रकृति बँधती है, प्रकृति से कषाय और कषाय से अनुभाग और स्थिति का बंध होता है अर्थात् आत्मप्रदेशों के परिस्पंदन से कर्मों का आगमन होता है और कषायो से उन कर्मों का रस बढ़ता है तथा उनकी स्थिति बँधती है। वह स्थिति कितने समय तक रहेगी? जितना रस बढ़ेगा उतने समय तक कर्म ठहर सकेंगे। क्योंकि जितना गोंद लगायेंगे उतने समय तक बंधन रह सकेगा। जितना गोंद है, जितनी मात्रा में लगाया है, उसके अनुसार उसका बंधन होता है। तो कषाय का रस, कर्म का रस और उसकी स्थिति का बन्ध होता है।

तो इन बातों पर विचार करता हुआ क्या हुआ? योग नाम है परिस्पंदन का। जब कम्पन हमारे आत्म प्रदेशों में होता है तो वह अपनी चिद्वृत्तियों के लिए होता है उसका नाम योग कहलाता है, और जब वह भाषा के लिए होता है तो वह वचनयोग कहलाता है और जब वह कम्पन हमारे शरीर की हलन चलन के लिये होता है तब उसको काययोग कहते हैं।

कम्पन एक तरह का है लेकिन भिन्न-भिन्न स्थितियों से

उपयोग से दो बातें होती हैं—(१) जानना और (२) कषाय। जानना सिर्फ जानना भी हो सकता और वह जानना कषाय सहित भी हो सकता। आप किसी म्यूजियम मे पहुँचकर वहाँ की मूर्तियाँ या हड्डियाँ या अन्य सुन्दर-सुन्दर चीजें भी देख लेते हैं लेकिन सिर्फ देखते हैं, उनमे ग्रहण और त्याग की भावना नही होती। वहाँ यह नही मन मे आता कि यह अच्छा और यह बुरा। इसका नाम है उपयोग, जानना और वह जानना जब किसी दुकानदार के यहाँ मे होता तो वहाँ मन मे यह आता कि कौन चीज खराब और कौन अच्छी। वहाँ का जानना कषायसहित होता है इसलिए कहा कि कषायनुरंजित उपयोग का नाम है लेश्या और कषायरहित जानने का नाम है सिर्फ ज्ञान, उपयोग।

तो उपयोग की दो स्थितियाँ हैं—(१) जानना और (२) कषायसहित जानना। वह कषाय सहित जानना भी दो तरह का होता है—(१) लब्धि और (२) उपयोग। लब्धि वह है जो भीतर पड़ा हो और उपयोग वह है जिससे हम काम ले रहे हो। अर्थात् जब कषाय सहित जान रहे हो उसका नाम उपयोग और जब वह कषाय भीतर पड़ी हो तो वह कहलाता है लब्धि। ये दो चीजें हैं। तो काम मे कब आती है लब्धि। कषाय जब भीतर पड़ी रहती है, सत्ता मे है लेकिन जब काम मे आ रही है तो उपयोग है, उसका हमें अनुभव होता है। इसलिए इनकी स्थितियाँ दो जगह होती हैं—(१) एक कषाय का शोधन, कषाय की शुद्धि हो, आत्मशोधन हो और (२) दूसरे हमारे जो मन, वचन, कायकी वृत्तियाँ हैं उनका नियमन हो। इसलिए एक है नियन्त्रण और दूसरा है आत्मशोधन। कषाय की शुद्धि और चचलता का नियन्त्रण, भावो की शुद्धि और मन की स्थिरता, ये दो चीजें हैं।

अब हमको इन कषायो के स्थान पर भाव देने होगे और नियन्त्रण के लिए इन कषायो मे गति देनी होगी ताकि नियमण हमारा शुभ से अशुभ मे जा सके और भावो को अशुभ के स्थान पर शुभ दे दिया जाय ताकि कषाय का शोधन हो सके।

तो इस दशा मे मन्त्र दोनो काम करते हैं—हम उनका उच्चारण करते हैं तो एक परिस्पन्दन पैदा होता है और जिस पर मन्त्र बना हो, अगर उसका कुछ अर्थ भी होता हो तो उसे हम भाव भी दे देते हैं। जैसे णमोकार मन्त्र आत्मा का सम्बोधन भी देता है और भाव भी देता है क्योकि णमोकार मन्त्र का कोई

बोला—ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं तो यह शब्द चन्द्र के द्वारा आने वाले दुष्प्रभावों को रोकता है, इसी प्रकार जब कहा ॐ ह्रीं णमो आयरियाणं तो यह बुध ग्रह से आने वाले दुष्प्रभाव को रोकता है। जब कहा ॐ ह्रीं णमो उवज्झायाणं तो यह बृहस्पति ग्रह से आने वाले दुष्प्रभावों को रोकता है, जब कहा ॐ ह्रीं णमो लोए सव्वसाहूणं तो वह शुक्र, राहु, केतु आदिक के आने वाले दुष्प्रभावों को रोकता है।

इस प्रकार से कहा कि इन ध्वनियों का जो स्पंदन है वह उन दुष्प्रभावों को रोक सकता है, इसलिए कहा कि यह मंत्र आप का कवच जैसा काम करता है। जैसे कोई योद्धा कवच के द्वारा शत्रु की वार को रोक लेता है इसी प्रकार साधक भी इन मंत्रों के द्वारा इन सूर्य-चन्द्र आदिक ग्रहों के द्वारा आने वाले प्रकोपों को बड़ी सुगमता से रोक लेता है। यह तो एक लौकिक प्रभाव की बात कहा, इसका आध्यात्मिक प्रभाव भी बहुत अधिक है।

ये अरहंत सिद्ध अवस्थायें ऐसी हैं कि जिनमें फिर चैतन्य स्वरूप के प्रकट होने में किसी चीज की रोक नहीं रह जाती, उनका ज्ञान निरावरण स्पष्ट रूप से झलकने लगता है। वहाँ शुद्ध चैतन्यस्वरूप प्रकट हो जाता है, ऐसे भाव अवस्था को कहते हैं अरहंत सिद्ध। और जो इसी मार्ग में स्व साधना करते हुए बढ़ते चले जा रहे हैं और दूसरों से भी साधना करवा रहे उन्हें कहते हैं आचार्य और जो स्वयं बड़े विवेकी होते हैं और दूसरों को भी विवेक कराते हैं वे कहलाते हैं उपाध्याय और जो साधना के मार्ग में लगकर आचार्य देव के आदेशानुसार अपनी आत्मसाधना करते हैं वे साधु कहलाते हैं।

तो लोक में जिन्होंने अपनी शत्रुता को नष्ट कर दिया, मोह रागद्वेषादिक विकारों को नष्ट कर दिया, वे सर्वगुण सम्पन्न हो गए वे अरहंत कहलाते हैं, और जिनका मोह रागद्वेषादिक विकारों के साथ-साथ शरीर भी छूट गया, वे अब सदा के लिए संसार से मुक्त हो चुके उन्हें सिद्ध कहते हैं और उन अरहंत सिद्ध के ही मार्ग में जो आचार्य, उपाध्याय और साधु लगे हुए हैं वे सब साधु (साधना करने वाले) कहलाते हैं।

णमोकार मंत्र के अन्दर इन गुणों का ही नमन किया गया है, किसी व्यक्ति का नमन नहीं किया गया है।

तो कहा कि स्थूल से सूक्ष्म तक पहुँचने हुए हम आत्मा की अनुभूति करें इसमें ये मंत्र साधक बन सकते हैं। इन्हीं मंत्रों के द्वारा हमें आध्यात्मिक, एवं

बोला — ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं तो यह चन्द्र ग्रह के द्वारा आने वाले दुष्प्रभावों को रोकता है, इसी प्रकार जब कहा ॐ ह्रीं णमो आयरियाणं तो यह बुध ग्रह से आने वाले दुष्प्रभाव को रोकता है। जब कहा ॐ ह्रीं णमो उवज्झायाणं तो यह बृहस्पति ग्रह से आने वाले दुष्प्रभावों को रोकता है, जब कहा ॐ ह्रीं णमो लोए सव्वसाहूणं तो यह शुक्र, राहु, केतु आदिक के आने वाले दुष्प्रभावों को रोकता है।

इस प्रकार से कहा कि इन पदों का जो स्मरण है वह उन दुष्प्रभावों को रोक सकता है, इसलिए कहा कि यह मंत्र आप का कवच जैसा काम करता है। जैसे कोई योद्धा कवच के द्वारा शत्रु की वार को रोक लेता है इसी प्रकार साधक भी इन मंत्रों के द्वारा इन सूर्य-चन्द्र आदिक ग्रहों के द्वारा आने वाले प्रकोपों को बड़ी सुगमता से रोक लेता है। यह तो एक लौकिक प्रभाव की बात कहा, इसका आध्यात्मिक प्रभाव भी बहुत अधिक है।

ये अरहंत सिद्ध अवस्थायें ऐसी हैं कि जिनमें फिर चैतन्य स्वरूप के प्रकट होने में किसी चीज की रोक नहीं रह जाती. उनका ज्ञान निरावरण स्पष्ट रूप से झलकने लगता है। वहाँ शुद्ध चैतन्यस्वरूप प्रकट हो जाता है, ऐसे भाव अवस्था को कहते हैं अरहंत सिद्ध। और जो इसी मार्ग में स्व साधना करते हुए बढ़ते चले जा रहे हैं और दूसरों से भी साधना करवा रहे उन्हें कहते हैं आचार्य और जो स्वयं बड़े विवेकी होते हैं और दूसरों को भी विवेक कराते हैं वे कहलाते हैं उपाध्याय और जो साधना के मार्ग में लगकर आचार्य देव के आदेशानुसार अपनी आत्मसाधना करते हैं वे साधु कहलाते हैं।

तो लोक में जिन्होंने अपनी शत्रुता को नष्ट कर दिया, मोह रागद्वेषादिक विकारों को नष्ट कर दिया, वे सर्वगुण सम्पन्न हो गए वे अरहंत कहलाते हैं, और जिनका मोह रागद्वेषादिक विकारों के साथ-साथ शरीर भी छूट गया, वे अब सदा के लिए संसार से मुक्त हो चुके उन्हें सिद्ध कहते हैं और उन अरहंत सिद्ध के ही मार्ग पे जो आचार्य, उपाध्याय और साधु लगे हुए हैं वे सब साधु (साधना करने वाले) कहलाते हैं।

णमोकार मंत्र के अन्दर इन गुणों का ही नमन किया गया है, किसी व्यक्ति का नमन नहीं किया गया है।

तो कहा कि स्थूल से सूक्ष्म तक पहुँचते हुए हम आत्मा की अनुभूति करें इसमें ये मंत्र साधक बन सकते हैं। इन्हीं मंत्रों के द्वारा हमें आध्यात्मिक, एवं

भौतिक कार्यों की सिद्धि होती है। ये ही मत्र ग्रहो से आने वाले दुष्प्रभावों को रोकते हैं।

हमारे ऊपर आने वाले दुष्प्रभाव इन कषायों के कारण आते है कषायें यदि हट जायें तो फिर कोई भी दुष्प्रभाव न हो। इसलिए कहा कि यह णमोकार मत्र एक महामंत्र है। उसका उपयोग लौकिक और आध्यात्मिक हर काम के लिए किया जा सकता है।

तो निष्काम दृष्टि से हम अरहत सिद्ध आदिक का इस णमोकार मत्र द्वारा ध्यान करें और फिर उस ध्यान करते हुए मे इतनी स्पीड बन जाय कि फिर वह आत्म-जागरण हमारे जीवन मे घूमता हुआ घटित हो सके।

हमारे भीतर अनन्त शक्ति पडी हुई है और उसका पता न होने से हम भिखारी बने हुए हैं। महान से अणु बने हुए हैं। इस अहकार ने इस मानव को अधा बना दिया है, इसकी दशा ठीक वैसी बन गई है जैसे कि तेली का बैल।

तो यह चक्र अभी कब तक चलता रहेगा इसका भी तो कुछ ख्याल करें। जब तक हमारे आँखो की पट्टी नहीं उतर जाती, जब तक हम जाग नहीं जाते तब तक यह चक्र ज्यों का त्यो चलता रहेगा।

तो इस ससार चक्र को नष्ट करने मे हमारा यह साक्षी भाव सहयोगी है। इसलिए कहा कि हम इन मत्रों का विधिवत जाप करें ताकि हमारे भीतर आत्मजागरण हो सके।

इस साक्षी भाव का ही तो सहारा कबीरदास जी ने लिया था। एक बार कही चक्की मे चने दले जा रहे थे तो उन्होंने क्या देखा कि एक ही चक्की मे एक साथ कुछ चने दलने के लिए डाले गए तो उनमे मे कुछ चने तो बिल्कुल पिस गए थे, कुछ की दाल सी बन गई थी और कुछ साबुत ही निकल आते थे। तो यह दृश्य देखकर कबीर ने अपने साक्षी भाव का सहारा लिया कि जैसे ये कुछ चने एक चक्की की किल्ली का सहारा लेने से ज्यों-के-त्यो चक्की के अन्दर से समूचे निकल आये, पूर्णरक्षित निकल आये ऐसे ही हम भी यदि अपने साक्षी भाव का सहारा लें तो अपने जीवन मे पूर्ण रक्षित होकर जी सकते है, यह सोचकर उन्होंने सर्वत्र अपने साक्षी भाव का सहारा लिया। अपना साक्षी है अपने अन्तः विराजमान आत्मा। एक उस आत्मा का ही आलम्बन लें जिससे कि हम इस ससार चक्र से दूर होकर अन्तर्यात्रा मे आ सके, अपने आत्मा का अनुभव कर सकें।

बोला—ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं तो यह सूर्य चन्द्र के द्वारा आने वाले दुष्प्रभावों को रोकता है, इसी प्रकार जब कहा ॐ ह्रीं णमो आयरियाणं तो यह गुरु ग्रह से आने वाले दुष्प्रभाव को रोकता है। जब कहा ॐ ह्रीं णमो उवज्झायाणं तो वह बृहस्पति ग्रह से आने वाले दुष्प्रभावों को रोकता है, जब कहा ॐ ह्रीं णमो लोए सव्वसाहूणं तो वह बुध, राहु, केतु आदि से आने वाले दुष्प्रभावों को रोकता है।

इस प्रकार से कहा कि इन ध्वनियों का जो स्पन्दन है वह उन दुष्प्रभावों को रोक सकता है, इसलिए कहा कि यह मंत्र आप का कवच जैसा काम करता है। जैसे कोई योद्धा कवच के द्वारा शत्रु की वार को रोक लेता है इसी प्रकार साधक भी इन मंत्रों के द्वारा इन सूर्य-चन्द्र आदिक ग्रहों के द्वारा आने वाले प्रकोपों को बड़ी सुगमता से रोक लेता है। यह तो एक लौकिक प्रभाव की बात कहा, इसका आध्यात्मिक प्रभाव भी बहुत अधिक है।

ये अरहंत सिद्ध अवस्थायें ऐसी हैं कि जिनमें फिर चैतन्य स्वरूप के प्रकट होने में किसी चीज की रोक नहीं रह जाती, उनका ज्ञान निर्दोष स्पष्ट रूप से झलकने लगता है। वहाँ शुद्ध चैतन्यस्वरूप प्रकट हो जाता है, ऐसे भाव अवस्था को कहते हैं अरहन्त सिद्ध। और जो इसी मार्ग में स्व साधना करते हुए बढ़े चले जा रहे हैं और दूसरों से भी साधना करवा रहे उन्हें कहते हैं आचार्य और जो स्वयं बड़े विवेकी होते हैं और दूसरों को भी विवेक कराते हैं वे कहलाते हैं उपाध्याय और जो साधना के मार्ग में लगकर आचार्य देव के आदेशानुसार अपनी आत्मसाधना करते हैं वे साधु कहलाते हैं।

तो लोक में जिन्होंने अपनी शत्रुता को नष्ट कर दिया, मोह रागद्वेषादिक विकारों को नष्ट कर दिया, वे सर्वगुण सम्पन्न हो गए वे अरहन्त कहलाते हैं। और जिनका मोह रागद्वेषादिक विकारों के साथ-साथ शरीर भी छूट गया, वे अब सदा के लिए संसार से मुक्त हो चुके उन्हें सिद्ध कहते हैं और उन अरहन्त सिद्ध के ही मार्ग में जो आचार्य, उपाध्याय और साधु लगे हुए हैं वे सब साधु (साधना करने वाले) कहलाते हैं।

णमोकार मंत्र के अन्दर इन गुणों का ही नमन किया गया है, किसी व्यक्ति का नमन नहीं किया गया है।

तो कहा कि स्थूल से सूक्ष्म तक पहुँचते हुए हम आत्मा की अनुभूति करें इसमें ये मंत्र साधक बन सकते हैं। इन्हीं मंत्रों के द्वारा हमें आध्यात्मिक, एवं

भौतिक कार्यों की सिद्धि होती है। ये ही मंत्र ग्रहो से आने वाले दुष्प्रभावो को रोकते हैं।

हमारे ऊपर आने वाले दुष्प्रभाव इन कषायो के कारण आते है कषायें यदि हट जायें तो फिर कोई भी दुष्प्रभाव न हो। इसलिए कहा कि यह णमोकार मत्र एक महामत्र है। उसका उपयोग लौकिक और आध्यात्मिक हर काम के लिए किया जा सकता है।

तो निष्काम दृष्टि से हम अरहत सिद्ध आदिक का इस णमोकार मत्र द्वारा ध्यान करें और फिर उस ध्यान करते हुए मे इतनी स्पीड बन जाय कि फिर वह आत्म-जागरण हमारे जीवन में घूमता हुआ घटित हो सके।

हमारे भीतर अनन्त शक्ति पड़ी हुई है और उसका पता न होने से हम भिखारी बने हुए हैं। महान मे अणु बने हुए हैं। इस अहकार ने इस मानव को अंधा बना दिया है, इसकी दशा ठीक वैसी बन गई है जैसे कि तेली का बैल।

तो यह चक्र अभी कब तक चलता रहेगा इसका भी तो कुछ ख्याल करें। जब तक हमारे आँखो की पट्टी नही उतर जाती, जब तक हम जाग नही जाते तब तक यह चक्र ज्यों का त्यों चलता रहेगा।

तो इस ससार चक्र को नष्ट करने मे हमारा यह साक्षी भाव सहयोगी है। इसलिए कहा कि हम इन मत्रों का विधिवत जाप करें ताकि हमारे भीतर आत्मजागरण हो सके।

इस साक्षी भाव का ही तो सहारा कबीरदास जी ने लिया था। एक बार कही चक्की मे चने दले जा रहे थे तो उन्होने क्या देखा कि एक ही चक्की मे एक साथ कुछ चने दलने के लिए डाले गए तो उनमे से कुछ चने तो बिल्कुल पिस गए थे, कुछ की दाल सी बन गई थी और कुछ साबुत ही निकल आये थे। तो यह दृश्य देखकर कबीर ने अपने साक्षी भाव का सहारा लिया कि जैसे ये कुछ चने एक चक्की की किल्ली का सहारा लेने से ज्यो-के-त्यो चक्की के अन्दर से समूचे निकल आये, पूर्णरक्षित निकल आये ऐसे ही हम भी यदि अपने साक्षी भाव का सहारा लें तो अपने जीवन मे पूर्ण रक्षित होकर जी सकते है, यह सोचकर उन्होंने सर्वत्र अपने साक्षी भाव का सहारा लिया। अपना साक्षी है अपने अन्त. विराजमान आत्मा। एक उस आत्मा का ही आलम्बन लें जिससे कि हम इस ससार चक्र से दूर होकर अन्तर्यात्रा मे जा सके, अपने आत्मा का अनुभव कर सकें।

बोला—ॐ ह्री णमो सिद्धाणं तो यह शुक्र चन्द्र के द्वारा आने वाले दुष्प्रभावों को रोकता है, इसी प्रकार जब कहा ॐ ह्री णमो आयरियाण तो यह बुध ग्रह से आने वाले दुष्प्रभाव को रोकता है। जब कहा ॐ ह्री णमो उवज्झायाण तो वह बृहस्पति ग्रह से आने वाले दुष्प्रभावो को रोकता है, जब कहा ॐ ह्रीं णमो लोए सव्वसाहूण तो वह बुध, राहु, केतु आदिक से आने वाले दुष्प्रभावो को रोकता है।

इस प्रकार से कहा कि इन ध्वनियो का जो स्मरण है वह उन दुष्प्रभावो को रोक सकता है, इसलिए कहा कि यह मत्र आप का कवच जैसा काम करता है। जैसे कोई योद्धा कवच के द्वारा शत्रु की वार को रोक लेता है इसी प्रकार साधक भी इन मत्रों के द्वारा इन सूर्य-चन्द्र आदिक ग्रहो के द्वारा आने वाले प्रकोपो को बडी सुगमता से रोक लेता है। यह तो एक लौकिक प्रभाव की बात कहा, इसका आध्यात्मिक प्रभाव भी बहुत अधिक है।

ये अरहत सिद्ध अवस्थायें ऐसी हैं कि जिनमे फिर चैतन्य स्वरूप के प्रकट होने मे किसी चीज की रोक नही रह जाती. उनका ज्ञान निर्दोष स्पष्ट रूप से झलकने लगता है। वहाँ शुद्ध चैतन्यस्वरूप प्रकट हो जाता है, ऐसे भाव अवस्था को कहते हैं अरहंत सिद्ध। और जो इसी मार्ग मे स्व साधना करते हुए बढ़ते चले जा रहे हैं और दूसरो से भी साधना करवा रहे उन्हे कहते हैं आचार्य और जो स्वय बडे विवेकी होते हैं और दूसरो को भी विवेक कराते हैं वे कहलाते हैं उपाध्याय और जो साधना के मार्ग मे लगकर आचार्य देव के आदेशानुसार अपनी आत्मसाधना करते हैं वे साधु कहलाते हैं।

तो लोक मे जिन्होंने अपनी शत्रुता को नष्ट कर दिया, मोह रागद्वेषादिक विकारो को नष्ट कर दिया, वे सर्वगुण सम्पन्न हो गए वे अरहत कहलाते हैं, और जिनका मोह रागद्वेषादिक विकारो के साथ-साथ शरीर भी छूट गया, वे अब सदा के लिए ससार से मुक्त हो चुके उन्हे सिद्ध कहते हैं और उन अरहत सिद्ध के ही मार्ग मे जो आचार्य, उपाध्याय और साधु लगे हुए हैं वे सब साधु (साधना करने वाले) कहलाते हैं।

णमोकार मत्र के अन्दर इन गुणो का ही नमन किया गया है, किसी व्यक्ति का नमन नही किया गया है।

तो कहा कि स्थूल से सूक्ष्म तक पहुँचते हुए हम आत्मा की अनुभूति करें इसमे ये मत्र साधक बन सकते हैं। इन्ही मत्रो के द्वारा हमे आध्यात्मिक, एव

भौतिक कार्यों की सिद्धि होती है। ये ही मत्र ग्रहों से आने वाले दुष्प्रभावों को रोकते हैं।

हमारे ऊपर आने वाले दुष्प्रभाव इन कषायो के कारण आते हैं कषायें यदि हट जायें तो फिर कोई भी दुष्प्रभाव न हो। इसलिए कहा कि यह णमोकार मंत्र एक महामंत्र है। उसका उपयोग लौकिक और आध्यात्मिक हर काम के लिए किया जा सकता है।

तो निष्काम दृष्टि से हम अरहन्त सिद्ध आदिक का इस णमोकार मत्र द्वारा ध्यान करें और फिर उस ध्यान करते हुए मे इतनी स्पीड बन जाय कि फिर वह आत्म-जागरण हमारे जीवन मे घूमता हुआ घटित हो सके।

हमारे भीतर अनन्त शक्ति पड़ी हुई है और उसका पता न होने से हम भिखारी बने हुए हैं। महान से अणु बने हुए हैं। इस अहकार ने इस मानव को अधा बना दिया है, इसकी दशा ठीक वैसी बन गई है जैसे कि तेली का बैल।

तो यह चक्र अभी कब तक चलता रहेगा इसका भी तो कुछ ख्याल करें। जब तक हमारे आँखो की पट्टी नही उतर जाती, जब तक हम जाग नहीं जाते तब तक यह चक्र ज्यो का त्यों चलता रहेगा।

तो इस ससार चक्र को नष्ट करने में हमारा यह साक्षी भाव सहयोगी है। इसलिए कहा कि हम इन मत्रो का विधिवत जाप करें ताकि हमारे भीतर आत्मजागरण हो सके।

इस साक्षी भाव का ही तो सहारा कबीरदास जी ने लिया था। एक बार कही चक्की मे चने दले जा रहे थे तो उन्होंने क्या देखा कि एक ही चक्की मे एक साथ कुछ चने दलने के लिए डाले गए तो उनमे मे कुछ चने तो बिल्कुल पिस गए थे, कुछ की दाल सी बन गई थी और कुछ साबुत ही निकल आये थे। तो यह दृश्य देखकर कबीर ने अपने साक्षी भाव का सहारा लिया कि जैसे ये कुछ चने एक चक्की की किल्ली का सहारा लेने से ज्यो-के-त्यो चक्की के अन्दर से समूचे निकल आये, पूर्णरक्षित निकल आये ऐसे ही हम भी यदि अपने साक्षी भाव का सहारा लें तो अपने जीवन मे पूर्ण रक्षित होकर जी सकते हैं, यह सोचकर उन्होंने सर्वत्र अपने साक्षी भाव का सहारा लिया। अपना साक्षी है अपने अन्तः विराजमान आत्मा। एक उस आत्मा का ही आलम्बन लें जिससे कि हम इस ससार चक्र से दूर होकर अन्तर्यात्रा मे जा सके, अपने आत्मा का अनुभव कर सकें।

जोड़ा — ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं तो यह सूर्य चन्द्र के द्वारा आने वाले दुष्प्रभावों को रोकता है, इसी प्रकार जब कहा ॐ ह्रीं णमो आयरियाणं तो यह बुध ग्रह से आने वाले दुष्प्रभाव को रोकता है। जब कहा ॐ ह्रीं णमो उवज्झायाणं तो वह बृहस्पति ग्रह से आने वाले दुष्प्रभावों को रोकता है, जब कहा ॐ ह्रीं णमो लोए सव्वसाहूणं तो वह शुक्र, राहु, केतु आदि से आने वाले दुष्प्रभावों को रोकता है।

इस प्रकार से कहा कि इन ध्वनियों का जो स्पन्दन है वह उन दुष्प्रभावों को रोक सकता है, इसलिए कहा कि यह मन्त्र आप का कवच जैसा काम करता है। जैसे कोई योद्धा कवच के द्वारा शत्रु की वार को रोक लेता है इसी प्रकार साधक भी इन मन्त्रों के द्वारा इन सूर्य-चन्द्र आदिक ग्रहों के द्वारा आने वाले प्रकोपों को बड़ी सुगमता से रोक लेता है। यह तो एक लौकिक प्रभाव की बात कहा, इसका आध्यात्मिक प्रभाव भी बहुत अधिक है।

ये अरहन्त सिद्ध अवस्थायें ऐसी हैं कि जिनमें फिर चैतन्य स्वरूप के प्रकट होने में किसी चीज की रोक नहीं रह जाती, उनका ज्ञान निर्बाध स्पष्ट रूप से झलकने लगता है। वहाँ शुद्ध चैतन्यस्वरूप प्रकट हो जाता है, ऐसे भाव अवस्था को कहते हैं अरहन्त सिद्ध। और जो इसी मार्ग में स्व साधना करते हुए बढ़ते चले जा रहे हैं और दूसरों से भी साधना करवा रहे उन्हें कहते हैं आचार्य और जो स्वयं बड़े विवेकी होते हैं और दूसरों को भी विवेक कराते हैं वे कहलाते हैं उपाध्याय और जो साधना के मार्ग में लगकर आचार्य देव के आदेशानुसार अपनी आत्मसाधना करते हैं वे साधु कहलाते हैं।

तो लोक में जिन्होंने अपनी शत्रुता को नष्ट कर दिया, मोह रागद्वेषादिक विकारों को नष्ट कर दिया, वे सर्वगुण सम्पन्न हो गए वे अरहन्त कहलाते हैं, और जिनका मोह रागद्वेषादिक विकारों के साथ-साथ शरीर भी छूट गया, वे अब सदा के लिए संसार से मुक्त हो चुके उन्हें सिद्ध कहते हैं और उन अरहन्त सिद्ध के ही मार्ग में जो आचार्य, उपाध्याय और साधु लगे हुए हैं वे सब साधु (साधना करने वाले) कहलाते हैं।

णमोकार मन्त्र के अन्दर इन गुणों का ही नमन किया गया है, किसी व्यक्ति का नमन नहीं किया गया है।

तो कहा कि स्थूल से सूक्ष्म तक पहुँचते हुए हम आत्मा की अनुभूति करें इसमें ये मन्त्र साधक बन सकते हैं। इन्हीं मन्त्रों के द्वारा हमें आध्यात्मिक, एवं

भौतिक कार्यों की सिद्धि होती है। ये ही मंत्र ग्रहों से आने वाले दुष्प्रभावों को रोकते हैं।

हमारे ऊपर आने वाले दुष्प्रभाव इन कषायों के कारण आते हैं कषायें यदि हट जायें तो फिर कोई भी दुष्प्रभाव न हो। इसलिए कहा कि यह णमोकार मंत्र एक महामंत्र है। उसका उपयोग लौकिक और आध्यात्मिक हर काम के लिए किया जा सकता है।

तो निष्काम दृष्टि से हम अरहंत सिद्ध आदिक का इस णमोकार मंत्र द्वारा ध्यान करें और फिर उस ध्यान करते हुए मे इतनी स्पीड बन जाय कि फिर वह आत्म-जागरण हमारे जीवन में घूमता हुआ घटित हो सके।

हमारे भीतर अनन्त शक्ति पड़ी हुई है और उसका पता न होने से हम भिखारी बने हुए हैं। महान से अणु बने हुए हैं। इस अहंकार ने इस मानव को अंधा बना दिया है, इसकी दशा ठीक वैसी बन गई है जैसे कि तेली का बैल।

तो यह चक्र अभी कब तक चलता रहेगा इसका भी तो कुछ ख्याल करें। जब तक हमारे आंखों की पट्टी नहीं उतर जाती, जब तक हम जाग नहीं जाते तब तक यह चक्र ज्यों का त्यों चलता रहेगा।

तो इस संसार चक्र को नष्ट करने में हमारा यह साक्षी भाव सहयोगी है। इसलिए कहा कि हम इन मंत्रों का विधिवत जाप करें ताकि हमारे भीतर आत्मजागरण हो सके।

इस साक्षी भाव का ही तो सहारा कबीरदास जी ने लिया था। एक बार कहीं चक्की में चने दले जा रहे थे तो उन्होंने क्या देखा कि एक ही चक्की में एक साथ कुछ चने दलने के लिए डाले गए तो उनमें से कुछ चने तो बिल्कुल पिस गए थे, कुछ की दाल सी बन गई थी और कुछ साबुत ही निकल आये थे। तो यह दृश्य देखकर कबीर ने अपने साक्षी भाव का सहारा लिया कि जैसे ये कुछ चने एक चक्की की किल्ली का सहारा लेने से ज्यों-के-त्यों चक्की के अन्दर से समूचे निकल आये, पूर्णरक्षित निकल आये ऐसे ही हम भी यदि अपने साक्षी भाव का सहारा लें तो अपने जीवन में पूर्ण रक्षित होकर जी सकते हैं, यह सोचकर उन्होंने सर्वत्र अपने साक्षी भाव का सहारा लिया। अपना साक्षी है अपने अन्दर विराजमान आत्मा। एक उस आत्मा का ही आलम्बन लें जिससे कि हम इस संसार चक्र से दूर होकर अन्तर्यात्रा में जा सके, अपने आत्मा का अनुभव कर सकें।

बोला—ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं तो यह शब्द चन्द्र के द्वारा आने वाले दुष्प्रभावों को रोकता है, इसी प्रकार जब कहा ॐ ह्रीं णमो आयरियाणं तो वह बुध ग्रह से आने वाले दुष्प्रभाव को रोकता है। जब कहा ॐ ह्रीं णमो उवज्झायाणं तो वह वृहस्पति ग्रह से आने वाले दुष्प्रभावों को रोकता है, जब कहा ॐ ह्रीं णमो लोए सव्वसाहूणं तो वह शुत्र, राहू, केतु आदिक के आने वाले दुष्प्रभावों को रोकता है।

इस प्रकार से कहा कि इन ध्वनियों का जो स्पदन है वह उन दुष्प्रभावों को रोक सकता है, इसलिए कहा कि यह मंत्र आप का कवच जैसा काम करता है। जैसे कोई योद्धा कवच के द्वारा शत्रु की वार को रोक लेता है इसी प्रकार साधक भी इन मंत्रों के द्वारा इन सूर्य-चन्द्र आदिक ग्रहों के द्वारा आने वाले प्रकोपों को बड़ी सुगमता से रोक लेता है। यह तो एक लौकिक प्रभाव की बात कहा, इसका आध्यात्मिक प्रभाव भी बहुत अधिक है।

ये अरहंत सिद्ध अवस्थायें ऐसी हैं कि जिनमें फिर चैतन्य स्वरूप के प्रकट होने में किसी चीज की रोक नहीं रह जाती, उनका ज्ञान निर्बाध स्पष्ट रूप से झलकने लगता है। वहाँ शुद्ध चैतन्यस्वरूप प्रकट हो जाता है, ऐसे भाव अवस्था को कहते हैं अरहंत सिद्ध। और जो इसी मार्ग में स्व साधना करते हुए बढ़ते चले जा रहे हैं और दूसरों से भी साधना करवा रहे उन्हें कहते हैं आचार्य और जो स्वयं बड़े विवेकी होते हैं और दूसरों को भी विवेक कराते हैं वे कहलाते हैं उपाध्याय और जो साधना के मार्ग में लगकर आचार्य देव के आदेशानुसार अपनी आत्मसाधना करते है वे साधु कहलाते हैं।

तो लोक में जिन्होंने अपनी शत्रुता को नष्ट कर दिया, मोह रागद्वेषादिक विकारों को नष्ट कर दिया, वे सर्वगुण सम्पन्न हो गए वे अरहंत कहलाते हैं, और जिनका मोह रागद्वेषादिक विकारों के साथ-साथ शरीर भी छूट गया, वे अब सदा के लिए संसार से मुक्त हो चुके उन्हें सिद्ध कहते हैं और उन अरहंत सिद्ध के ही मार्ग में जो आचार्य, उपाध्याय और साधु लगे हुए हैं वे सब साधु (साधना करने वाले) कहलाते हैं।

णमोकार मंत्र के अन्दर इन गुणों का ही नमन किया गया है, किसी व्यक्ति का नमन नहीं किया गया है।

तो कहा कि स्थूल से सूक्ष्म तक पहुँचते हुए हम आत्मा की अनुभूति करें इसमें ये मंत्र सहायक बन सकते हैं। इन्हीं मंत्रों के द्वारा हमें आध्यात्मिक, एवं

भौतिक कार्यों की सिद्धि होती है। ये ही मंत्र ग्रहों से आने वाले दुष्प्रभावों को रोकते हैं।

हमारे ऊपर आने वाले दुष्प्रभाव इन कषायों के कारण आते हैं कषायें यदि हट जायें तो फिर कोई भी दुष्प्रभाव न हो। इसलिए कहा कि यह णमोकार मंत्र एक महामंत्र है। उसका उपयोग लौकिक और आध्यात्मिक हर काम के लिए किया जा सकता है।

तो निष्काम दृष्टि से हम अरहंत सिद्ध आदिक का इस णमोकार मंत्र द्वारा ध्यान करें और फिर उस ध्यान करते हुए मे इतनी स्पीड बन जाय कि फिर यह आत्म-जागरण हमारे जीवन मे घूमता हुआ घटित हो सके।

हमारे भीतर अनन्त शक्ति पड़ी हुई है और उसका पता न होने से हम भिखारी बने हुए हैं। महान से अणु बने हुए हैं। इस अहंकार ने इस मानव को अंधा बना दिया है, इसकी दशा ठीक वैसी बन गई है जैसे कि तेली का बैल।

तो यह चक्र अभी कब तक चलता रहेगा इसका भी तो कुछ ख्याल करें। जब तक हमारे आँखों की पट्टी नहीं उतर जाती, जब तक हम जाग नहीं जाते तब तक यह चक्र ज्यों का त्यों चलता रहेगा।

तो इस संसार चक्र को नष्ट करने मे हमारा यह साक्षी भाव सहयोगी है। इसलिए कहा कि हम इन मंत्रों का विधिवत जाप करें ताकि हमारे भीतर आत्मजागरण हो सके।

इस साक्षी भाव का ही तो सहारा कबीरदास जी ने लिया था। एक बार कहीं चक्की में चने दले जा रहे थे तो उन्होंने क्या देखा कि एक ही चक्की मे एक साथ कुछ चने दलने के लिए डाले गए तो उनमे से कुछ चने तो बिल्कुल पिस गए थे, कुछ की दाल भी बन गई थी और कुछ साबुत ही निकल आये थे। तो यह दृश्य देखकर कबीर ने अपने साक्षी भाव का सहारा लिया कि जैसे ये कुछ चने एक चक्की की किल्ली का सहारा लेने से ज्यों-के-त्यों चक्की के अन्दर से समूचे निकल आये, पूर्णरक्षित निकल आये ऐसे ही हम भी यदि अपने साक्षी भाव का सहारा लें तो अपने जीवन में पूर्ण रक्षित होकर जी सकते हैं. यह सोचकर उन्होंने सर्वत्र अपने साक्षी भाव का सहारा लिया। अपना साक्षी है अपने अन्तः विराजमान आत्मा। एक उस आत्मा का ही आलम्बन लें जिससे कि हम इस संसार चक्र से दूर होकर अन्तर्यात्रा मे जा सके, अपने आत्मा का अनुभव कर सकें।

बोला—ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं तो यह शब्द चन्द्र के द्वारा आने वाले दुष्प्रभावों को रोकता है, इसी प्रकार जब कहा ॐ ह्रीं णमो आयरियाणं तो वह बुध ग्रह से आने वाले दुष्प्रभाव को रोकता है। जब कहा ॐ ह्रीं णमो उवज्झायाणं तो वह बृहस्पति ग्रह से आने वाले दुष्प्रभावों को रोकता है, जब कहा ॐ ह्रीं णमो लोए सव्वसाहूणं तो वह शुक्र, राहु, केतु आदिक के आने वाले दुष्प्रभावों को रोकता है।

इस प्रकार से कहा कि इन ध्वनियों का जो स्पंदन है वह उन दुष्प्रभावों को रोक सकता है, इसलिए कहा कि यह मंत्र बाद का कवच जैसा काम करता है। जैसे कोई योद्धा कवच के द्वारा शत्रु की वार को रोक लेता है इसी प्रकार साधक भी इन मंत्रों के द्वारा इन सूर्य-चन्द्र आदिक ग्रहों के द्वारा आने वाले प्रकोपों को बड़ी सुगमता से रोक लेता है। यह तो एक लौकिक प्रभाव की बात कहा, इसका आध्यात्मिक प्रभाव भी बहुत अधिक है।

ये अरहंत सिद्ध अवस्थायें ऐसी हैं कि जिनमें फिर चैतन्य स्वरूप के प्रकट होने में किसी चीज की रोक नहीं रह जाती. उनका ज्ञान निर्वाध स्पष्ट रूप से झलकने लगता है। वहाँ शुद्ध चैतन्यस्वरूप प्रकट हो जाता है, ऐसे भाव अवस्था को कहते हैं अरहंत सिद्ध। और जो इसी मार्ग में स्व साधना करते हुए बढ़ते चले जा रहे हैं और दूसरों से भी साधना करवा रहे उन्हें कहते हैं आचार्य और जो स्वयं बड़े विवेकी होते हैं और दूसरों को भी विवेक कराते हैं वे कहलाते हैं उपाध्याय और जो साधना के मार्ग में लगकर आचार्य देव के आदेशानुसार अपनी आत्मसाधना करते हैं वे साधु कहलाते हैं।

तो लोक में जिन्होंने अपनी शत्रुता को नष्ट कर दिया, मोह रागद्वेषादिक विकारों को नष्ट कर दिया, वे सर्वगुण सम्पन्न हो गए वे अरहंत कहलाते हैं, और जिनका मोह रागद्वेषादिक विकारों के साथ-साथ शरीर भी छूट गया, वे अब सदा के लिए संसार से मुक्त हो चुके उन्हें सिद्ध कहते हैं और उन अरहंत सिद्ध के ही मार्ग में जो आचार्य, उपाध्याय और साधु लगे हुए हैं वे सब साधु (साधना करने वाले) कहलाते हैं।

णमोकार मंत्र के अन्दर इन गुणों का ही नमन किया गया है, किसी व्यक्ति का नमन नहीं किया गया है।

तो कहा कि स्थूल से सूक्ष्म तक पहुँचते हुए हम आत्मा की अनुभूति करें इसमें ये मंत्र साधक बन सकते हैं। इन्हीं मंत्रों के द्वारा हमें आध्यात्मिक, एवं

भौतिक कार्यों की सिद्धि होती है। ये ही मंत्र यहाँ से आने वाले दुष्प्रभावों को रोकते हैं।

हमारे ऊपर आने वाले दुष्प्रभाव इन कषायों के कारण आते हैं कषायें यदि हट जायें तो फिर कोई भी दुष्प्रभाव न हो। इसलिए कहा कि यह णमोकार मंत्र एक महामंत्र है। उसका उपयोग लौकिक और आध्यात्मिक हर काम के लिए किया जा सकता है।

तो निष्काम दृष्टि से हम अरहन्त सिद्ध आदिक का इस णमोकार मंत्र द्वारा ध्यान करें और फिर उस ध्यान करते हुए मे इतनी स्पीड बन जाय कि फिर वह आत्म-जागरण हमारे जीवन मे घूमता हुआ घटित हो सके।

हमारे भीतर अनन्त शक्ति पडी हुई है और उसका पता न होने से हम भिखारी बने हुए हैं। महान से अणु बने हुए हैं। इस अहकार ने इस मानव को अधा बना दिया है, इसकी दशा ठीक वैसी बन गई है जैसे कि तेली का बैल।

तो यह चक्र अभी कब तक चलता रहेगा इसका भी तो कुछ ख्याल करें। जब तक हमारे आँखो की पट्टी नही उतर जाती, जब तक हम जाग नही जाते तब तक यह चक्र ज्यों का त्यो चलता रहेगा।

तो इस ससार चक्र को नष्ट करने मे हमारा यह साक्षी भाव सहयोगी है। इसलिए कहा कि हम इन मत्रों का विधिवत जाप करें ताकि हमारे भीतर आत्मजागरण हो सके।

इस साक्षी भाव का ही तो सहारा कबीरदास जी ने लिया था। एक बार कहीं चक्की मे चने दले जा रहे थे तो उन्होने क्या देखा कि एक ही चक्की मे एक साथ कुछ चने दलने के लिए डाले गए तो उनमे से कुछ चने तो बिल्कुल पिस गए थे, कुछ की दाल भी बन गई थी और कुछ साबुत ही निकल आये थे। तो यह दृश्य देखकर कबीर ने अपने साक्षी भाव का सहारा लिया कि जैसे ये कुछ चने एक चक्की की किल्ली का सहारा लेने से ज्यों-के-त्यो चक्की के अन्दर से समूचे निकल आये, पूर्णरक्षित निकल आये ऐसे ही हम भी यदि अपने साक्षी भाव का सहारा लें तो अपने जीवन मे पूर्ण रक्षित होकर जी सकते है, यह सोचकर उन्होने सर्वत्र अपने साक्षी भाव का सहारा लिया। अपना साक्षी है अपने अन्त विराजमान आत्मा। एक उस आत्मा का ही आलम्बन लें जिससे कि हम इस ससार चक्र से दूर होकर अर्न्तयात्रा मे जा सकें, अपने आत्मा का अनुभव कर सकें।